इतनी प्यारी जिंदगी...!

परमगुरु ओशो के श्री चरणों में समर्पित

–स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिला: सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

  Rajneeshfragrance
+91 7988229565
+91 7988969660
+91 7015800931

अनुक्रम

भूमिका

मित्रों, इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है, इसे थोड़ा संवारना है। बस! यही धर्म की सच्ची साधना है। 'साधना' पुरुषों का कठोर-सा शब्द है, महिलाओं की भाषा में कहना उचित होगा-जिंदगी का 'शृंगार' करना है! इस पुस्तक में गंभीर धार्मिक उपदेश नहीं हैं, कुछ 'ब्यूटी-टिप्स' हैं। सद्गुरु ओशो के आध्यात्मिक ब्यूटी-पार्लर में आपका स्वागत है।

–स्वामी शैलेन्द्र सरवती

जिंदगी में नहीं, तो साधना और कहां?

इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है, परमात्मा की अद्‍भुत मेहरबानी है, अस्तित्व का सुंदर उपहार है! आध्यात्मिक साधना संसार में रहकर, जिंदगी को अत्यंत होशपूर्वक जीते हुए ही संभव है। अस्पताल से भागकर कोई रोगी स्वस्थ नहीं हो सकता और न ही स्कूल से पलायन करने वाला विद्यार्थी कभी उत्तीर्ण हो सकता है। यह संसार भी एक पाठशाला है, सच पूछो तो संपूर्ण विश्व ही विश्वविद्यालय है। नींद में चल रहे दुखद-स्वप्न भी अकारण नहीं, बल्कि हमें जगाने के उपाय हैं, ताकि परमानंद उपलब्ध हो सके। संसार इसीलिए है ताकि मुक्ति फलित हो सके।

वस्तुतः जिसमें हम जीते हैं, वह संसार है कहां? क्या बाहर के ये नदी-पर्वत, जंगल, पशु-पंछी, पेड़-पौधे, मानव-समाज; अथवा भीतर हमारा मन, सोच-विचार, भावना, धारणा, अहंकार आदि संसार है? संसार के समस्त दुखों एवं सुखों का स्रोत हमारा मन है तथा मन के पार की अवस्था में आनंद घटित होता है। शत्रु व मित्र दोनों मन के निर्माण हैं। उपयोग व दिशा पर सब-कुछ निर्भर है। मन मालिक है या गुलाम, इससे तय होता है कि व्यक्ति परमहंस होगा या पागल।

मन प्रक्षेपक है, एक प्रोजेक्टर है। स्वर्ग-नर्क मनःस्थितियां हैं, भौगोलिक परिस्थितियां नहीं। मोक्ष दोनों के पार है, वह मन का प्रोजेक्शन नहीं, मनातीत अवस्था है।

स्वर्ग और नर्क कहीं आकाश या पाताल में नहीं हैं। मरने के बाद कोई स्वर्ग अथवा नर्क नहीं जाता, हरेक अपना-अपना स्वर्ग और नर्क स्वयं के संग लिए चलता है। वे हमारी मनःस्थितियां हैं। निगेटिव ऐटीट्यूड, नकारात्मक दृष्टिकोण में जीने वाला व्यक्ति

नर्क में जीता है। विधायक भाव में जीने वाला स्वर्ग में जीता है। इन दोनों के पार, एक तीसरी अवस्था है जिसे मोक्ष, निर्वाण या कैवल्य कहते हैं। यह संपूर्ण जगत इसी परम लक्ष्य को पाने के लिए है।

भारत के बाहर जो धर्म पैदा हुए, उन्होंने केवल स्वर्ग और नर्क की चर्चा की। भारत में जो धर्म पैदा हुए हैं, उनमें तीन बिन्दुओं की चर्चा की गई है- स्वर्ग, नर्क और मोक्ष। स्वर्ग यानी 'सुख' एक प्रकार का तनाव है, जो हमें अच्छा लगता है। नर्क यानी 'दुःख' भी एक प्रकार का तनाव है, जो हमें पसन्द नहीं। मगर दोनों ही अशांतियां हैं। शान्ति की अवस्था इन द्वन्द्वों के पार उठने पर मिलती है। जापान के झेन फकीर भी यही कहते हैं- 'संसार ही निर्वाण है'।

जैसा संसार हमें बाहर नजर आता है वह हमारे ही मन का प्रक्षेपण है, प्रोजेक्शन है। इसलिए जैसा हमारा मन है अगर वैसा ही उसे हमने रखा, उसे न बदला और उसे लिए हम घूमते-फिरते रहे, परिस्थितियां बदलती रहें, तो भी कुछ न बदलेगा! यह ऐसा हुआ कि हम अपना प्रोजेक्टर अपने साथ ले जा रहे हैं और हम कह रहे हैं कि हम पर्दा बदलेंगे। यह पर्दा ठीक नहीं, वह पर्दा भी ठीक नहीं, दूसरा और तीसरा! संसार के भोग का पर्दा, संन्यास के त्याग का पर्दा, कि मकान और दुकान का, या मन्दिर, मठ, आश्रम का पर्दा; कि भीड़ और बाजार का अथवा हिमालय के एकांत का पर्दा... इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह घर है कि गुफा है, अगर आप अपना प्रोजेक्टर साथ लेकर गये हैं तो आप वहाँ भी वही देखेंगे, उससे भिन्न कुछ भी नहीं हो सकता।

त्रिकोण के समान नीचे स्वर्ग-नर्क और ऊपर मोक्ष की स्थिति है। लेकिन नर्क से रास्ता नहीं जाता मोक्ष तक, स्वर्ग के द्वारा ही जाना पड़ेगा। निगेटिव माइंड वाला व्यक्ति कभी भी बियॉन्ड माइंड नहीं जा सकेगा। कम से कम इतने समझदार तो बनो कि निगेटिव माइंड को हटाकर एक पॉजिटिव माइंड की दशा में आओ। दुःख का प्रोजेक्शन बंद करो, कम से कम इतना तो विवेक पैदा हो। बाद में पता चलेगा कि यह भी एक प्रकार का तनाव ही है। तब हम पूर्ण तनाव मुक्त होकर ब्रह्मानंद पा सकेंगे।

संसार में जीवन कैसे जियें कि वह साधना बन जाए? संसार से पार जाने का मार्ग मिल जाए? इस संबंध में तीन बातों की समझ विकसित करनी जरूरी है। मन-बुद्धि-हृदय के तल पर शुद्धिकरण की प्रक्रिया से गुजरना होगा। दूसरे शब्दों में- शरीर, विचार एवं भावना को परिष्कृत करना अनिवार्य है। संसार हमारा दुश्मन नहीं है। यह बंधन बन सकता है और मुक्ति भी। सब हम पर निर्भर है।

सद्‌गुरु ओशो कहते हैं कि यही सबक सीखने के लिए हम यहां आए हैं। जब तक सीख न लें, तब तक बारंबार आना होगा। अनुत्तीर्ण छात्र को पुनः स्कूल आना पड़ता है। पास होने का अर्थ है- आवागमन से छुटकारा, अब पाठशाला आने की जरूरत न रही, पढ़ाई पूरी हो गई। तीन पुरुषार्थ यानी अर्थ, काम, धर्म को साधकर ही चौथा पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है।

जैसे अस्तित्व के चार आयाम हैं, तीन आकाश में और चौथा समय में; जैसे चार दिशाएं हैं- उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम; ठीक वैसे ही हमारे जीवन के भी चार तल हैं- तन, मन, हृदय और आत्मा। भौतिक शरीर कर्म का तल है, दिमाग विचारों का और दिल भावनाओं का। चेतना आकाश है, जिसमें ओंकार, आलोक, अमृत व्याप्त हैं। प्रत्येक स्तर पर चार मुख्य बिंदु साधने योग्य हैं। संसार में देहधारी बनकर हम यही पाठ सीखने आए हैं।

- ☆ शारीरिक आयाम में- भोजन, प्राणायाम, व्यायाम व विश्राम का संतुलन।
- ☆ मानसिक आयाम में- विचार, धारणा, संकल्प व स्मृति की सम्यकता।
- ☆ हृदय तल पर- मित्रता, करुणा, प्रसन्नता व उपेक्षा की भावना।
- ☆ आत्मा के आयाम में- साक्षी चेतना, शून्य गगन, ओंकार श्रवण व आलोक दर्शन।

किसके प्रति कौन सी भावना हो- यह बात अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसे सूत्र रूप में याद रखना-

सुखी से मैत्री, दुखी पे करुणा, सदगुण से खुश होना;
यदि संसार से मुक्ति चाहिए, दुर्गुण की उपेक्षा करना।

सामान्यतः हम इसका विपरीत करते हैं- प्रसन्न व्यक्ति से ईर्ष्या करते हैं, मन ही मन शत्रुता रखते हैं। दुखी व्यक्ति से ऊपरी सहानुभूति दिखाते हैं परंतु आंतरिक रूप से प्रसन्न होते हैं। पुण्यवान के प्रति अविश्वास, संदेह से भरे रहते हैं एवं पापी की निंदा-आलोचना में रस लेते हैं। जीसस ने कहा है- मूल्यांकन मत करना। अशुभ से मत लड़ना, बुरे का प्रतिरोध न करना। विपरीत परिणाम का नियम कहता है कि जिससे हम बचना चाहेंगे, उसी से टकराएंगे।

दुनिया में लाखों लोग उत्सव मना रहे हैं। ईर्ष्यालु नर्क में जीता है, जैसे किसी ने उसकी खुशी छीन ली हो।

शांति, प्रेम या आनंद, धन-पैसे के समान कोई वस्तु नहीं है। दुखी पर करुणा करना, उससे मित्रता कतई नहीं। मित्रता का अर्थ है- तुम उस जैसा होना चाहोगे। करुणा में तुम उस जैसा नहीं होना चाहोगे, उसकी हालत देखकर न दुखी होगे न प्रसन्न, बल्कि शांतिपूर्वक उसकी मदद करना पसंद करोगे।

मुदिता, प्रसन्नता, अहोभाव, ग्रैटीट्यूड को साधना, पुण्यवान के प्रति। सज्जन व्यक्ति के गुणों- सत्यम्, शिवम्, शुभम्, सुंदरम् के प्रति प्रफुल्लता का भाव रखना। और पापी के प्रति, दुर्जन के प्रति, दुष्ट के प्रति उपेक्षा का भाव। असत्य, अशिव, अशुभ, असुंदर पर ध्यान ही न देना। इतना भी रस न लेना कि सुधारक बनो।

प्रथम तीन तलों को संतुलित, सम्यक्, समुचित कर लेने पर साधना की भूमिका निर्मित हो जाती है। तब देह-शून्यता, विचार-शून्यता और भाव-शून्यता की स्थिति

निर्मित होती है। फिर हम चौथे में प्रवेश कर पाते हैं- जिसे ऋषियों ने तुरीयावस्था, ध्यान, समाधि, चेतना, आत्मा, परमात्मा, दिव्यता, भगवत्ता कहा है। सहज साक्षीत्व और सुमिरन सध जाता है। अंततः ब्रह्म के संग एकात्मीयता घटित होती है- अद्वैत अनुभूति! जीवन का परम लक्ष्य हासिल होता है- आवागमन से मुक्ति, निर्वाण, या कहो मोक्ष, कैवल्य!!

यही है सद्गुरु ओशो द्वारा प्रस्तावित साधना का सार-संक्षेप। जिज्ञासु मित्रों से निवेदन है कि विस्तार से समझने हेतु ओशो की प्रवचनमाला 'ध्यान-सूत्र' अवश्य पढ़ें या सुनें। तथा व्यावहारिक प्रयोग सीखने के लिए ओशोधारा के 'ध्यान समाधि शिविर' में आपका हार्दिक स्वागत है। ओशो के प्रवचन में उद्धृत इस प्यारे गीत के संग आपको साधना हेतु आमंत्रित करता हूं-

कुछ ऐसी हमारी किस्मत हो, पीता भी रहूं और प्यास भी हो
मस्ती में बहकता दिल भी रहे और होश भरा उल्लास भी हो
मिट जाएं मेरी हस्ती के निशां, मौजूद भी लेकिन पूरा रहूं
मैं उसका नजारा देखा करूं, संसार भी हो संन्यास भी हो
जीवन का सफर यूं बीते अगर, कुछ धूप भी हो, कुछ छांव भी हो
मिलता भी रहे चलने का मजा, मंजिल का सदा अहसास भी हो
पर्दे में छुपा हो लाख मगर, जलवा भी दिखाई देता रहे
इस आंख मिचौली खेल में वो, कुछ दूर भी हो, कुछ पास भी हो
कुछ इश्के-खुदा में चुप भी रहूं, कुछ इश्के-बुतां में बात भी हो
धरती भी बसी आंखों में रहे, प्यारा ये खुला आकाश भी हो
हो चुप्पी मगर कुछ गाती हुई, संगीत हो मौन में डूबा हुआ
रोदन भी चले कुछ मुस्काता, कुछ अश्रु बहाता हास भी हो
सन्नाटा कभी तूफान सा हो, चुपचाप सी गुजरे आंधी कभी
मझधार भी हो साहिल की तरह, पतवार भी हो, विश्वास भी हो
मुमकिन हो अगर यह दुनिया में, जीने का मजा कुछ और ही हो
मौला भी रहे, बंदा भी रहे, गीता भी झरे और व्यास भी हो
कुछ ऐसी हमारी किस्मत हो, पीता भी रहूं और प्यास भी हो
मस्ती में बहकता दिल भी रहे और होश भरा उल्लास भी हो
मिट जाएं मेरी हस्ती के निशां, मौजूद भी लेकिन पूरा रहूं
मैं उसका नजारा देखा करूं, संसार भी हो संन्यास भी हो
।। जय ओशो ।।

संसार में साधना कैसे करें

- चार रानियों की कहानी
- श्रोण : भोगी से बना त्यागी
- काया के तल पर चार महत्त्वपूर्ण बातें
- मन के चार आयाम
- चार तरह की भावनाएं
- अमृत स्वरूप चेतना का तल

चार रानियों की कहानी

सर्वप्रथम आप सब मित्रों के हृदय में विराजमान सद्‌गुरु ओशो के प्रति प्रेम को नमन करता हूं। इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है, इसे और प्यारा कैसे बनाएं? इस संबंध में एक छोटी सी कहानी से मैं आज की चर्चा शुरू करना चाहूंगा।

पुराने जमाने की बात है, दो सम्राट आपस में बड़े मित्र थे और उन्होंने तय किया कि जब उनकी संतान पैदा होगी, एक के घर में लड़का, दूसरे के घर में लड़की होगी तो उन दोनों का विवाह करेंगे। उस युग में बाल विवाह की प्रथा थी। संयोग की बात, दोनों के घर में बेटियां पैदा हुईं। जिस बेटी का मैं जिक्र करने जा रहा हूं, उसका नाम रखा गया था अमृता। पांच साल बाद दूसरे सम्राट के घर लड़का पैदा हुआ। जैसे कि वे वचनबद्ध थे ठीक उसी अनुसार इन दोनों का बाल-विवाह कर दिया गया। अमृता उम्र में पांच साल बड़ी थी।

वह राजकुमार धीरे-धीरे बड़ा हुआ, युवा अवस्था में किसी रूपसी को देखकर उसके प्रेम में पड़ गया। उससे उसने दूसरी शादी की। उस जमाने में बहु-विवाह प्रथा प्रचलित थी; खासकर राजा, महाराजा, अमीर लोग कई-कई विवाह करते थे। दूसरी पत्नी का नाम था अन्नपूर्णा, जो अत्यंत सुंदर थी। फिर और समय बीता। कालांतर में उन दोनों मित्र सम्राटों की मृत्यु हो गई। जब राजकुमार ने राजकार्य संभालना शुरू किया, तब इसके दरबार में एक बहुत विद्वान व्यक्ति था। उसकी बेटी 'विदुषी' पर वह मोहित हो गया। क्योंकि दूसरी पत्नी अन्नपूर्णा सुंदर तो बहुत थी; लेकिन बुद्धिमान नहीं थी। बुद्धिमानी की कमी उसे अखरती थी। विद्वान दरबारी की पुत्री निश्चित रूप से उस जमाने में सर्वाधिक बुद्धिमान कन्याओं में गिनी जाती थी। उसके जैसी सुशिक्षित, विचारवान, चिंतन-मननशील लड़की पूरे राज्य में अन्यत्र न थी। तीसरा विवाह उससे हुआ।

कुछ समय पश्चात एक युवती इस नए राजा के प्रेम में दीवानी हो गई, उसका नाम भावना था। वह जिद्दी भी थी। उसके बहुत आग्रह करने पर चौथा विवाह भावना के संग हुआ। इस राजा के जीवन में पहली वाली पटरानी की निरंतर उपेक्षा चलती रही। राजा उसे दिल से नहीं चाहता था। क्योंकि उसकी मर्जी से तो विवाह भी नहीं हुआ था। फिर वह उम्र में भी बड़ी थी। उसके प्रति स्वाभाविक लगाव नहीं था। वह अमृता की ज्यादा देखभाल भी नहीं करता था। अन्नपूर्णा के अनुपम सौंदर्य से बहुत आकर्षित था। विदुषी से भी बहुत प्रेम था, विशेषकर उसकी बुद्धिमत्ता बड़ी प्रभावित करने वाली थी, और राजपाट संभालने में उपयोगी भी। भावना बहुत इमोशनल, सेंटीमेंटल थी और उससे भी गहन हार्दिक प्रीति थी।

तीन रानियों की तो वह बहुत अच्छे से देखभाल करता था, लेकिन सबसे बड़ी महारानी के प्रति उपेक्षापूर्ण रवैया रहता था। क्रमशः तीनों रानियां शक्तिशाली होती चली गईं। अन्नपूर्णा विवाह के समय अत्यंत सुंदर, सुडौल थी। लेकिन उसे अतिशय प्रेम मिला, बहुत ज्यादा भोजन भी... प्रायः राजा आग्रह कर-कर के अपने साथ ही उसे खाना खिलाता था। धीरे-धीरे वह मोटी होती गई और उसका सौंदर्य घटता गया। अन्नपूर्णा को अपने माता-पिता और मायके वालों से ज्यादा लगाव था और उसकी वह मनोदशा आगे भी बरकरार रही। राजा और राज परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति उतना प्रेम नहीं था।

विदुषी पढ़ाई-लिखाई में अत्यंत कुशल थी। अध्ययन का उसे अत्याधिक शौक था। राज परिवार में आने के बाद यहां तो सारी लाइब्रेरियां उसको उपलब्ध थीं। उसने अनेक नई भाषाएं भी सीख लीं। समूचे विश्व से किताबें मंगवा कर वह पढ़ती थी। कई बार तो रात-रात भर सोती नहीं थी। मन में जानकारियों का संग्रह बढ़ता गया, वह इतनी ज्ञानी हो गई कि करीब-करीब उसका चित्त विक्षिप्त सा होने लगा।

तीसरी रानी भावना, अपने नामानुसार बड़ी सेंटीमेंटल थी और भावनाओं में तो बड़ा ऊहापोह चलता है, भावावेश के तूफान आते-जाते हैं। रानी बनने के बाद सद्भावनाएं कम, दुर्भावनाएं उसके भीतर ज्यादा होती चली गईं। ईर्ष्या बहुत थी, द्वेष भी बहुत था, स्वाभिमान गजब का था। मिजाज भी बड़े क्रोध वाले थे। जरा-जरा सी बात में

भड़क उठती। जिद्दी प्रवृत्ति के कारण सब के साथ संघर्ष चलता रहता। खुद अशांत रहती और सबको परेशान करती।

एक बार ऐसा हुआ कि इस राज्य पर किसी सशक्त दुश्मन ने हमला किया। राजा परास्त हुआ, उसे गिरफ्तार कर लिया गया। जब इसे मृत्युदंड दे रहे थे, तब उन्होंने कहा कि कोई अंतिम इच्छा हो तो बताओ। मारने के पहले शत्रु को भी एक मौका दिया जाता है, आखिरी इच्छा पूछी गई। इसने कहा कि मैं अपनी रानियों से मिलना चाहता हूं। तुरंत वैसा इंतजाम किया गया।

रानी अन्नपूर्णा को बुलाया गया। अन्नपूर्णा से इसने कहा कि मैं मर रहा हूं, तुम्हारा क्या ख्याल है? तुम कैसे जीवन गुजारोगी? उसने कहा कि देखिए, मेरे रूप और सौंदर्य से आपको लगाव था, मुझसे लगाव नहीं था। आप एक प्रकार से मेरा यौन-शोषण ही कर रहे थे। मैंने कभी दिल से आपको प्रेम नहीं किया यह बात आप भी जानते हैं। मेरा यह रंग-रूप, मेरे ये नाक-नक्श, मुझे अपने माता-पिता से मिले हैं और इसलिए मेरा विशेष लगाव उन्हीं से है। आपकी मृत्यु के बाद मैं दूसरा विवाह कर लूंगी। मेरे बहुत दीवाने थे और अभी भी हैं।

यह सुनकर राजा बड़ा निराश हुआ। रानी विदुषी को बुलाया गया। उससे पूछा कि मैं तो दुनिया छोड़ चला। तुम कैसे जीवन-बसर करोगी? लेकिन विदुषी इतनी ज्यादा ज्ञानी थी, कि लगभग विक्षिप्त सी अवस्था में थी और वह इस घटना की गंभीरता को भी नहीं समझ पा रही थी। दार्शनिक विचारधाराओं, विपरीत मत-मतांतरों में उलझी हुई वह लगभग पागल सी हो चुकी थी।

अक्सर बहुत ज्यादा जानकारियों के बोझ से दबे लोग अपना मानसिक संतुलन ही गवां बैठते हैं। आज पश्चिम में जो लोग पागलखानों में बंद हैं उनमें से अधिकांश लोग बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे हैं। पिछली सदी में जितने महान विद्वान, प्रतिभाशाली विचारक हुए हैं, उनमें से कोई-न-कोई, कभी-न-कभी कुछ दिनों के लिए तो पागलखाने की हवा जरूर खाकर आया है। चित्त पर बहुत ज्यादा दबाव पड़े तो वह अपना संतुलन खो देता है, डावांडोल हो जाता है।

रानी भावना से जब पूछा तो वह बोली कि जैसा मेरा नाम है वैसी ही मैं हूं। आप तो जानते हैं कि समस्त भावनाएं आती-जाती हैं। निश्चित ही कभी मैं आपके प्रेम में दीवानी थी। लेकिन अब मेरे भीतर वह भावना नहीं रही। आकर्षण विकर्षण में परिवर्तित हो चुका है। मैं किसी और से खिंचाव महसूस कर रही हूं और उसी से विवाह कर लूंगी। वह व्यक्ति कोई और नहीं, आपका मुख्य मंत्री है। आप मेरी चिंता मत कीजिए।

राजा को बड़ा दुखद पश्चाताप हुआ। इन तीन रानियों के लिए उसने क्या नहीं किया और ये सब उसे छोड़ने को तैयार ही बैठी हैं! जैसे इंतजार में ही थीं कि राजा कब समाप्त हो? अचानक उसे याद आया कि मेरी एक और रानी है अमृता। अरे, उसे तो भूल ही गया... उसे शीघ्र बुलाया जाए।

बेचारी अमृता आई, बड़ी दुबली-पतली कमजोर हो गई थी। राजा ने कभी उसके साथ बैठ कर भोजन नहीं लिया था, कभी उसे प्रेम नहीं दिया था। लंबे समय से कभी उसके साथ सोया न था। वस्तुतः उसकी शक्ल-सूरत भी भूल गया था। एकदम से पहचान नहीं पाया। पटरानी ने परिचय दिया कि मैं आपकी सबसे पहली पत्नी अमृता हूं। तब उसने कहा कि मैं खत्म होने वाला हूं, तुम क्या करोगी? उसने कहा मैं आपके संग ही सती होऊंगी। मुझे बस आप से लगाव है, किसी अन्य से नहीं। जब आप नहीं, तो मैं भी नहीं। सुनकर राजा चौंका। मानो गहरी लंबी नींद से उसकी आंखें खुली हों। जिंदगी भर उसने जिसकी उपेक्षा की, केवल वास्तव में वही उसकी थी। बस! और कोई भी अपनी नहीं थी!

इस कहानी को जरा प्रतीकात्मक ढंग से समझने की कोशिश करना। यह राजा कोई और नहीं, हम सब मनुष्य ही हैं। हमारे पास भी चार रानियां हैं। एक हमारी काया, स्थूल देह, यह फिजिकल बॉडी जिसके रंग-रूप एवं शक्ल-सूरत से हमें बड़ा लगाव है और जिस पर हम अभिमान करते हैं। याद रखना, यह शरीर हमारा नहीं हो सकता। यह कभी हमारा नहीं था। यह पूर्वजों की श्रृंखला से आया है, माता-पिता की जेनेटिक संरचना से, उनके क्रोमोज़ोम्स, उनके डी.एन.ए. के गुणों से निर्मित है। यह काया हमारी नहीं है। माता-पिता को उनके माता-पिता से मिली थी। लंबी परंपरा चली आ रही है। यह शरीर हमारा नहीं है और न कभी हो सकता है। लेकिन हम इसको ही ज्यादा पोषण देते हैं और इसके सौंदर्य को भी हम नष्ट कर डालते हैं। अतिशय पोषण। उपनिषदों में इसे अन्नमय कोष कहा गया है, यह भोजन से बना है, रोज बनता रहता है।

दूसरा है हमारा मन--दूसरी रानी विदुषी के समान। इस पर हमने बहुत ज्यादा तनाव डाल दिए, अत्याधिक भार डाल दिया और इसलिए हमारा मन तनावग्रस्त, परेशान, बेचैन, चिंतित, व्याकुल और करीब-करीब विक्षिप्त अवस्था में पहुंचने की हालत में है। याद रखना, यह भी हमारा नहीं है। जब हम जन्मे थे हम बिना मन के, बिना विचारों के थे। हमें भाषा भी नहीं आती थी, हमें शब्द भी नहीं मालूम थे। हमने जो कुछ भी सीखा है, सब दूसरों से सीखा है। उस राजा से विदुषी ने कहा था कि क्षमा कीजिए, मेरे अंदर जो ज्ञान है वह मैंने पुस्तकों से इकट्ठा किया है। जिस परिवार में मेरा पालन-पोषण हुआ, उन लोगों ने मुझे दिया है। यह आपका नहीं है।

क्या हमारे मन में जो स्मृतियां और कल्पनाएं मौजूद हैं, जो सोच-विचार और धारणाएं हैं, वे हमारी हैं? या हमने कहीं से एकत्रित की हैं? न हम इनको लेकर आए थे और न ये हमारे संग जाएंगी। वे ठीक हैं--कामचलाऊ हैं जिंदगी में, बातचीत के लिए, जीविका-उपार्जन के लिए, वाद-विवाद और बहस करने के लिए उपयोगी हैं। किंतु हमारी कतई नहीं हैं! स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, पुस्तकालय और गूगल सर्च से प्राप्त की हैं। रानी विदुषी राजा की अपनी नहीं है, नहीं हो सकती। यह मन-खोपड़ी में फिट मानसिक जानकारी की अलमारी भी हमारी नहीं है। यह मस्तिष्क बायोलॉजिकल कम्प्यूटर है। एक जैविक यंत्र है, आंतरिक विचार संग्रह प्रणाली है।

और भावना रानी--वह तो कभी किसी की होती ही नहीं! याद रखना, भावना सदैव दूसरों के द्वारा प्रेरित की गई होती है। कोई आपका सम्मान करता है, आपके मन में उसके प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। कोई आपका अपमान करे, उसके प्रति घृणा पैदा हो जाती है। क्या यह प्रेम की भावना और घृणा की भावना आपकी अपनी है? या किसी खास व्यक्ति ने किसी खास परिस्थिति में आपके भीतर प्रेरित की है? इसी प्रकार सारी अच्छी अथवा बुरी भावनाएं हैं। और गौर से अवलोकन करें, क्या हमारा हृदय धीरे-धीरे सद्भावनाओं की जगह दुर्भावनाओं का अड्डा नहीं हो गया है? घमंड, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, मोह, लोभ इत्यादि का भंडार बन गया है। अंग्रेजी में भावनाओं के लिए अच्छा शब्द है- इमोशन्स. उसका मतलब है जो हमेशा मोशन में, मूवमेंट में रहे, आती-जाती रहे। जो कभी टिकती नहीं। आपने किसी भावना को टिकते देखा? जिससे मुहब्बत है उसी से नफरत हो जाती है। जिससे कहा था कि तेरे बिना एक क्षण जी न सकेंगे, एक दिन आता है जब कहना पड़ता है कि एक पल भी तेरे संग जी न सकेंगे। किसी भावना को आपने स्थिर देखा? टिकते देखा? भावना का मतलब ही है ऑलवेज़ इन मोशन। हवा का झोंका है, अभी आया, अभी गया। कोई भावना हमारी नहीं। अर्थात् यह हृदय भी हमारा नहीं।

यह तन, मन, हृदय, यह बॉडी-माइंड कॉम्प्लेक्स, यानी भोजन-भंडार, विचार-संग्रह, और आती-जाती भावनाओं की भीड़, इनमें से कुछ भी हमारा नहीं है। मृत्यु के क्षण में कुछ भी हमारे संग नहीं जा सकता। किंतु हम इन तीनों के साथ तादात्म्य कर बैठते हैं। हम इनको समझते हैं अपने--जो अपने हैं नहीं, और न कभी हो सकते। और इस पूरी प्रक्रिया में जो वास्तव में अपनी है, स्व-चेतना, अमृत स्वरूप आत्मा, हम उसे भूल ही जाते हैं! वह कुपोषण का शिकार बन जाती है। हमने उस बेचारी को कभी भोजन-पानी तक नहीं दिया। हमारा उससे कोई लगाव नहीं रहा, पहचान तक न रही। देह, दिमाग, दिल-जिन तीनों का हम पालन-पोषण करते रहे वे हमारे हैं ही नहीं।

जरा सोचो, उस राजा को अंतिम घड़ी में कैसा लगा होगा? हर व्यक्ति को मृत्यु के क्षण में वैसा ही लगता है--उसका पूरा जीवन अकारथ गया। वह जिन पर ध्यान दे रहा था वे ध्यान देने योग्य न थे और जिसका ख्याल रखना था उसकी तरफ ध्यान ही नहीं दिया, उसे तो भूल ही गया। इस कहानी में यह भी प्रतीक अच्छा है कि पहली पत्नी अमृता उम्र में उससे बड़ी थी। हमारे भीतर विराजमान चेतना हमारे तन-मन की उम्र से बहुत-बहुत बड़ी है। सच पूछो तो वह न कभी जन्मी है, न कभी मरेगी। वह हमसे भिन्न कोई और नहीं, वह हम ही हैं। हमारी अपनी चेतना--पूरी जिंदगी में हम केवल उसी की उपेक्षा करते हैं। यहां तक कि हम उसे पहचानना भी भूल गए हैं। हमारे भीतर वह है, इसका भी ज्ञान नहीं। बाकी तीन रानियों के संग हम पूरी जिंदगी व्यस्त हैं, संलग्न हैं, उन्हें सारी शक्ति दे रहे हैं, उनके लिए समय-धन लुटा रहे हैं।

प्यारे मित्रों, इस कहानी को जरा हृदयंगम करना और इसके प्रतीकों को भी। यह हम सब की सर्वभौम कथा है। काश, हम बीच में जाग जाएं तो उस राजा की तरह अंत में हमें

पछतावा नहीं करना पड़ेगा। यदि हम जीते-जी समझ जाएं कि वाकई में क्या हमारा है, क्या हमारा नहीं है, तब निश्चित रूप से हमारे ध्यान की धारा भीतर की ओर मुड़ जाएगी।

आपने एक शब्द सुना होगा 'राधा'; कृष्ण की प्रमुख सखी का नाम 'राधा', पुराने शास्त्रों में जिसका कहीं उल्लेख नहीं है। करीब सात-आठ सौ वर्ष पूर्व ऋषियों ने यह नया नाम गढ़ा। इसकी महत्त्वपूर्ण वजह समझें। सामान्यतः हमारे जीवन की जो ऊर्जा-धारा है वह प्रवाहित हो रही है बहिर्मुखी बनकर दूसरों की तरफ, जगत की तरफ, व्यक्तियों की तरफ, घटनाओं की तरफ, संसार के क्रियाकलापों की तरफ। अगर यह जीवन-धारा पलट जाए, धारा से राधा बन जाए तो अपने भीतर विराजमान परमात्मा से, अंतर्तम में बांसुरी बजाते कृष्ण से मुलाकात हो जाए। धारा को पलटकर बनाया गया यह राधा शब्द बड़ा प्यारा है। इस शब्द पर ही राधास्वामी पंथ का नामकरण हुआ।

तो उन तीन रानियों पर भी जरूर ध्यान देना, लेकिन जरूरत से ज्यादा नहीं। जितना योग्य है, जरूरी है, उतना सम्यक् खयाल रखना। तब हमारे जीवन में एक अनूठा संतुलन होगा, और हम अपने भीतर की अमृत चेतना को न भूलेंगे। सर्वाधिक ध्यान देने योग्य वही है। उस पर ध्यान देने का नाम ही मेडिटेशन है, समाधि है।

श्रोण : भोगी से बना त्यागी

सद्गुरु ओशो के प्रवचनों में श्रोण की घटना आती है। मुझे बहुत प्रिय है। 'दीपक बारा नाम का' प्रवचनमाला में छान्दोग्य उपनिषद् के सूत्र 'विशाल को ही विशेष रूप से जानने की इच्छा करनी चाहिए' की व्याख्या करते हुए ओशो समझाते हैं कि विराट कहीं दूर, तुमसे बाहर नहीं, तुम्हारे भीतर छिपा है। तुम्हारा अंतस्तल है। तुम्हारी अंतरात्मा है। इसलिए कहीं जाना नहीं है, अपने भीतर आना है। न काबा जाना है, न काशी, न कैलाश, अपने भीतर आना है। मत इस शरीर के साथ अपने को इतना बांधो! और ध्यान रखना, मैं कोई शरीर का दुश्मन नहीं हूं। मैं नहीं कह रहा हूं कि शरीर को सताओ। क्योंकि सताते वे ही हैं, जिन्हें यह बोध नहीं हुआ कि हम शरीर नहीं हैं। तुम भलीभांति जानते हो कि तुम जिस मकान में रहते हो, तुम वह मकान नहीं हो। इसका यह मतलब नहीं है कि तुम उस मकान की ईंटें गिराने लगते हो, कि उसका पलस्तर उखाड़ने लगते हो, कि उसका छप्पर गिराने लगते हो, जानते हो भलीभांति कि तुम मकान नहीं, लेकिन वर्षा आती है तो छप्पर को ठीक करते हो, खपड़ों को ठीक से जमवाते हो। और जानते हो कि मैं मकान नहीं हूं, लेकिन मकान में रहता हूं, तो मकान को सुंदर रखते हो, तरकीब से रखते हो, सजा कर रखते हो। आखिर रहना तुम्हें है!

दुनिया में दो तरह के पागल हैं। एक, जो शरीर को समझ रहे हैं कि मैं शरीर हूं और उस कारण दुख भोग रहे हैं। और दूसरे पागल, जो कहते हैं कि हम शरीर नहीं हैं, इसलिए शरीर को सता रहे हैं। उपवास से मर रहे हैं। शरीर को गला रहे हैं। क्योंकि वे कहते हैं, हम शरीर नहीं हैं। तुम शरीर नहीं हो तो शरीर को सता किसलिए

रहे हो? यह तो एक अति से दूसरी अति पर जाना हो गया। एक अति थी कि शरीर के द्वारा भोगेंगे, और दूसरी अति है कि अब शरीर को सताएंगे, परेशान करेंगे। दोनों में ही तुमने शरीर के साथ अपना तादात्म्य किया हुआ है। और दोनों अतियों के मध्य में संगीत है, छंद है--छान्दोग्य है।

बुद्ध के पास एक राजकुमार ने दीक्षा ली। वह महाभोगी था। जीवन भर उसने भोग के अतिरिक्त कुछ भी न जाना था। शराब पीना, खाना, स्त्रियां, मौज-मजा--वह बिल्कुल चार्वाकवादी था। न कोई आत्मा है, न कोई परमात्मा है, न कोई सत्य है, न कोई मोक्ष है, ऐसी उसकी धारणा थी। मगर कब तक भोगोगे? भोग-भोग कर थक गया। भोग-भोग कर ऊब गया। जो भोगता है, वह ऊब ही जाने वाला है। खतरा उनको है जो भोगते नहीं और भोग को जबरदस्ती छोड़ कर खड़े रहते हैं। वे कभी नहीं ऊबते। ऊबेंगे कैसे? जो स्त्रियों को छोड़ कर भागे हैं, उनके मन में स्त्रियों के प्रति रस बना ही रहेगा। बैठेंगे हिमालय की गुफा में, उन्हें राम याद नहीं आएगा, काम याद आएगा। बातें ब्रह्मचर्य की करेंगे, सपने उनके अब्रह्मचर्य से भरे होंगे। यह बिल्कुल अनिवार्य है। यह बिल्कुल वैज्ञानिक है। जो धन को छोड़ कर भागा है, उसके पीछे धन भूत की तरह लगा रहेगा। तुम कितना ही भागो, कहावत है ना- भागते भूत की लंगोटी ही भली; वह धन जिसे तुम छोड़ कर भागे हो वह तुम्हारी लंगोटी पकड़े रखेगा। तुम जितना भागोगे, कुछ फर्क नहीं पड़ता, लंगोटी उसके हाथ में रहेगी।

जिससे तुम भयभीत हुए हो, तुम उससे मुक्त नहीं हो सकते।

लेकिन श्रोण ने भोगा था। अभी जवान ही था, कुल पैंतीस वर्ष उसकी उम्र थी, लेकिन थक गया था। इतना भोग लिया था जितना कि आदमी तीन-चार जन्मों में भोगे, वह उसने एक ही जन्म में भोग कर दिखा दिया। लेकिन ऊब गया। स्त्रियां बेमानी हो गईं। शराब व्यर्थ हो गई, भोजन में स्वाद न रहा--सब व्यर्थ दिखाई पड़ने लगा। और तब बुद्ध का गांव में आगमन हुआ। उनके पास गया। उन्हें देखा--सुना भी नहीं, सिर्फ देखा! एक परिपक्व अवस्था थी उसकी; भोग से ऊब गया था। त्यागी तो गांव में बहुत आए थे, लेकिन त्यागियों में उसे कोई रस नहीं आया था। त्यागी दिखते थे उदास--उससे भी ज्यादा उदास। त्यागी दिखते थे मुर्दा--उससे भी ज्यादा मुर्दा। न उनकी आंखों में ज्योति थी, न उनके जीवन में कोई आनंद की झलक थी, न कोई प्रकाश की किरण थी, न कोई प्रसाद था उनके आस-पास, न कोई सौंदर्य था-- कैसे प्रभावित होता?

लेकिन बुद्ध को देखा, सुना भी नहीं अभी, बुद्ध से बोला भी नहीं, बुद्ध ने एक शब्द भी नहीं कहा--और उनके चरणों में गिरा और उसने कहा कि मुझे दीक्षा दें। मैं भिक्षु होने को तैयार हूं। बुद्ध ने कहा- न तूने मुझे सुना, न तूने मुझे समझा, अभी मैं गांव में आया ही हूं, तू अभी-अभी मेरे पास आया; हालांकि तेरे बाबत कहानियां मेरे पास आ चुकी हैं, अनेक लोगों ने कहा कि आप श्रोण की नगरी जा रहे हैं, वह महाभोगी है, महा लंपट है, वह शायद आपके दर्शन को भी न आए। लेकिन तू आया है और आते ही से

भिक्षु होना चाहता है! उसने कहा कि आपको देख कर सब समझ में आ गया; एक मैं हूं कि सिर्फ भोग के ही कांटों से बिंध गया हूं। और मैंने त्यागी भी देखे हैं, उनको भी मैंने कांटों में बिंधा हुआ पाया। आपके जीवन में कुछ नई बात देखता हूं। न आप योगी मालूम पड़ते हैं, न आप भोगी मालूम पड़ते हैं। मगर आपकी यह प्रफुल्लित मुद्रा, आपके व्यक्तित्व की यह आभा, आपकी आंखों से झरता यह अमृत, काफी है... बस काफी है! आपकी उपस्थिति का बोध काफी है! मुझे दीक्षा दें! मैं एक क्षण भी नहीं गंवाना चाहता। क्योंकि कल का क्या पता है? मुझसे मत कहना आप कि सोच ले, विचार ले। सोचने-विचारने को कुछ बचा नहीं, मैंने सब भोग कर देख लिया है।

बुद्ध ने उसे दीक्षा दे दी। और जिस बात का डर था, वही हुआ। दीक्षा लेने के बाद वह तत्क्षण दूसरी अति पर चला गया, जो कि मनुष्य के मन की साधारण प्रक्रिया है। मनुष्य का मन यूं चलता है जैसे घड़ी का पेंडुलम। बाएं से दाएं, दाएं से बाएं। और एक ख्याल रखना पेंडुलम के संबंध में... जब पेंडुलम बाईं तरफ जाता है तो दिखाई तो पड़ता है बाईं तरफ जा रहा है, लेकिन वह दाएं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठा करता होता है। बायां जाता है और दाएं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठा करता है। जब दाएं जाता है तब बाएं जाने की शक्ति इकट्ठा करता है। दिखाई एक बात पड़ती है, भीतर कुछ और बात हो रही है।

और यही स्थिति तुम्हारे तथाकथित भोगियों की और त्यागियों की है। जाते त्याग में हैं, लेकिन तैयारी भोग की हो रही है... फिर चाहे भोग स्वर्ग में हो! और वही हालत तुम्हारे भोगियों की है। जाते हैं भोग में, लेकिन तैयारी त्याग की हो रही है। मगर अतियों के बीच डोलने से कुछ क्रांति नहीं होती। एक अति दूसरे पर ले जाती है, दूसरी फिर थका देती है और पहले पर ले जाती है। और जन्मों-जन्मों तक यह पेंडुलम ऐसा ही घूमता रहता है।

और वही हुआ। श्रोण ने अति करनी शुरू कर दी। अति उसकी पुरानी आदत थी। भोग में अति की थी, अब वह त्याग में अति करने लगा। बौद्ध भिक्षु दिन में एक ही बार भोजन करते थे क्योंकि बुद्ध का कहना था- पर्याप्त है... वह दो दिन में एक बार भोजन करता था। जिंदगी भर की पुरानी आदत, सबसे आगे होने की आदत, अगर दूसरे राजाओं के पास हजार स्त्रियां थीं तो उसने दो हजार इकट्ठी करके दिखा दी थीं; अगर दूसरे राजाओं के पास महल थे, तो उसने दुगुने बड़े महल बना कर दिखा दिए थे--वह भिक्षुओं में भी पीछे नहीं रह सकता था; वही अहंकार। बुद्ध से आंदोलित हो गया था, प्रभावित हो गया था, लेकिन प्रभावित होते से ही तो क्रांति नहीं हो जाती। क्रांति करने के लिए तो फिर रफ्ता-रफ्ता, एक-एक इंच जीवन को बदलना होता है। प्रभावित होना तो बहुत आसान है, क्रांति लंबी प्रक्रिया है, वह आग से गुजरना है। पुरानी आदतें एकदम से नहीं चली जातीं। लौट-लौट कर आ जाती हैं, पीछे के दरवाजे से आ जाती हैं। एक दरवाजे से फेंको, दूसरा दरवाजा खोज लेती हैं। उसने सब भिक्षुओं को मात कर दिया।

और भिक्षु सड़क पर चलते थे, वह हमेशा सड़क के नीचे से चलता था, जहां कांटे होते, कंकड़-पत्थर होते। उसके पैर लहूलुहान हो गए। और भिक्षु तीन वस्त्र रखते थे, वह सिर्फ एक लंगोटी रखता था। उसने सब भिक्षुओं को मात कर दिया। वही पुराना! उसने यहां भी अपना कब्जा जमा दिया। और सब साधारण रह गए, वह एकदम असाधारण हो गया। सुंदर उसकी देह थी, फूल जैसी कोमल उसकी देह थी, बहुत सुख में पला था, बहुत सुख में जीया था, उसने देह को बिल्कुल ही जला डाला धूप में। काला पड़ गया। सूख गया। पैरों में घाव हो गए। रात सोता तो भी कंकड़ों-पत्थरों पर सोता, बाहर सोता।

बुद्ध को खबरें आने लगीं कि उसकी हालत बिगड़ती जा रही है। हालांकि लोग उससे प्रभावित भी हो रहे थे ...लोग भी अजीब-अजीब तरह की चीजों से प्रभावित होते हैं... वह फिर अहंकार में मजा लेने लगा था।

बुद्ध एक रात उस झाड़ के पास गए जहां वह लेटा था और कहा- एक प्रश्न तुझे मुझसे पूछना है। और उसके पहले कि तू मुझसे प्रश्न पूछे, शायद तेरे सामने अभी साफ भी नहीं है प्रश्न, मैं तुझसे एक प्रश्न पूछता हूं, फिर तू भी शायद पूछ सकेगा। मैं राह देखता रहा कि तू पूछे। लेकिन लगता है कि तू प्रश्न को साफ नहीं कर पा रहा है, इसलिए पहले मैं पूछता हूं। मैं तुझसे पूछता हूं कि जब तू सम्राट था, तो सुना है मैंने कि तू अद्‌भुत वीणा बजाता था, तेरा वीणावादन अपूर्व था। श्रोण को भूली-बिसरी यादें आईं। उसने कहा, ''आप ठीक याद दिलाते हैं, मैं तो सब भूल-भाल गया हूं; हां, वीणा में मुझे रस था। और वीणा बजाने में मेरी कुशलता थी''। और दूर-दूर के संगीतज्ञ भी उसकी प्रशंसा करते थे। बुद्ध ने कहा- मुझे यह पूछना है कि तू वीणा का इतना कुशल वादक था, तुझे तो अच्छी तरह पता होगा कि वीणा के तार अगर बहुत ढीले हों तो क्या होगा? श्रोण ने कहा- तार ढीले हों तो संगीत पैदा नहीं होता है। और बुद्ध ने कहा- तार अगर बहुत कसे हों? तो उसने कहा- तो तार खींचोगे, टूट जाएंगे; संगीत फिर पैदा नहीं होगा। बुद्ध ने कहा- बस। तुझे कुछ पूछना है?

तू अपने जीवन पर पुनर्विचार कर ले। पहले तेरे तार बहुत ढीले थे, तब संगीत पैदा नहीं हुआ। अब तूने तार बहुत कस लिए हैं, अब तार टूटने के करीब हैं, अब भी संगीत पैदा नहीं हो रहा है। मुझे देख, मैं वीणा बजाना नहीं जानता, लेकिन जीवन की वीणा बजाना जानता हूं। और मैं तुझसे कहता हूं कि जो वीणा बजाने का नियम है, वही जीवन की वीणा को बजाने का नियम भी है। न तार बहुत ढीले होने चाहिए, न बहुत कसे। एक ऐसी भी अवस्था है तारों की, जब न तो कह सकते हैं हम कि वे कसे हैं और न कह सकते हैं कि ढीले हैं; वह मध्य की अवस्था, वह समता की अवस्था, वह सम्यकत्व, वह समतुलता की अवस्था जहां दोनों अतियों के बीच में तार होते हैं, वहीं संगीत पैदा होता है। और वीणा बजाना तो आसान है, लेकिन वीणा को ठीक समतुल अवस्था में लाना किसी उस्ताद को ही आता है।

श्रोण फिर बद्ध के पैरों पर गिरा, दुबारा। एक दफा गिरा था जब भोगी की तरह

आया था, आज गिरा योगी की तरह, त्यागी की तरह। उसने कहा- आपने मुझे ठीक समय पर सचेत कर दिया। जरूर मुझसे वही भूल हो गई। तार ढीले थे, मैंने जरूरत से ज्यादा कस लिए। मैं भी सोच रहा था कि आनंद पैदा क्यों नहीं हो रहा है? मैं सबकुछ तो कर रहा हूं, जो दूसरे कर रहे हैं उससे दुगुना कर रहा हूं। फिर आनंद क्यों पैदा नहीं हो रहा है? बुद्ध ने कहा- वह दुगुना करने के कारण ही पैदा नहीं हो रहा है। जीवन में एक सम्यकत्व चाहिए, तो छंद पैदा होता है, तो छान्दोग्य पैदा होता है।

शरीर से बहुत बंधने की जरूरत नहीं है, शरीर का दुश्मन होने की भी जरूरत नहीं है। शरीर सुंदर घर है, रहो, शरीर की देखभाल करो, अपने को शरीर ही न मान लो। मन भी प्यारा है। उसका भी उपयोग करो। उसकी भी जरूरत है। और हृदय तो और भी प्यारा है। उसमें भी जीओ। मगर ध्यान बना रहे कि मैं साक्षी हूं। और जिसे सतत् स्मरण है कि मैं साक्षी हूं, उसकी क्रांति सुनिश्चित है।

काया के तल पर चार महत्त्वपूर्ण बातें

प्यारे मित्रों, सद्गुरु ओशो ने इस बात को अनेक तरीकों से स्थापित किया, प्रतिष्ठित किया, कि मध्य मार्ग ही सही और सम्यक् मार्ग है। सभी प्रकार की अतियां गलत हैं। एक पुरानी कहावत है 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। बुद्ध का मार्ग मध्य-मार्ग कहलाता है। ठीक बीच में रहना, न इस तरफ झुकना, न उस तरफ। एक संतुलन की अवस्था सदैव बनी रहे।

अपने शरीर, अपने मन, अपने हृदय को ना तो बिल्कुल ढीला छोड़ देना, और ना ही बहुत कस लेना। दोनों छोरों से सावधान। मध्य दशा साधनी है। तब इसी संसार में रहते हम संन्यास की मंजिल को हासिल कर सकते हैं। गृहस्थ जीवन में ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, निर्वाण के आनंद को जान सकते हैं। संसार को छोड़कर भागने की कोई जरूरत नहीं। भोगी एक प्रकार की अति करता है, त्यागी दूसरे प्रकार की अति कर जाता है। दोनों छोर गलत हैं। न तथाकथित संसारी, गृहस्थ सही है; न तथाकथित साधक, संन्यस्त सही है। दोनों अतियां असम्यक् हैं। सद्गुरु ओशो ने एक नया रास्ता दिखाया। यहीं संसार में रहते हुए अपने घर परिवार के सारे उत्तरदायित्व निभाते हुए, हम एक ऐसा संतुलित जीवन जीएं कि हमारे भीतर संगीत सध जाए, प्राणों की वीणा पर अनहद नाद गूंज उठे। कैसे विराट और विशाल घटित हो सकता है, उस संबंध में कुछ थोड़ी सी बातें आपसे कहना चाहूंगा।

सबसे पहले यह प्राचीन धारणा गिरा दीजिए कि त्याग-तपस्या की जरूरत है। नहीं, किसी प्रकार के कष्ट झेलने की या कुछ छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। थोड़ी सी समझ की, नई दृष्टि की जरूरत है। कुछ छोड़ना नहीं है, कुछ जोड़ना भी नहीं है। जिसे हम पाने चले हैं वह पहले से ही हमारे भीतर मौजूद है--वह अमृत, वह चेतना--बस जरा उस तरफ हमें अपनी ऊर्जा को बहाना भर है। एक्सट्रोवर्ट, बाहरी दिशा में हमारी अतिशय ऊर्जा बह रही है, उसको थोड़ा सा भीतर लौटाना है, इन्ट्रोवर्ट करना है। थोड़ी समझदारी

बरतनी है, बस। और यहीं संसार में रहते-रहते हम निर्वाण हासिल कर सकते हैं। जीवन-मुक्त होने की अवस्था का आनंद उठा सकते हैं। सद्गुरु ओशो ने एक बिल्कुल ही नया मार्ग दिखाया। संक्षेप में जिसे वे कहते हैं 'झोरबा दी बुद्धा'। झोरबा शब्द संसार का, धन का, वैभव का, विज्ञान का सूचक है। बुद्धा शब्द अध्यात्म का, ध्यान का, शांति का, निर्वाण का प्रतीक है। इन दोनों का समन्वय हमारे जीवन में हो सकता है। हमें थोड़ा सा समझदार बनना होगा। न इस अति पर डोलना, न उस अति पर डोलना।

हमारा मनुष्यरूप में होना, मुख्य रूप से चार आयामों में विभाजित कर सकते हैं। जैसे चार दिशाएं हैं- उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम; और जैसे फोर डायमेंशनल एक्ज़िस्टेंस है- तीन आयाम स्पेस के और एक आयाम टाइम का; वैसे ही हमारा जीवन चार-आयामी है। प्रथम, सबसे बाहर है शरीर की परिधि, पैरीफेरी। द्वितीय, तन के भीतर है मन- विचारों का संग्रह, स्मृतियों का भंडार। तृतीय, मन के भी भीतर है हृदय- भावनाओं का लोक। चतुर्थ, बिल्कुल केंद्र में, बीचोंबीच हमारा स्वरूप है--चैतन्य आत्मा। तन कर्म का तल है, मन विचार का तल है, हृदय भाव का तल है और केंद्र बिंदु चेतना का तल है। अंग्रेजी में हम कहें--डूइंग, थिंकिंग, फीलिंग एंड बीइंग--करना, सोचना, भावना और होना। केन्द्र में हमारा होना चेतनामय है। ये चार हमारे आयाम हैं। इन चारों आयामों में हम ऐसा संतुलन साधें कि हमारा जीवन एक साधना बन जाए और हम जीवन के परम लक्ष्य को हासिल कर सकें।

प्रत्येक आयाम में, चार-चार मुख्य बातों पर जोर देना चाहूंगा।

पहले आयाम, शरीर में, चार बातें हमें ठीक से समझ कर साधनी हैं। छोटी-छोटी बातें हैं, कोई बहुत बड़ी बातें नहीं है। सबसे पहला- आहार। सम्यक् भोजन हो। सद्गुरु ओशो की प्रवचनों की एक एम.पी.थ्री. है- 'साधना में आहार का महत्त्व'। उन्होंने करीब पचास से अधिक प्रवचनों में भोजन का जिक्र किया है, कि भोजन कैसा होना चाहिए। एक साधक क्या खाए, क्या न खाए? और उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण, किस भावदशा में खाए? क्या खाए एवं कितना खाए, यह तो महत्त्वपूर्ण है ही। अगर हम जरूरत से ज्यादा भोजन करेंगे, तमस घेर लेगा, तब ध्यानपूर्ण नहीं हो पाएंगे। कम भोजन करेंगे, ऊर्जाहीन हो जाएंगे, तब भी ध्यान नहीं सध पाएगा। इसलिए आहार न कम हो, न ज्यादा। आपकी ऊंचाई के अनुसार आपका वजन सम्यक् होना चाहिए। उसे मेंटेन करने के लिए जो भोजन जरूरी है, जो न्यूट्रिएंट्स जरूरी हैं मेडिकल साइंस के हिसाब से, हमें वैसा भोजन लेना चाहिए। जो हमें पर्याप्त ऊर्जा दे, जो मूर्च्छा और नींद पैदा न करे। भोजन सात्विक हो, राजसी न हो, तामसिक न हो। भगवान कृष्ण ने गीता में वर्णन किया है कि तीन प्रकार के भोजन हैं--सात्विक, राजसिक और तामसिक। सद्गुरु ओशो ने बड़े विस्तृत ढंग से समझाया है 'गीता दर्शन' के व्याख्यानों में।

थोड़ा सा ख्याल कीजिएगा अपने भोजन पर। हम क्या, कितना, कैसे खा रहे हैं। न अंडर न्यूट्रीशन हो, न ओवर न्यूट्रीशन। दोनों प्रकार से उसका सौंदर्य नष्ट होता है। अपनी कायारानी का, अन्नपूर्णा का समुचित ध्यान रखना है।

मैं मेडिकल कॉलेज में पढ़ता था, करीब पैंतीस-चालीस साल पूर्व, तब हमारे देश में अंडर न्यूट्रीशन की बहुत बीमारियां थी। अस्पताल में मरीजों की बड़ी भीड़ या तो इंफेक्टिव डिज़ीज या मैलन्यूट्रीशन डिज़ीज से पीड़ित होती थी। छोटी-छोटी चीजें उपलब्ध न थीं, लोगों को उनका ज्ञान भी नहीं था। किसी को आयोडिन की कमी, किसी को आयरन की। किसी को विटामीन-सी का अभाव, किसी को बी-कॉम्प्लेक्स का, कैल्शियम का। इन चार दशकों में धीरे-धीरे विज्ञान की समझ बढ़ी है। लोग जागरूक हुए हैं। मेडिकल साइंस का प्रचार-प्रसार हुआ है, जगह-जगह अस्पताल बने हैं, लोग शिक्षित हुए हैं। भोजन के बारे में समझ आई है और संपन्नता भी आई है। पहले दो वक्त की रोटी भी सब को नसीब नहीं थी। अब ठीक उल्टी स्थिति हो गई। संपन्न मुल्कों में, उदाहरण के लिए अमेरिका में लोग हर दो घंटे में कुछ खा रहे हैं। अतिशय भोजन कर रहे हैं। वहां की तकलीफ अब ओवर न्यूट्रीशन की बीमारियां हैं। देखते हैं, कैसे इंसान डोल रहा है एक एक्स्ट्रीम से दूसरी एक्स्ट्रीम पर। हमारे देश में भी उसी दिशा में कदम उठ रहे हैं। महानगरों में लोग मोटापाजन्य रोगों से ग्रसित होते जा रहे हैं। क्या हम थोड़ी समझदारी नहीं बरत सकते? राइट न्यूट्रीशन, प्रॉपर न्यूट्रीशन नहीं ले सकते? और बैलेन्स्ड डाइट से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि हम किस भाव दशा में भोजन लेते हैं। क्या प्रसन्न अवस्था में, शांति में, प्रेम से, धन्यवाद भाव से भरे भोजन ग्रहण करते हैं? तब हम अपने भीतर अमृत डाल रहे हैं। अगर तनावग्रस्त होकर, अशांति में, बेचैनी में, परेशानी में, गुस्से में, जल्दबाजी में, हड़बड़ी में भोजन कर रहे हैं, तो अपने भीतर जहर डाल रहे हैं। थोड़ा ख्याल कीजिएगा। भोजन का समय ऐसा हो जैसे हम पूजा करने बैठे हैं। लोग पत्थर की मूर्ति को भोग लगाते हैं। जब अपने को भोग लगाओ, इसी भाव से लगाना कि मेरे भीतर भगवान मौजूद है। मैं उसको भोजन दे रहा हूं। जरा प्यार से, जरा शांतिपूर्वक, धन्यवाद भाव से ओतप्रोत होकर खाना ग्रहण करना। आज मुझे भोजन नसीब हुआ है, जरा अहोभाव से भर कर भोजन लूं!

भोजन के पश्चात दूसरी बात जो शरीर से संबंधित है, वह है श्वास। क्या हम ठीक से सांस ले रहे हैं? प्राणायाम और योग का पूरा विज्ञान सांस की तरकीब पर आधारित है। अक्सर जितनी सांस हम ले रहे हैं, वह सहज-स्वाभाविक नहीं है। हम बड़ी उथली सांस ले रहे हैं। हमारे शरीर में सांस लेने के दो इंतजाम हैं, एक हमारे सीने की पसलियों के बीच इंटर-कॉस्टल मसल्स हैं, जो सीने को फुलाती हैं, पिचकाती हैं। और दूसरा इंतजाम है--डायफ्राम--जो पेट को फुलाता-पिचकाता है। आप छोटे बच्चों को देखें, वे पेट से सांस लेते हैं। जैसे-जैसे वे अहंकारी और तनावग्रस्त होते जाएंगे, धीरे-धीरे ऊपरी हिस्से से, सीने से उथली सांस लेने लगेंगे। नींद में हम पेट से, गहरी सांस लेते हैं क्योंकि नींद में हम तनाव भूल जाते और शिथिल हो जाते हैं। सहज, स्वाभाविक सांस पेट से चलने वाली सांस है। अपने डायफ्राम का उपयोग करें। प्राणायाम के बहुत रूप हैं, मैं विस्तार में नहीं जाऊंगा, एक छोटा सा ही निवेदन करता हूं आपसे, जब-जब याद आ जाए, जरा धीमी और गहरी सांस लेना। बस! बात बन जाएगी।

सद्‌गुरु ओशो कहते हैं, अगर कोई अनापानसतीयोग को ही साध ले, कुछ और विशेष साधना करने की उसको जरूरत नहीं है। छोटी सी बात का ख्याल रखे, जरा धीमी गहरी सांस ले, जैसी नींद में चलती है, जैसी छोटे बच्चों की चलती है, और आप पाएंगे एक रूपांतरण की प्रक्रिया से धीरे-धीरे आप गुजरने लगे।

सामान्यतः हम एक मिनट में पंद्रह से लेकर बीस बार सांस लेते हैं। जब आप थोड़ी सी गहरी सांस लेने की याद रखेंगे तो पाएंगे मुश्किल से दस-बारह सांस प्रति मिनट की गति हो गई। जब आप कोई काम-धाम नहीं कर रहे, रिलैक्स्ड बैठे हैं, उस समय एक मिनिट में केवल छः-सात बार सांस चलेगी। और यह सांस ही नहीं बदलेगी, धीरे-धीरे आपका पूरा जीवन-ढांचा, लाइफ-पैटर्न, सबकुछ बदल जाएगा। एक छोटी सी चीज को परिवर्तित करें और देखें कैसे सब चीजें परिवर्तित हो जाती हैं।

शरीर के तल पर पहली चीज हुई सम्यक् संतुलित आहार, दूसरी चीज हुई प्राणों का आयाम, धीमी गहरी सांस। फिर तीसरा महत्त्वपूर्ण बिंदु है--सम्यक् श्रम। प्रकृति के द्वारा हमारा शरीर बहुत मेहनत करने के लिए बनाया गया है। किंतु सभ्यता, विज्ञान और यंत्रों के विकास के संग हम सब राजकुमार वाली अवस्था में पहुंच गए हैं--अति भोग विलास में। हो सकता है आपको आजीविका कमाने के लिए शारीरिक श्रम करने की जरूरत न हो, लेकिन कृपा कर अपने शरीर की देखभाल करने के लिए अवश्य मेहनत कीजिए, अनावश्यक ही सही।

एक अमीर आदमी अपने मित्र को बता रहा था कि पहले मैं बहुत गरीब था, पैदल चलता था या साइकल पर। बड़ी मेहनत करके मैंने स्कूटर लिया। फिर और धन कमाया, कई साल लगे, तब कार खरीदी। फिर और पैसा एकत्रित किया, खूब खाया-पिया, काफी मोटा हो गया। ब्लड प्रेशर, कोलेस्ट्रॉल और ट्राइग्लिसराइड बढ़ गए, डायबिटीज हो गई। डॉक्टर ने कहा कि जिम ज्वाइन करके घंटा भर रोज साइकल चलाओ। एक घंटा सुबह बगीचे में घूमो। अब मैं बीस लाख की कार में बैठकर प्रातः भ्रमण करने जाता हूं, शाम को जिम जाता हूं और वहां जाकर साइकल चलाता हूं। इसको बोलते हैं 'री-साइकलिंग'!

थोड़ी सी अक्ल हो तो हम पहले से ही पैदल चलते रहें और साइकल चलाते रहें। ठीक है, कार गैरेज में खड़ी रहे, प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए। अपने शरीर की मांसपेशियों का उपयोग अवश्य करें। प्रकृति ने हमें यह अद्‌भुत शरीर दिया है। अगर हम कुछ मेहनत नहीं करेंगे तो हम शरीर को नुकसान पहुंचाएंगे। हम उसके मित्र नहीं, दुश्मन बन गए। हम उसके स्वास्थ्य को, सौंदर्य को नष्ट करने वाले हो गए। अपनी देह के प्रति अत्यंत प्रेमपूर्ण और सम्मानपूर्ण बनें।

मैं आपसे यह नहीं कह रहा हूं कि अन्नपूर्णा को, पहली बीवी को छोड़ दो। अपनी काया का ठीक से ख्याल रखो। समझदार बनो, सम्यक् श्रम करो।

काया के तल पर चौथी बात है--सम्यक् विश्राम। ठीक-ठीक नींद लें। कई लोग मुझसे कहते हैं कि सुबह हम ध्यान करने बैठते है, तो झपकी लग जाती है, खर्राटे भरने

लगते हैं; क्या करें? भाई साहब, रात को ठीक से सोइए। अच्छे से, गहरी नींद में जी भर के सोइए। क एसामान्यतः औसत व्यक्ति को सात-आठ घंटे नींद की जरूरत होती है। किसी को थोड़ी कम, किसी को थोड़ी ज्यादा हो सकती है। मैं खुद करीब दस घंटे रोज सोता हूं। सबके लिए आवश्यकता थोड़ी-थोड़ी भिन्न हो सकती है। स्वयं के लिए जो सहज है, स्वाभाविक है, उसे खोजना। एक नियम सब के लिए नहीं हो सकता है, परंतु अंदाजन करीब आठ घंटा औसत नींद जरूरी है। विशेषकर आज के युग में, बिजली के अनुसंधान के पश्चात और कम्युनिकेशन की नई-नई टेक्नोलॉजी, मोबाइल और व्हाट्सऐप, ई-मेल, इंटरनेट, फेसबुक, ट्विटर और न जाने क्या-क्या... ! जो लोग दो-तीन बजे रात तक ऑनलाइन हैं, वे सुबह उठ कर कैसे ध्यान करेंगे? संभव ही नहीं। जैसे ही बॉडी रिलैक्स होगी, वे शांत होकर बैठेंगे ध्यान करने के लिए, तुरंत नींद घेर लेगी। नींद की जरूरत पेंडिंग है।

आधुनिक नगरों में रहने वाला शिक्षित व्यक्ति अनिद्रा का शिकार है, पीड़ित है और इससे उसका तन, मन, हृदय सब कुछ डावांडोल हो गया है। मेरे परिचित, दिल्ली के प्रसिद्ध डेंटिस्ट डॉक्टर शर्मा का एक दिन मेसेज आया मेरे पास कि स्वामी जी, क्या सोशल मीडिया ध्यानी साधक के जीवन में बाधक है? मैंने उत्तर दिया- निश्चित ही बाधक है। जिस प्रकार से लोग उपयोग कर रहे हैं, निश्चित रूप से बाधक है। इतने ज्यादा इंवॉल्व्ड हैं। कोई व्हाट्सऐप का दीवाना है, कोई कुछ और। न जाने किस-किस प्रकार की नई-नई दीवानगियां पैदा हो गई हैं। हर चीज का सम्यक् उपयोग सही है। जरूरत से ज्यादा कोई चीज बढ़ गई तो बस गलत हो गई। याद रखना 'अति सर्वत्र वर्जयेत'। मैं कोई खिलाफत में नहीं हूं सोशल मीडिया के। लेकिन हमें तय करना होगा कि हम कितना समय और वक्त इसमें जाया करें? हम अपनी जिंदगी की कितनी ऊर्जा इसमें लगा सकते हैं? कई लोग मुझसे कहते हैं कि अपना मोबाइल नंबर मुझे दे दीजिए। मैं कहता हूं कोई फायदा नहीं, मेरा मोइबाल ऑफ ही मिलेगा हमेशा जब भी आप करोगे। आप मेसेज कर देना, मैं चौबीस घंटे में एक बार खोलकर जरूर देखता हूं। सम्यक् उपयोग। जितना जरूरी है। सम्यक् नींद का जरूर-जरूर ख्याल रखना।

सद्गुरु ओशो की एक किताब है 'ध्यान सूत्र'। उसमें उन्होंने क्रमशः समझाया है कि साधक के लिए ध्यान में डूबने के लिए कौन-कौन सी बातें जरूरी है। उन्होंने बहुत एम्फेसाइज किया है सम्यक् निद्रा की आवश्यकता पर। न जरूरत से कम, न जरूरत से ज्यादा। ज्यादा सोए तो तुम तामसी हो जाओगे, कम सोए तो राजसी हो जाओगे। बीच में है सात्विक होना। उस मध्य मार्ग को जरा पकड़ना और यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए थोड़ा-थोड़ा भिन्न है। हमको खुद ही थोड़ी सी खोजबीन करनी होगी, प्रयोग कर के देखना होगा। दो-चार एक्सपेरिमेंट करेंगे तो समझ में आ जाएगा कि मेरे लिए क्या उचित है। हो सकता है जो भोजन मेरे लिए उचित है इस उम्र में, वह एक दूसरे व्यक्ति के लिए पच्चीस साल की उम्र है उसके लिए उचित ना हो; कोई बारह साल का बच्चा है उसके लिए उचित

ना हो। हमें अपने उम्र के हिसाब से, बीमारी के हिसाब से, अपने क्रियाकलापों के हिसाब से चीजों को तय करना होगा। और समय के साथ चीजें बदल जाएंगी, हम फिक्स्ड भी नहीं हो सकते। पांच साल पहले मेरे लिए जो भोजन जरूरी था, आज वह जरूरी नहीं है। समय के साथ चीजें बदल जाती हैं। हमें सतत् जागरूक होना होगा और इन चार बातों को अपनी इस अन्नपूर्णा काया के लिए हमें साधना होगा।

पुनः दोहरा दूं। भोजन, स्वांस, शारीरिक श्रम और नींद। इनमें एक संतुलन, एक सम्यकता चाहिए।

मन के चार आयाम

अब समझें अपने दूसरे तल पर--मन के तल पर भी हमें चार विशेष बातों का ध्यान रखना है कि उसमें एक संतुलन हो, एक बैलेंस हो। सबसे पहली चीज है विचार। हमारा मन वस्तुततः विचारों का भंडार है। तीन स्थितियां समझ लें। एक है अविचार की स्थिति जिसमें पशु-पंछी, पेड़-पौधे जी रहे हैं। विचार नहीं हैं उनके पास। एक है साधारण मनुष्य। अतिशय विचार, विचारों की भीड़। अनर्गल विचार, असंगत विचार। उसके कंट्रोल में नहीं, उसके नियंत्रण में नहीं। आपको नींद आ रही है, लेकिन मन में कोई चिंता पकड़ी और वह चिंता अपने विचार किये चली जा रही। आप चाह रहे हैं कि सो जाऊं, लेकिन नींद नहीं आ पा रही। आपका कोई वश ही नहीं है मन पर कि चिंता को आप बंद कर सकें। यह मन आपका है कि आप मन के गुलाम हो। हमने अपना स्वामित्व खो दिया, मन को मालकियत दे दी है। बहुत ज्यादा विचार।

कुछ सालों पहले मनोवैज्ञानिकों ने एक अध्ययन किया था यू.एस.ए. में और उनकी रिपोर्ट आई थी कि आज से छः सौ साल पहले एक औसत व्यक्ति को दिन भर में जितनी सूचनाएं मिलती थीं, आज के आधुनिक शिक्षित व्यक्ति को एक दिन में उससे छः सौ गुना ज्यादा इंफॉर्मेशन मिलती है। इंफॉर्मेशन टेक्नोलॉजी का कमाल! हमारा मन इतनी सूचनाओं को संभालने के काबिल नहीं है। यह विदुषी विक्षिप्त हुई जा रही है, यह रानी। उस पर इतना बोझ डाल दिया गया है। इतनी सूचनाएं, इतनी सूचनाएं, बिना काम की बातें। जिससे हमें कुछ लेना-देना नहीं। जैसे मैंने आहार के बारे में कहा, हम हर कुछ तो नहीं खाते। आप एक रेस्टोरेंट में खाना खाने गए और आपने देखा कि वहां बड़ी गंदगी है, मक्खियां भिनभिना रही हैं, मच्छर हैं बहुत, कुछ बदबू आ रही है और आप टेबल पर खाना खाने बैठे हैं। वहां से एक चूहा दौड़ता हुआ निकला और दो-तीन कॉकरोच भी दिखाई दे गए। क्या आप वहां खाना खाएंगे? कभी नहीं खाएंगे! आप वहां से उठ कर चल देंगे। यह तो हाइजीनिक नहीं है। आप सुबह अखबार पढ़ते हैं- क्या वह हाइजीनिक है? क्या वे सूचनाएं जो आप अपने भीतर डाल रहे हैं अखबार में से, वे लेने योग्य हैं? कभी आपने विचार किया? जब भोजन के बारे में हम इतने सतर्क हैं, विचार भी तो आहार है, मन का आहार, मन का भोजन। इस मन में क्या डालना है, क्या नहीं डालना

है, थोड़े सावधान होना। फालतू की अनावश्यक बातें भीतर ना जाएं।

मैंने पिछले चालीस साल से अखबार नहीं पढ़ा, टी.वी.न्यूज नहीं देखी। क्यों देखूं? मुझे क्या लेना-देना? कल पत्रकार मीटिंग में, वे मुझसे राजनीति के सवाल पूछने लगे। मैंने कहा क्षमा कीजिए मुझे इसके बारे में पता ही नहीं। आप जिन मंत्रियों के नाम ले रहे हैं मैंने कभी सुना ही नहीं। मेरा कोई सरोकार नहीं राजनीति से। अध्यात्म के बारे में कुछ पूछेंगे तो मैं बताऊंगा, सद्गुरु ओशो के बारे में कुछ पूछेंगे तो मैं जरूर बताऊंगा। उनकी किताबों के अध्ययन के अलावा मैंने कुछ अध्ययन नहीं किया। हां, जब तक मैं मेडिकल प्रैक्टिस करता था तब तक मेडिकल साइंस की मैगजीन पढ़ता था। वह मेरे काम से संबंधित था। उसमें मुझे अप-टू-डेट रहना है। साइंस रोज-रोज बदलती है। वह मेरा प्रोफेशनल ज्ञान था। उसके अलावा मुझे और कोई ज्ञान नहीं है। मेरी जनरल नॉलेज बिल्कुल जीरो है, वह मेरी कोई इच्छा नहीं बढ़ाने की। मैं अपने मन पर अनावश्यक बोझ क्यों डालूं? जब आजीविका कमाने के लिए मेडिकल साइंस का ज्ञान रखना जरूरी था, उतना ज्ञान मुझको रहता था। अब मैं जो कार्य कर रहा हूं ध्यान सिखाने का, समझ और जागरुकता सिखाने का, उसके लिए जो जरूरी है बस उतना ही। जितना एकदम एसेंशियल है, जरूरी है। उसके अतिरिक्त मेरे पास कुछ नहीं है। न मैंने कोई शास्त्र पढ़े, न मैंने कोई ग्रंथ पढ़े, ओशो साहित्य के अलावा मैं कुछ जानता ही नहीं और मुझे नहीं लगता जिंदगी के बचे हुए सालों में मैं कभी कुछ और पढूंगा। मुझे जो पाना था मुझे मिल गया। मेरी मंज़िल हासिल हो गई।

हमको सावधान होना होगा। हम अपने मन में क्या डाल रहे हैं? क्यों डाल रहे हैं? बी सिलेक्टिव। हर कोई आकर आपसे कुछ बातचीत करने लगा और आप सुन रहे हैं। नहीं, यह तो उचित नहीं। कोई आपके घर में आकर कचड़ा-कूड़ा डाल जाए, क्या आप डालने देंगे? आप झगड़ा कर लेंगे, पुलिस में रिपोर्ट कर देंगे कि हमारे घर में कचड़ा क्यों फेंकते हो? और आपके कान में आकर लोग डाल रहे हैं दुनिया भर की बातें और आप मोबाइल बिल्कुल चिपकाए हैं। और महिलाएं तो तब तक चिपकाए रहती हैं जब तक बैटरी खत्म न हो जाए। बकबक-बकबक चल रही है। बेमतलब की बातें क्यों? यह कचड़ा-कूड़ा अपना-अपना रखे रहो, दूसरे की खोपड़ी में मत घुसाओ। और आश्चर्य की बात कि जो लोग हमारे मन में कचड़ा-कूड़ा डाल रहे उन्हें हम मित्र कहते हैं, हितैषी कहते हैं। ये हितैषी नहीं, ये तो हमारे दुश्मन हैं। अपने मन को साफ-सुथरा रखो। नहीं तो जो हालत उस रानी विदुषी की हुई थी, वही हमारी अवस्था हो रही है मन की।

सावधान! विचार के मामले में, सम्यक् विचार। तो मैंने कहा एक स्थिति है अविचार की जिसमें पशु-पंछी जी रहे हैं। दूसरी है अतिशय विचार की जिसमें आम आदमी जी रहा है और एक है निर्विचार की अवस्था जिसमें कोई ज्ञानीजन, बुद्ध पुरुष जीते हैं। उनके पास भी मन है, लेकिन मन उनका गुलाम है। वे किसी समस्या पर विचार करना चाहें तो वह खूब विचारशील व्यक्ति हैं। सामान्य व्यक्ति से बहुत ज्यादा प्रतिभा है उनमें

विचार करने की। लेकिन जब कोई जरूरत नहीं, उनका मन स्विच ऑफ, वह निर्विचार में है। निर्विचार में जीने वाला व्यक्ति ही वास्तव में विचारशील हो सकता है। साधारण आदमी क्या खाक विचारशील होगा? विचार उसके बस में ही नहीं। आप किसी प्रश्न का समाधान ढूंढ़ने चले, मन वहां टिकता ही नहीं, और पच्चीस व्यर्थ की बातें चली आ रही हैं। आप क्या खाक समाधान खोज पाओगे? चिंतन-मनन की शक्ति केवल उस व्यक्ति को उपलब्ध होती है जिसको निर्विचार होने की कला आ गई।

तो अतिशय विचार की भीड़ से सावधान और क्रमशः निर्विचार की ओर बढ़ना है। याद रखना पशु-पंछी अलग दिशा में हैं, वे विचार कर ही नहीं सकते और बुद्ध पुरुष विचार कर सकते हैं जब चाहें तब। ये मालिक हैं अपने। दोनों में बड़ा फर्क है, इसलिए एक को हम कह रहे हैं अविचार, एक को हम कह रहे हैं निर्विचार। दोनों में बड़ा भेद है।

तो मन की पहली बात हुई विचार के बारे में। दूसरी बात मैं कहना चाहूंगा धारणा। महर्षि पतंजलि ने भी अपने योग शास्त्र में योग के अष्टांग हिस्सों में अंतिम तीन अंग गिनाए हैं, जिनको उन्होंने योग का अंतरंग कहा है। इनर पार्ट्स ऑफ द योगा; वे हैं- धारणा, ध्यान, समाधि। धारणा हमारे मन का हिस्सा है। धारणा यानी हम एक प्रकार से किसी चीज को मान रहे हैं। ऐसी मान्यता जो हमारे विकास में सहयोगी हो, वह पॉजिटिव धारणा है। अपने मन को पॉजिटिव धारणा से भरना। निगेटिव धारणाएं हमारे जीवन को नुकसान पहुंचाती हैं।

अब समझो किसी व्यक्ति में इंफिरिऑरिटी कॉम्प्लेक्स की धारणा हो गई। अब यह इसके जीवन को बहुत हानि पहुंचा रही है। यह नर्वसनेस का शिकार हो जाता है। इसके मन में है कि मैं कोई काम कर ही नहीं पाऊंगा, मैं तो असफल हो जाऊंगा और इसकी इस धारणा की वजह से यह असफल हो जाता है। तब इसकी धारणा और मजबूत हो जाती है कि देखो मैं तो पहले ही कह रहा था कि बहुत कठिन काम है, यह नहीं होने वाला। अगर हमारे मन में गलत धारणाएं बैठ गई हैं, हमारे जीवन में वैसे ही परिणाम आने लगेंगे और तब हमारी मान्यता और पक्की हो जाती है कि मैं जो मानता था ठीक ही मानता था। देखो ऐसे ही हुआ न।

हमारी धारणा की वजह से वैसा हुआ। अगर हम इसकी विपरीत धारणा अपने भीतर बिठाल लेते तो उसके भी परिणाम आते। अगर मैं मानता हूं कि हां, यह काम सरल है, मैं कर सकता हूं। कोई अन्य कर सकता है, मैं क्यों नहीं कर सकता। आई विल डू इट और मैं उस चैलेंज को लेता हूं और उस काम में लग जाता हूं। तब मेरी धारणा मुझे सफलता की ओर ले जाती है। हमारी जिंदगी में जो भी परिणाम आते हैं, हमारे मन की धारणाओं के खेल हैं। लेकिन हमारे मन में बहुत सी धारणाएं छोटी उम्र से, बचपन से बैठ गईं। खासकर निगेटिव धारणाएं। कभी पिता जी ने डांट दिया। कह दिया तुम गधे हो, नालायक हो, कभी किसी टीचर ने कह दिया उल्लू के पट्ठे तुमसे कुछ नहीं होने वाला, यू आर गुड फॉर नथिंग और हमने उनकी बातों पर भरोसा

किया। छोटा बच्चा बड़ा श्रद्धालु होता है। माता-पिता ने, शिक्षकों ने कह दिया कुछ, उसके मन में गहरी बैठ जाती है बात। अब यह जिंदगी में कुछ न कर पाएगा। इसको अपने मन की धारणाओं को पलटना होगा।

ओशो फ्रेगरेंस में हम लोग एक तीन दिन का कार्यक्रम चलाते हैं जिसका नाम है सम्मोहन प्रज्ञा। इसमें हम आर्ट ऑफ सेल्फ हिप्नोसिस सिखाते हैं। अपने भीतर की निगेटिव धारणाओं से कैसे मुक्ति पाना और कैसे पॉजिटिव सकारात्मक धारणाओं को अपने भीतर बिठाना। एक बार हिप्नोसिस की यह कला सीख कर कोई व्यक्ति अपने घर में सोने के पहले बीस मिनट रोज प्रयोग करे, ध ीरे-धीरे वह सकारात्मक भाव को अपने भीतर बिठा सकता है। रेपिटिशन। निगेटिव धारणा भी रेपिटिशन से, सुन-सुन कर बार-बार... बार-बार कोई बात कही गई... वह हमारे भीतर बैठ गई। अगर हम इससे विपरीत बात अपने भीतर बिठाएं, रिपीट करते जाएं, करते जाएं, हम पाएंगे नई धारणा हमारे भीतर बैठ गई और उसके अनुसार हमारे जीवन ने बिल्कुल दूसरी ही दिशा ले ली। धारणा बहुत महत्वपूर्ण है। [illegible] पर पहली बात मैंने कही 'विचार'। दूसरी बात कही मैंने 'धारणा'। तीसरी बात कहना चाहता हूं 'संकल्प', 'विल पावर'। आप क्या चाहते हैं? विल, आपकी इच्छा क्या है? एक स्ट्रांग विल पावर हो। संकल्प का अर्थ है जहां पर कोई विकल्प न हो। विकल्प रहित। विकल्प यानी ऑल्टरनेट्स। हमारा मन डोलता है, यह कर लूं, वह कर लूं, यहां चला जाऊं, वहां चला जाऊं, यह ठीक नहीं, वह ठीक नहीं। क्या सही, क्या गलत। ऐसा व्यक्ति जीवन में कुछ भी नहीं कर पाता। आध्यात्मिक साधना भी नहीं कर पाएगा। एक स्ट्रांग विल चाहिए। एक निर्णय। एक सिंगल डिसिज़न और डिटरमिनेशन, अब उसको पूरा करना ही करना है। जिस व्यक्ति के भीतर विल पावर पैदा हुआ वही एक दिन आध्यात्मिक यात्रा में भी सफल हो पाता है। संसार में भी वह सफल होगा और अध्यात्म में भी सफल होगा।

ये जो बातें मैं आपको बता रहा हूं ये आपको आपके संसार से तोड़ेंगी नहीं, आपके संसार को भी सुंदर बनाएंगी और आपके जीवन को साधनामय बना देंगी। भीतर की ओर अग्रसर भी बना देंगी। हमारा साधारण मन ऐसा है, जिसमें बहुत सारी इच्छाएं हैं। मिर्ज़ा ग़ालिब का वह शेर आपने सुना होगा-

'हजारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पे दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान, लेकिन फिर भी कम निकले।।'

हजारों ख्वाहिशें...। ऐसा हो गया जैसे किसी कार में चारों दिशाओं में इंजन लगे हों और सारे इंजन हमने ऑन कर दिए। इस कार की क्या दुर्गति होगी? हजारों ख्वाहिशें। हमारे जीवन रथ में हजारों घोड़े जुते हुए हैं। कोई इस तरफ खींच रहा है, कोई उस तरफ, कोई इस तरफ, कोई उस तरफ, कभी कोई ज्यादा ताकतवर एक तरफ खींच लेता है, थोड़ा सा उस तरफ हम खिसक जाते हैं। इस बीच में अन्य घोड़ों को रेस्ट मिल

गया, दूसरी इच्छाओं के घोड़े। उन्होंने शक्ति जुटा ली, जिसने खींचा था वह थक गया। बस अब दूसरी तरफ के घोड़े खींच लेंगे। हमारा जीवन रथ अंततः नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, समाप्त हो जाता है, हम कहीं नहीं पहुंच पाते। ताकत खूब लगी, मेहनत खूब हुई। यहां गए, वहां गए, यहां गए, वहां गए, सब कुछ किया। पहुंचे कहीं भी नहीं। जिस व्यक्ति को कहीं जाना है, उसे स्पष्ट निर्णय करना होगा कि मेरे जीवन की दिशा क्या होगी? क्या होनी चाहिए? तब उसके भीतर संकल्प उत्पन्न होता है।

मन के तल पर चौथी बात... विचार, धारणा और संकल्प के बाद, वह है 'स्मृति', 'मेमोरी'। भगवान बुद्ध ने तो मन को स्मृति-आलय नाम दिया। स्टोरहाउस ऑफ द मेमोरी, यही हमारा मन है। जो हमें अनुभव हुए हैं, जो हमने जाना है, सुना है, पढ़ा है, लिखा है, महसूस किया है, वह सब हमारे मन में स्टोर्ड है। इस स्मृति को भी बुद्ध कहते हैं सम्यक् स्मृति बनाओ। सद्‌गुरु ओशो के अंतिम प्रवचन का, अंतिम शब्द है 'सम्मा सती।' बुद्ध की पाली भाषा में 'सम्यक् स्मृति' को 'सम्मा सती' कहा जाता था। राइट माइंडफुलनेस। इससे आप इसका महत्त्व आंक सकते हैं। सद्‌गुरु ओशो के अंतिम प्रवचन का अंतिम शब्द 'सम्यक् स्मृति'। अपने भीतर के मेमोरी को जरा साफ-सुथरा करो। इसमें बहुत कुछ कचड़ा-कूड़ा जमा है। इस मन को लेकर हम अध्यात्म में प्रवेश नहीं कर पाएंगे। बहुत कुछ दमित है, सप्रेस्ड है। उसको निकाल बाहर करने की कला ओशो ने सिखाई।

ओशो ने अद्‌भुत ध्यान की विधियां बनाईं। मैं कुछ नाम लेना चाहूंगा। जैसे डायनेमिक मेडिटेशन, सक्रिय ध्यान, बॉर्न अगेन मेडिटेशन, मिस्टिक रोज़ मेडिटेशन, इनसे गुजर कर देववाणी या जिबरिश ध्यान कर के हम अपने भीतर की व्यर्थ स्मृतियों से मुक्ति पाते हैं। तब हमारा मन साफ-सुथरा, सुंदर, सजधज जाता है। जैसे हम अपने घर की साफ-सफाई करते हैं रोज झाड़ू-बुहारी लगाकर धूल-मिट्टी बाहर फेंक देते हैं, पुराने गुलदस्ते हटा देते हैं। नया फूल, नई पत्ती। अपने घर को हम सजा लेते हैं। क्या हमें ऐसा ही अपने मन के साथ नहीं करना चाहिए? इसमें क्या-क्या अनर्गल भरा हुआ है और बहुत विरोधाभासी और विपरीत बातें भरी हुई हैं और उनकी वजह से हमारी बड़ी मुसीबत है। सो मेनी कांट्राडिक्ट्री थिंग्स आर टुगेदर। ध्यान विधियों से गुजर कर हम अपने स्मृतिआलय को साफ-सुथरा कर सकते हैं। जो काम की चीज है उसे हम बचाएंगे। जो व्यर्थ है, अनावश्यक है, ठीक है वह कभी रही होगी उपयोगी, आज उसका कोई उपयोग नहीं है, उससे छुटकारा भी पाएंगे।

ओशो फ्रेगरेंस में लोग आते हैं **आनंदमय जीवन** करने के लिए। उनको पहले दिन हम पूछते हैं कि आपका मुख्य दुख क्या है? लोग क्या-क्या बातें बताते हैं। कोई बताता है कि जब मैं छोटा था, आज से चालीस साल पहले, पिताजी ने मुझे थप्पड़ मारा था। मेरी कोई गलती नहीं थी, वह मैं नहीं भूल पाता, अभी भी याद है। मुझे बहुत गुस्सा आता है। पूछा आपके पिताजी हैं दुनिया में? बोले नहीं वे तो स्वर्गवासी हो गए। भई और कितने साल

आपको क्रोधित रहना है पिताजी पर? अब वे सज्जन हैं भी नहीं! आप खुद ही पचास साल के हो गए। कब तक इस चीज को अपने भीतर रखे रहोगे? इसका कोई उपयोग है क्या? ठीक है मैं मानता हूं आपके पिताजी से गलती हो गई, आपकी गलती नहीं थी, उन्होंने भूल से आपको चांटा मार दिया। क्या यह बात इतनी इंपॉर्टेंट है कि आज तक इसको सहेजा जाए? पिताजी ने आपके लिए बहुत कुछ अच्छा भी किया है। आपको जन्म दिया है, आपका भरण-पोषण किया है, आपको पढ़ाया-लिखाया है, आपको आजीविका कमाने योग्य बनाया है, आपका शादी-ब्याह करवाया, घर-गृहस्थी बसवाई। क्या नहीं किया? अपनी वसीयत देकर बेचारे चले गए। एक चांटा मारा था गलती से। वह याद है, बाकी सब चीजें भूल गए। क्या यह सम्यक् स्मृति कही जा सकती है? यह तो ऐसा हुआ कि हजार फूल थे हमारे पास, हमने सब फेंक दिए और जो कांटे थे उन्हें चुभा-चुभा कर हम बैठे हुए हैं, जो-जो गलत था। यह आदमी पागल है क्या? अपने मन की स्मृति को साफ-सुथरा करना होगा।

तो पुनः दोहरा दूं। मन के तल पर चार बातें। विचार, धारणा, संकल्प और स्मृति। इनको हम मैनेज कर लें, हमारा मन विवेकपूर्ण हो जाता है। जिसको हम कहें प्रज्ञावान। अभी हमारा मन विवेकपूर्ण नहीं है, हम प्रज्ञावान नहीं हैं। हम मन के गुलाम हैं और यह मन स्वयं ही बड़ी अनर्गल बातों से भरा पड़ा है। यह जिस दिशा में हमें ले जाएगा वह सही नहीं हो सकती। हमें सचेत होकर, जागरूक होकर अपने मन का ख्याल रखना होगा। इस दूसरी रानी का भी ख्याल रखना।

आपको जानकर हैरानी होगी। पीछे मैं किसी यूनिवर्सिटी में बोलने गया था। ओशो की 'शिक्षा में क्रांति', इस पुस्तक के विषय में चर्चा चल रही थी और मैंने वहां मेंशन किया कि अगर आप पिछले दो सौ, डेढ़ सौ सालों का ग्राफ खींचें कि शिक्षा का प्रचार-प्रसार किस प्रकार हुआ, यह ग्राफ ऊपर बढ़ता जा रहा है, सारी दुनिया में। दूसरा ग्राफ आप खींचिए दुनिया में पागलखानों की संख्या और पागलों की गिनती कितनी है? पिछले डेढ़ सौ साल का वह ग्राफ खींचिए। और अपराधों और युद्धों का, हिंसक घटनाओं का, उसका भी ग्राफ खींचिए और आप हैरान होंगे... तीनों ग्राफ ऊपर चले जा रहे हैं, बिल्कुल पैरलल एक दूसरे के। सामान्यतः हम कभी सोचते नहीं कि इन तीनों में कोई संबंध है; लेकिन जब ये तीनों ग्राफ एक साथ ऊपर जा रहे हैं तब तो आपको क्लीयर हो गया कि इनमें आपस में संबंध है। पिछली सदी में जितना विज्ञान विकसित हुआ है, जितना ज्ञान फैला है, जितने विश्वविद्यालय खुले हैं, जितने स्कूल-कॉलेज खुले हैं छोटे-छोटे गांव देहात तक में, आदिवासी स्थानों तक में, इतनी शिक्षा तो कभी भी न थी। हमने अद्‌भुत रूप से इस क्षेत्र में गति की है। लेकिन उसके साथ-साथ याद रखना पिछली सदी में दो भयंकर विश्वयुद्ध हुए हैं। ऐसे युद्ध कभी नहीं हुए थे। और ये विश्वयुद्ध किन्हीं गरीब, अशिक्षित मुल्कों की देन नहीं थे। ये सुसभ्य, सुसंस्कृत, सर्वाधिक शिक्षित संपन्न देशों से आए थे। और अगर तीसरा विश्वयुद्ध कभी होगा... आखिरी, वह

भी उन्हीं की कृपा होगी, सुशिक्षित लोगों की। जितना मनोविकारों से ग्रस्त आदमी आज है, उतना कभी नहीं था।

कई बार मैं हैरान होता हूं, जितने पागल लोग आज हैं, इतने कभी नहीं हुए थे। पुराने जमाने में जो पागल थे वे दूसरे प्रकार के थे, मेंटली रिटार्डेड, किसी कारण से उनका मन विकसित नहीं हो पाया, कुछ ब्रेन डैमेज किसी कारण से हो गया था, जन्म के समय या जन्म के पूर्व ही। वे दूसरे प्रकार के पागल थे, मेंटली रिटार्डेड। आज जो पागल हैं ये दूसरे हैं। ये उस रानी विदुषी के प्रतीक हैं। महाज्ञानी, महाविद्वान। इतना मन में भरा हुआ है कि उनकी यह छोटी सी खोपड़ी उसको संभाल नहीं पा रही है। भ्रष्ट हुई जा रही है। पागल हो गए हैं। जितनी हिंसा, अपराध और जेल, कोर्ट, कचहरी दुनिया में बढ़े हैं उसका ग्राफ बिल्कुल पैरलल चल रहा है शिक्षा के साथ। जिसे हम ज्ञान कह रहे हैं आज, क्या उसे सम्यक् ज्ञान कहा जा सकता है? थोड़ा सा सोचिएगा। इसका जो बाई-प्रोडक्ट है, वह देखिए क्या है? वह है आतंकवादी, वह है युद्धखोर, लड़ाकू लोग, हिंसक लोग, दुर्घटनाएं, ऐक्सीडेंट्स, बढ़ते हुए अपराध, बढ़ती हुए पागलों की गिनती, टेंशन और तनावग्रस्त लोग, डिप्रेशन के शिकार लोग। बहुत पुरानी बात नहीं... चालीस साल पहले जब मैं स्टूडेंट था उस समय डिप्रेशन की बीमारी के बारे में हम केवल क्लास में पढ़ते थे। अस्पताल में हमें मरीज देखने को नहीं मिलते थे। कभी-कभार कोई डिप्रेशन का मरीज आता तो हमारे शिक्षक बुलाकर बताते थे कि यह देखो एग्ज़ाम्पल। आज हर दस-पंद्रह लोगों के बीच में एक डिप्रेशन का शिकार है। जितने लोग आज दुनिया में स्यूसाइड कर रहे हैं, इतने कभी किसी ने स्यूसाइड नहीं किए थे। हमारी शिक्षा, हमारी संपन्नता, हमारा ज्ञान हमें कहां ले आया? आत्महत्या के कगार पर। क्या यही हमारा लक्ष्य था? सावधान! अपने मन का ख्याल रखना।

चार तरह की भावनाएं

अब तीसरे तल पर चलें--हृदय के तल पर, भावना के तल पर। क्या नहीं होना चाहिए मैं उसका जिक्र नहीं करूंगा। हमारे प्यारे सद्गुरु ओशो कहते हैं नकारात्मक के साथ मत लड़ना। बहुत लोग मेरे पास आते हैं। कहते हैं क्रोध है मन में क्या करें? मैं चुप रह जाता हूं। कुछ न करो। क्योंकि तुम क्रोध ही हो, जो कुछ करोगे आउट ऑफ ऐंगर होगा। उससे कुछ भला नहीं होने वाला। कोई कहता है यह मुश्किल, वह मुश्किल। नहीं, इनके साथ हम कुछ नहीं कर सकते, इस बात को खूब अच्छे से समझ लेना। ओशो कहते हैं नकारात्मक चीजें ऐसे हैं जैसे अंधकार, डार्कनेस, इट इज़ ओनली ऐबसेंस ऑफ लाइट, यू कैन नॉट डू एनीथिंग विद द डार्कनेस। एक घर में अंधेरा है तो हम क्या कर सकते हैं? उससे मारपीट करेंगे? जूडो कराटे करेंगे? तलवार से उसको काट कर टुकड़े-टुकड़े कर देंगे, कि प्रोफेशनल गुंडों को बुलवाकर पिटवा देंगे उसको। क्या करें? कि बंदूक चलाएं, गोली मार दें अंधेरे को। नहीं, अगर हमने ज्यादा पहलवानी की तो हम

अपने आप को ही चोट पहुंचा लेंगे। अंधेरे का हम कुछ भी न बिगाड़ सकेंगे। और तब हम एक गलत निष्कर्ष पर पहुंच जाएंगे कि अंधकार अत्यंत शक्तिशाली है, हम तो हार गए अंधेरा जीत गया। हम तो उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाए।

जो व्यक्ति क्रोध से लड़ेगा, घृणा से लड़ेगा, ईर्ष्या को दूर करने की कोशिश करेगा, अहंकार को मिटाने का उपाय करेगा, एक दिन वह इसी निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि ये सब बहुत मजबूत हैं, मैं तो कमजोर हूं, मैं तो थक गया, मैं हार गया। यह भूल कभी न करना। फिर हम क्या करें? हम प्रकाश को जलाने का उपाय करें। अंधेरा अपने आप ही गायब हो जाएगा। हमें कुछ करना नहीं पड़ेगा।

तो वह प्रकाश क्या है भावनाओं के तल पर? चार मुख्य भावनाओं पर मैं जोर देना चाहूंगा। इनको अपने भीतर हमें साधना है, संवारना है और वे हमारे भीतर मौजूद हैं। लेकिन हम उनको गलत जगह अप्लाई करते हैं। हमें कोई नई चीज पैदा नहीं करनी है। उदाहरण के लिए ये चार भावनाएं- मित्रता की भावना, करुणा की भावना, उपेक्षा की भावना और शुक्रिया की भावना, धन्यवाद की भावना। ये चार मुख्य भावनाएं हमारे भीतर हैं, लेकिन गलत जगह इनका संयोग बैठ गया है।

महर्षि पतंजलि के योग शास्त्र पर सद्गुरु ओशो ने प्रवचनमाला दी है। 'योगा द अल्फा एंड द ओमेगा'। उसमें जिक्र आता है चार मुख्य भावनाओं को साधने का। संक्षेप रूप में मैं वही आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूं। मित्रता की भावना, फ्रेंडलिनेस। किसके प्रति? मित्रता की भावना आप में है। लेकिन किसके प्रति? ओशो कहते हैं सुखी व्यक्ति के संग मित्रता की भावना रखना। करुणा की भावना दुखी व्यक्ति के प्रति लगाना। सज्जन व्यक्ति के प्रति, सद्गुणों के प्रति, धन्यवाद की भावना, अहोभाव, प्रसन्नता की भावना, मुदिता, प्रसन्नता, प्रफुल्लता और चौथी भावना 'उपेक्षा', किसके प्रति? दुर्जन के प्रति, दुर्गुणों के प्रति। इस बात को जरा समझना, इसका गणित। ये चारों भावनाएं हम सब में हैं। मैं कोई नई बात आपको नहीं बता रहा हूं। लेकिन हमारी भावनाएं बस गलत दिशा में लगी हुई हैं। सुखी व्यक्ति के प्रति हमारे अंदर मित्रता की भावना नहीं रहती। सुखी व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या की भावना होती है, जलन की भावना होती है। गलत! सुखी व्यक्ति के संग मित्रता की भावना रखना। क्योंकि जिसको मित्र कह रहे हैं, उसके जैसा हम होना चाहते हैं।

अगर आप एक प्रसन्न व्यक्ति, आनंदित व्यक्ति के साथ प्रेम भाव रखेंगे, दोस्ताना रखेंगे, धीरे-धीरे आप भी उसके जैसे होने लगेंगे। लेकिन सुखी व्यक्ति के साथ हम रखते हैं ईर्ष्या। जैसे कि उसने हमारा कुछ छीन लिया। एक बुद्ध शांत हैं, याद रखना उन्होंने आपसे शांति नहीं छीनी है। एक महावीर ने परम आनंद को पा लिया, आज महावीर जयंती का दिन है। महावीर ने किसी से छीना नहीं है। एक सद्गुरु ओशो आजीवन उत्सवमय जीवन जीए, किसी से छीना नहीं है। इनके प्रति ईर्ष्या मत रखो। इनके प्रति मैत्री भाव रखो। इनके जैसा हमें होना है। एक पॉजिटिव क्वॉलिटी हमें विकसित करनी है। हमारा जीवन भी सेलिब्रेशन हो

सकता है। सुखी व्यक्ति के प्रति मित्र भाव रखना। दूसरी बात मैंने कही करुणा की भावना, कम्पैशन, दुखी के प्रति। दुखी के प्रति हमारा कौन सा भाव रहता है खूब अच्छे से पकड़ना। गहरे में टटोलना। दुखी को देख कर हम खुश होते हैं। दूसरे को दयनीय हालत में देख कर हमें दया आती है, हमारा अहंकार पुष्ट होता है कि मैं इससे बेहतर स्थिति में हूं। यह मुझसे गया बिता। ऊपर-ऊपर से हम सिम्पथी दिखाते हैं, सहानुभूति दिखाते हैं। सहानुभूति करुणा नहीं है। सिम्पथी इज नॉट कम्पैशन।

जब आप एक भिखारी को दस रुपए का नोट देकर आगे बढ़ते हैं, तो याद रखिएगा भिखारी के मन में क्या आता है? सोचता है कि काश एक दिन ऐसा आए कि यह सज्जन बैठे भीख मांग रहे हों और मैं रुपए फेंकता हुआ यहां से निकलूं। आपने रुपये देकर भी उसका अपमान किया है। आज उसकी मजबूरी है, उसको हाथ फैलाने पड़ रहे हैं। लेकिन वह आपको दुआ दे नहीं सकता। वह चाहे कितना ही कहे कि जो दे उसका भी भला, जो न दे उसका भी भला। भीतर-भीतर वह उल्टा मंत्र जप रहा है। वह क्षमा नहीं कर सकता देने वाले को। न देने वाले को तो कर ही नहीं सकता। देने वाले को भी नहीं कर सकता। क्योंकि उसकी दयनीय स्थिति में आप अपना अहंकार पुष्ट कर रहे हैं। आपका देना करुणापूर्ण नहीं है। जिसको हम सेवा कहते हैं, सिम्पथी कहते हैं, सहानुभूति कहते हैं उसमें और करुणा में बड़ा भेद है। करुणा में हम दुखी व्यक्ति की मदद करना चाहेंगे; लेकिन हम यह नहीं चाहेंगे कि वो उस अवस्था में रहे। इस पॉइन्ट को मैं थोड़ा सा एम्फ़ॅसाइज़ करना चाहूंगा क्योंकि इस बारे में बहुत कंफ्यूज़न हो जाता है।

ओशो के पास एक ईसाई मिशनरी आया और कहने लगा कि मैं पश्चिम से आया हूं और यहां भारत के धर्म और धार्मिक लोगों को देखकर मैं थोड़ा चकित हूं। यह तो ईसाई धर्म से बिल्कुल भिन्न है। यहां किसी को सेवा तो सिखाई ही नहीं जाती और ईसाई धर्म में तो मान्यता है कि सेवा के बिना स्वर्ग नहीं मिलता, मुक्ति नहीं मिलती। हिंदू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म यहां तो सेवा का कोई प्रचलन ही नहीं है कहीं। यह कैसा धर्म है? ओशो ने कहा तुम एक बात बताओ। तुम मिशनरी हो, सेवा करने निकले हो, तुम चाहते हो सब का भला हो जाए, सब ठीक हो जाएं, स्वस्थ हो जाएं, शिक्षित हो जाएं, संपन्न हो जाएं, यही चाहते हो? उसने कहा हां, हम सारे मिशनरी लाखों की गिनती में इसी कार्य में लगे हुए हैं। ओशो ने कहा- मान लो, कल्पना करो कि वह दिन आ गया और सब लोग अच्छी हालत में हो गए, अब किसी को सेवा की जरूरत नहीं, फिर तुम लोग क्या करोगे? वह थोड़ा मुश्किल में पड़ा। फिर स्वर्ग कैसे जाओगे? बिना सेवा के तो स्वर्ग मिलता नहीं, मुक्ति होती नहीं। वह मिशनरी कहने लगा- नहीं-नहीं आप मजाक कर रहे हैं, ऐसा हो ही नहीं सकता। तो फिर तुम यही चाहते हो कि ऐसा न हो। दैट्स व्हाट यू वांट? तुम्हारे भीतर यही कामना है कि लोग दयनीय हालत में रहें और इसलिए तुम पश्चिम से पूरब आए हो। क्योंकि वहां लोग काफी ठीक हालत में हो गए हैं। वहां तुम्हें मजा नहीं आता। यहां तुम आदिवासी इलाकों में पहुंच कर फिर उनकी सेवा करोगे। मिल गए तुम्हें शिकार। ओशो ने कहा

तुम कसम खा कर कहो तुम्हारे मन में क्या आया था। क्या तुम चाहते हो कि दुनिया के सब लोग वास्तव में सुखी हो जाएं। कहने लगा नहीं। यह तो मैं नहीं चाहता।

ऊपर-ऊपर से देखने में यही लगेगा कि आदमी सब को सुखी करने के लिए इतनी मेहनत कर रहा है। मैं आपको और दो-तीन उदाहरण से समझाता हूं, समझ में आ जाएगा। मैं स्वयं एक डॉक्टर हूं, इसलिए डॉक्टरों के उदाहरण से समझा दूं। ऊपर-ऊपर से क्या लगता है कि डॉक्टर स्वास्थ्य के सेवा में हैं। अभी आने वाला है जुलाई-अगस्त का महीना, सितंबर का महीना। हमारे पूरे देश में मक्खी-मच्छर और उनसे फैलने वाले इंफेक्शन्स की भयंकर बीमारी होगी। डॉक्टर लोग बड़े प्रसन्न होंगे और कहेंगे आज-कल खूब अच्छी सीज़न चल रहा है। और दिसंबर-जनवरी के महीने में इंफेक्शन्स ठीक हो जाएंगे, लोग बीमार भी होंगे तो बस सर्दी-जुकाम, और कुछ खास नहीं। और बेचारे डॉक्टर बैठे-बैठे क्या करें? आप क्या सोचते हो? डॉक्टर वाकई में चाहते हैं कि सब स्वस्थ हो जाएं?

मैंने सुना है एक बिल्डर अपनी एक नई बसाई कालोनी की बड़ी तारीफ कर रहा था। एक ग्राहक को बता रहा था कि हमने जिस इलाके में कॉलोनी बसाई वहां की आबोहवा ऐसी है, वातावरण ऐसा है, इतना स्वच्छ है, स्वास्थ्यप्रद है, कभी कोई बीमार पड़ता ही नहीं है। वहां पास से जो नदी बहती है उसका पानी इतना बढ़िया है, यह है, वह है। बड़ी तारीफ कर रहा था वह। तो वह उस ग्राहक को साथ लेकर दिखाने गया, वह कॉलोनी जो उसने नई बसाई थी। फिर वह अपनी तारीफ करने लगा कि यहां की हवा ऐसी है, वृक्ष ऐसे हैं, नदी ऐसी है, यह है, वह है। कभी कोई बीमार नहीं पड़ता। जब वहां से बाहर निकल रहे थे तब देखा कि एक बहुत ही दुर्बल दीन-हीन सा आदमी सड़क के किनारे बैठा हुआ है, कमजोर, और कह रहा है मुझे सहारा देकर जरा उठा लीजिए। तब इस ग्राहक ने कहा कि आप तो कह रहे थे कि कोई बीमार नहीं पड़ता। यह इतनी दुर्बल हालत में, उठते भी नहीं बन रहा उससे और जवान आदमी है कोई बूढ़ा भी नहीं है। तब बिल्डर ने बताया कि इस कॉलोनी का डॉक्टर है। दैट प्रूव्स, व्हाट आई वॉज़ सेइंग इज राइट, इस बेचारे के खाने-पीने का ही इंतजाम नहीं हो पाता! अगर सारे लोग स्वस्थ हो जाएं तो अस्पतालें बंद हो जाएंगी, डॉक्टर भूखे मर जाएंगे। डॉक्टर कभी नहीं चाहेगा कि ऐसा हो।

दूसरा उदाहरण ले लीजिए। पुलिस वाले हैं, वकील हैं, कोर्ट-कचहरी है, जज हैं। हम क्या सोचते हैं? ये लोग न्याय व्यवस्था ठीक से चले, इसलिए हैं? उस सेवा में रत हैं। जब किसी पुलिस ऑफ़िसर को सजा देनी हो, उसको ऐसे इलाके में भेज देते हैं जहां अपराध नहीं होते। वहां न घूसखोरी होगी, न रिश्वत होगी। कोई अपराध होते ही नहीं, न कोई रिपोर्ट लिखाने आएगा, न कुछ होगा। और जो अपने प्रिय लोग हैं उनको प्रमोशन कर के ऐसी जगह भेजते हैं जहां बहुत अपराध होते हैं। वहां कमाई होगी उनकी। अपराधियों के साथ मिलीभगत है। अगर अपराध ही नहीं होंगे तो वकील क्या करेंगे? जज क्या करेंगे? इतने बड़े-बड़े कारागृहों के जेलर क्या करेंगे? उन सब की छुट्टी हो जाएगी, सब अपने-अपने घर जाओ भई। यहां कोई जेल में आते ही नहीं हैं। सब लोग

सुधर गए हैं। जाकर कुछ खेती-बाड़ी करो। सुप्रीम कोर्ट के जजों से कहेंगे आपलोग जाइए कुछ और करिए। कुछ बगीचे वगैरह लगाइए, फल पैदा कीजिए। ऊपर-ऊपर से क्या लगता है कि ये लोग न्याय व्यवस्था संभाल रहे हैं। लेकिन इनकी आंतरिक मनोकामना क्या है? कि हमेशा अन्याय होता रहे। हमेशा होता रहे।

अब आप समझ सकते हैं जिसको मैं कह रहा हूं सेवा, सिम्पथी, वह करुणा से बिल्कुल भिन्न है। करुणा का मतलब है कि किसी दुखी को देखकर हम स्वयं दुखी नहीं हो रहे हैं, हम उसको उसके दुख से बाहर लाने की कोशिश कर रहे हैं और हम चाहेंगे कि इसको दुख न हो। वास्तव में न हो। एक दिन ऐसा आए कि हमें कुछ भी करने की जरूरत न पड़े। कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कबीर, कोई ओशो जब करुणा से भरता है तो वह इस प्रकार की भावना होती है। वे चाहते हैं कि दुनिया में कभी मेरी जरूरत ही न हो। लोग मुझे भूल जाएं। मुझे करने को कोई काम ही न हो। यह हुई करुणा। तो दुखी के प्रति करुणा की भावना रखना। दुखी के प्रति हम सुपीरिऑरिटी कॉम्प्लेक्स से भरते हैं, अहंकार से भरते हैं, हमारी वह भावना नहीं होती वहां।

तीसरी भावना का मैंने आपसे जिक्र किया- प्रसन्नता, प्रमुदिता, उत्फुल्लता, खुशी, धन्यवाद, शुक्रिया, अहोभाव। यह भी बहुत महत्त्वपूर्ण पॉजिटिव फीलिंग है। इसको अपने भीतर विकसित करना। किसके प्रति? सुखी लोगों के प्रति, सज्जन लोगों के प्रति। जहां किसी में कोई सद्गुण देखो उसके प्रति फ़ील करना। प्रभु की कृपा। सद्गुरु को देख कर हमारे मन में क्या आता है? अविश्वास और संदेह। अगर आज अखबार में छपा हो कि फलाने-फलाने महात्मा जी सूरत नगर में आए हुए हैं और उनका प्रवचन है, बड़े पहुंचे हुए ज्ञानी हैं, यह हैं, वह हैं। उनकी प्रशंसा लिखी हो। वह न्यूज़ पढ़कर सबसे पहले क्या ख्याल में आएगा? कि होगा कोई पाखंडी। अरे आजकल के कलयुग में कहां के महात्मा। गए वह दिन। किसी सद्गुरु की बात हमको हजम नहीं होती। हम मानते ही नहीं कि ऐसा हो सकता है। हम संदेह की दृष्टि से देखते हैं। हमारे मन में धन्यवाद का भावना नहीं आती कि वाह प्रभु! तेरी कृपा कि ऐसे फूल भी तूने खिलाए हैं। नहीं, हम तो कहेंगे कि जरूर धोखाधड़ी है। आए दिन तो साधु-संत पकड़े जाते हैं। देखना, दो-चार दिन में इनकी भी पोल खुल जाएगी। जहां कहीं कोई सदगुण हो, हमें भरोसा ही नहीं आता कि है। फूलों पर हमें भरोसा नहीं, कांटों पर हमें श्रद्धा है। है हमारे भीतर भी श्रद्धा, मगर गलत चीज पर है।

याद रखना, वह व्यक्ति कैसा है इसका तो हमें नहीं पता; एक बात पक्की है, फिर हम वैसा कभी नहीं हो पाएंगे। सज्जन व्यक्ति को देख कर, साधु को देख कर किसी के भी भीतर, कोई भी सद्गुण देख कर तुम्हारे भीतर प्रसन्नता आनी चाहिए कि वाह! क्या बात है। ऐप्रीसिएशन, धन्यवाद का भाव आना चाहिए कि प्रभु की कृपा है, ऐसे मनुष्य भी हैं दुनिया में। क्या कहना! मुझे नहीं पता कि वह व्यक्ति वैसा है कि नहीं, लेकिन आपका जीवन उस दिशा में आगे बढ़ने लगेगा। यह पॉजिटिव फीलिंग आपके जीवन को एक नई दिशा देगी।

और चौथी भावना मैंने आपसे कही, वह है उपेक्षा की भावना। बी इनडिफरेंट,

किसके प्रति? दुर्गुण के प्रति, दुर्जन के प्रति, पापी के प्रति, बुराई के प्रति, अशुभ के प्रति। जहां भी सत्यम् शिवम् सुंदरम् हो, उसके प्रति आह्लाद का भाव। खुश होना। और जहां कहीं तुम्हें असत्य, अशिव, असुंदर नजर आए वहां उपेक्षापूर्ण हो जाना। बी इनडिफरेंट, डोंट गेट इन्वॉल्व्ड; इतना भी नहीं कि उसको सुधारने की कोशिश करो। इस बात को जरा कान खोल कर सुन लेना। उपेक्षा की भावना बुराई के प्रति। हैं, जीवन में बुराईयां हैं, कांटे हैं। लेकिन हमें उन कांटों से उलझने की जरूरत नहीं है। हमने कोई ठेका नहीं ले लिया है दुनिया को सुधारने का। अभी हम क्या करते हैं? जहां कहीं कोई बुराई की चर्चा हुई, हम उसमें भारी रस लेते हैं।

अंग्रेजी में कहावत है गुड न्यूज़ इज नो न्यूज़, अच्छी खबर कोई खबर ही नहीं है। इसका मतलब है कि सिर्फ बुरी खबर ही खबर है। अखबार में आप क्या पढ़ते हैं? टी.वी न्यूज़ में आप क्या देखते हैं? जरा उसको क्लासिफ़ाई कर के देखना, उसमें कभी आपने कोई अच्छी बात देखी? फ्रंट पेज पर ऊपर से नीचे तक सिर्फ बुराईयां ही बुराईयां हैं। कहां एक्सीडेंट हो गया, कहां ट्रेन पटरी से उतर गई, कहां बस में आतंकवादियों ने आग लगा दिया, कहां बम फोड़ा, कौन किसकी बीवी को ले भागा, कहां सामूहिक बलात्कार हो गया, किसने किसका मर्डर कर दिया, कौन अफ़सर रिश्वत लेते पकड़ा गया, कौन साधु-महात्मा जेल में पहुंच गए, किस राजनेता ने घोटाला कर दिया। इसके अलावा कुछ पढ़ा आपने? अगर किसी दिन यह सब न छपा हो, ब्लैंक अखबार आए, उसमें लिखा हो कि आज कोई भी दुर्घटना नहीं हुई। एक संपादकीय टिप्पणी छोटी सी। आप पटक देंगे उसको। अरे! दो रुपए बेकार गए। आप दो रुपए में क्या-क्या करवा देना चाहते हो। यह है बुराई में रस लेना।

और ओशो क्या कह रहे हैं? बुराई के प्रति उपेक्षा। बी इनडिफरेंट, इतना भी नहीं कि हम इसको बदलेंगे, सुधारेंगे। हमें क्या लेना-देना? जीसस का एक वचन है बाइबिल में। कोई ईसाई, पादरी उसकी व्याख्या नहीं करता। वह यही है। रेज़िस्ट नॉट ईविल, बुराई का प्रतिरोध न करो। बुराई से न लड़ो। मैं समझता हूं ओशो के अलावा अन्य किसी भी विद्वान ने इस संबंध में कोई चर्चा ही नहीं की। सामान्यतः तो हम यही समझते हैं कि धर्मगुरु हमसे कहेगा कि बुराई से लड़ो। बुराई को जीतना है, अपने भीतर के दुर्गुणों से भी लड़ो, दूसरों के दुर्गुणों को भी सुधारो। ईसा मसीह कह रहे हैं रेज़िस्ट नॉट ईविल, कोई प्रतिरोध नहीं। बी इनडिफरेंट, भगवान बुद्ध ने 'उपेक्षा' शब्द इस्तेमाल किया है। न अपने भीतर बुराईयां ढूंढना, न दूसरों के अंदर बुराईयां ढूंढना। बुराई में रस ही मत लेना। है तो रहने भी दो। तुम तो अपने भीतर पॉजिटिव चीजों को सहयोग दो। वह कैसे? इस पौधे में पानी सींचो कि यह पुष्पित-पल्लवित हो। यह पेड़ बड़ा हो। तुम चिंता न करो कि और दूसरे झाड़-झंखाड़ हैं। अगर तुमने उनमें रस लिया, यहां तक कि तुम उनके विरोधी भी हो, तब भी तुम उस पेड़ में पानी डाल रहे हो। और जिस पौधे में तुम जल सिंचन करोगे वह पौधा विकसित होगा। सावधान! सुनने में बड़ी अटपटी सी लगती है यह बात। लेकिन तुम देखना कि बुराई में लोगों का कितना रस है।

अगर ऐसी कोई फिल्म बना दो जिसमें बुराई न हो। वह फिल्म चलेगी नहीं। मुझे याद आता है सन् १९७२ या ७३ की बात है। भगवान महावीर की पच्चीस सौ वीं जयंती मनाई जा रही थी। उस समय ओशो मुंबई में रहते थे। तो मुंबई के ही कुछ जैन धर्मावलंबी उनके पास आए और उन्होंने कहा कि हम महावीर के विचार को फैलाने के लिए, उनके संदेश को दूर-दूर तक फैलाने के लिए क्या करें? तो ओशो ने उनसे कहा कि आप ऐसा करो, किताबें तो बहुत हैं दुनिया में और मीडिया बदल रहा है। कोई अच्छी फिल्म बनाओ महावीर के जीवन पर। उनकी देशना पर। क्योंकि आधुनिक युग में अब ऑडियो-वीडियो ज्यादा प्रभावशाली है बजाय किताब के। वे लोग गए। हफ्ते भर बाद वे लोग फिर वापस लौटे। उन्होंने कहा कि हमने धन का आयोजन कर लिया, चंदा जमा किया, यह किया, वह किया, फिर हम फिल्म निर्माताओं के पास गए। और हमें बड़ी निराशा हुई सुनकर। उन्होंने कहा कि महावीर के जीवन पर कोई कहानी नहीं बन सकती। वह फिल्म चलेगी नहीं। कहानी तो तब बनेगी कि एक हीरो हो, दो हीरोइन हो और खींचातानी मची हो। एक फूल दो माली। कुछ झगड़ा-झंझट हो, मारपीट हो, हिंसा हो। यह 'अहिंसा परमो धर्मः' वाले महावीर पर क्या कहानी बनाओगे? वह चुपचाप जंगल में खड़े हैं। इस दृश्य को कब तक दिखाओगे? कोई आकर उनके साथ हिंसा भी कर जाए उसका वह जवाब ही नहीं देते। वह आंख तक नहीं खोलते। ऐसी गजब की उपेक्षा। एक बार आंख खोल कर देख तो लेते कौन है? क्या कह रहा है? गाली दे रहा है, पत्थर मार गया। देखने की भी जरूरत नहीं। टोटली इंडिफरेंट। उन्होंने कहा कि हम लोगों ने बहुत कोशिश की, कथाकारों से मिले, फिल्मी लेखकों से मिले कि भई कोई कहानी बनाओ। वे कहते कि महावीर के ऊपर क्या कहानी बनेगी? कुछ बन नहीं सकती। कुछ है ही नहीं कहानी।

इसका मतलब हमें बुराई देखने में रस है। हम अच्छाई देखना ही नहीं चाहते। अब आप समझिए- ये चारो भावनाएं आपके भीतर हैं, लेकिन हमने उनको गलत जगह लगा कर रखा है। अब सावधान होकर अपनी इस तीसरी रानी- भावना को कहां-कहां, कैसा-कैसा उपयोग करना है, उसका ख्याल रखना। मित्रता को लगाना सुखी, शांत, आनंदित व्यक्तियों के प्रति। उनकी दोस्ती करना। उनका संग करना। उपेक्षा करना बुराई की। खुश होना, अहोभाव से भरना- सद्‌गुणों को देख कर, अच्छे व्यक्तियों को देख कर। और यही बात अपने भीतर भी अप्लाई करना। तुम्हारे भीतर भी बहुत सद्‌गुण मौजूद हैं, उन पर ध्यान दो। उसके प्रति धन्यवाद दो, प्रभु की कृपा है कि हमारे भीतर वह गुण है। चलो छोटे रूप में ही सही, है तो। बीज रूप में ही सही, हम उसमें ध्यान का पानी सींच-सींच कर वृक्ष बना लेंगे। भीतर मौजूद तो है। दुखी के प्रति करुणा, लेकिन करुणा में शोषण न हो। तहे दिल से हम चाहें कि वह व्यक्ति इस स्थिति से बाहर निकल आए और हम उसके दुख में दुखी न हों। अगर हम उसके दुख में दुखी हो गए तो फिर मामला तो कुछ हल नहीं हुआ। पहले एक दुखी थे अब दो दुखी हो गए। लाभ क्या हुआ? नहीं,

ऐसी सिम्पैथी नहीं दिखाना। कई लोगों को इस बात से नाराजगी होती है।

कल ही एक पत्रकार पूछ रहे थे कि ओशो के संन्यासी और प्रसिद्ध फिल्मी हीरो विनोद खन्ना कैंसर से पीड़ित हैं और उनका स्वास्थ्य दिनों-दिन बिगड़ता जा रहा है। क्या आप उनके लिए प्रार्थना करते हैं? मैंने उत्तर तो दिया पर उनकी समझ में कुछ आया नहीं होगा। मैंने कहा, पहली बात ऐसा कोई ईश्वर नहीं है जिससे प्रार्थना की जा सके। दूसरी बात, सद्‌गुरु ओशो ने सिखाया है- जीवन भी हंसते हुए जीना और शांति से, आनंद से, उत्सवपूर्ण ढंग से मरना। ओशो ने अपनी भी मृत्यु का उत्सव मनवाया और आश्रम में जिसकी भी मृत्यु हुई उसका सेलिब्रेशन किया गया। तो वह तो चाहेंगे उनका संन्यासी शांत, प्रसन्न, आनंदित इस जीवन से विदा हो। धन्यवाद देता हुआ। इतना जीवन मिला था बहुत है। वह मुझको ऐसा देख रहे थे कि जैसे मुझे दुखी होना चाहिए।

फिर मैंने उनको एक दूसरा उदाहरण दिया। मेरे साथ ओशो टुडे पत्रिका की संपादिका मां ओशो मोक्षा हैं। मैंने कहा यह देखो। इनके चाचा जी बहुत बीमार हैं। वह भी कैंसर से पीड़ित हैं, बंबई के अस्पतालों में उनका भी इलाज चल रहा है। अमेरिका से कन्सल्टेशन चलता रहा उनके इलाज का। जर्मनी में जाकर उन्होंने डेढ़ महीने इलाज कराया और अब ऐसा लग रहा है कि बस आजकल में वह विदा हो जाएंगे। और मैंने कहा कि कई बार मुझे लगता है, ऐज़ ए डॉक्टर मैं स्टेटमेंट दे रहा हूं कि मेडिकल साइंस एक सीमा तक तो वरदान है; लेकिन एक सीमा को क्रॉस करने के बाद वही अभिशाप जैसी हो जाती है।

जापान में मैंने इस चीज को देखा। वहां दुनिया में सबसे ज्यादा बूढ़े लोग हैं। हजारों लोग हैं जो सौ साल के उम्र क्रॉस कर चुके और ओल्ड पीपल होम। सब लोग ऐसी दुर्गति में हैं, कोई दस साल से, कोई बीस साल से, कोई पच्चीस साल से वहां है। किसी को दस साल से नकली सांस चल रही है, किसी को दस साल से पेसमेकर लगा हुआ है, कोई पंद्रह साल से डाईलिसिस पर है। किसी को हर हफ्ते ब्लड चढ़ाना पड़ता है। अधिकांश लोगों की आंख, कान, आदि इंद्रियां काम करना बंद कर चुकी हैं। अधिकांश की बुद्धि भी खत्म हो चुकी है। मस्तिष्क भी समाप्त हो चुका है। नरक कहीं देखना हो तो जापान के ओल्ड पीपल्स होम देख लेना। लेकिन मार सकते नहीं, क्योंकि मारना अपराध है। ऐसा कोई संविधान नहीं है। अब मेडिकल साइंस इतनी उन्नत होती चली जा रही है कि अब मेडिकल साइंस हैज़ बिकम ए टॉर्चर टु द पेशेंट। इसको किसलिए जिंदा रखना? क्यों जिंदा रखना? कब तक? एक सवाल उठना चाहिए। हर चीज की एक सीमा है। एक सीमा तक जीवन भी प्यारा है, बचाने योग्य है। एक सीमा के बाद बचाने योग्य नहीं है। हम आनंदपूर्वक, उत्सवपूर्वक जीएं और आनंदपूर्वक, उत्सवपूर्वक विदा हों। इसमें हर्ज क्या है? व्हाट इज़ रांग इन इट?

तो दुखी को देख कर दुखी नहीं होना, दुखी को दुख से निकालने का प्रयास करना। यह ऐसे ही हुआ जैसे कोई आदमी कीचड़ में फंसा है, डूब रहा है दलदल में, आप किनारे

खड़े हैं। अब आप छलांग लगाकर कीचड़ में मत कूद जाना कि यह बेचारा इतना परेशान। अब आप भी कीचड़ में फंस जाओगे इससे कोई समस्या हल नहीं हुई। आप कृपया अपने किनारे पर रहो, वहां से क्या किया जा सकता है निकालने का वह देखो। कुछ किया जा सकता है तो अवश्य करो। यह करुणा हुई। किसी के दुख में दुखी आपको नहीं होना है। आप अपने आनंद में रहो। आपकी शांति बरकरार रहे। ठीक है दूसरे के लिए आप कुछ करना चाहते हो करो। हम खुद कीचड़ में कूद जाएं और खुद दलदल में फंस जाएं इससे उसका तो कोई भला नहीं होगा।

ओशो की जीवन कथा में आपने पढ़ा होगा एक बार वह नदी के किनारे बैठे हुए थे। एक कोई व्यक्ति पानी में डूबने लगा। वह चिल्ला रहा है बचाओ... बचाओ... तो ओशो कूदने ही वाले थे बचाने के लिए इसके पहले ही एक अन्य व्यक्ति दौड़ा-दौड़ा आया और वह उसको बचाने के लिए कूद गया और वह खुद ही डूबने लगा। अब वह चिल्ला रहा है मुझे बचाओ। ओशो बड़ी मुश्किल में पड़े। कोई और नहीं था वहां। ओशो कूदे, उन दोनों को बाहर निकालने में बहुत मुश्किल हुई। दो व्यक्तियों को बचाना बहुत कठिन काम होता है। बामुश्किल उनको खींच कर किनारे लाए और उस दूसरे आदमी को डांटा कि तुमको तैरना नहीं आता तो तुम कूदे क्यों? तुम्हें देखकर मैं रूक गया कि ठीक है तुम कूद ही गए तो। मगर तुम खुद ही डूबने लगे। उसने कहा भावावेश में भूल ही गया मैं कि मुझे तैरना नहीं आता।

कृपया कर के ऐसी करुणा मत करना। ठीक है हम दूसरों को दुख से बाहर निकालने के लिए कुछ कर सकें तो अवश्य करें। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम दुखी हो जाएं। हमारी शांति, हमारा आनंद यथावत रहे। यह हुई करुणा।

तो इन चार भावनाओं को खूब अच्छे से समझ लेना। हम सब के भीतर हैं, केवल हम गलत जगह पर लगाए हुए हैं। ऐसा समझना एक गृहिणी है, उसके किचन में सब कुछ मौजूद है। नमक भी है, शक्कर भी है, चाय भी है, मिर्च-मसाले भी हैं, आटा, सब्जी है, चाकू है, सब कुछ है। लेकिन वह उनका उपयोग सम्यकता से नहीं कर पा रही। चाय में उसने धनिया और जीरा डाल दिए। क्या यह चाय पीने योग्य बनेगी? आटे में उसने नमक बहुत ज्यादा डाल दिया। जितना आटा उतना नमक, बराबर-बराबर, मध्य मार्ग अपना कर और उसकी रोटी बनाई। कोई उस रोटी को खा पाएगा क्या? चीजें सब मौजूद हैं। इन्हीं से बड़ा सुस्वादु व पोषक भोजन भी बन सकता है और बहुत बेस्वाद और नहीं खाने योग्य भोजन भी बन सकता है। ऐसा ही समझना- हमारे तन में, मन में, हृदय में सब चीजें मौजूद हैं। कलाकारी से हमने उपयोग किया, इसी से हमारा सारा जीवन सत्यम् शिवम् सुंदरम् हो जाएगा। और अगर हमको वह कला नहीं आती जीवन की तो सब बर्बाद हो जाएगा। चीजें वही की वही है। वही नमक है, वही मिर्च है, वही सब्जी है, वही मसाले हैं।

अमृत स्वरूप चेतना का तल

प्यारे मित्रों, तीनों तलों पर; तन, मन और हृदय के तल पर चार-चार आयाम मैंने बताया। जब ये सध जाएं तब हम अपने चौथे अंतर्तम में पहुंच पाते हैं। वहां हमारी चौथी रानी- वह अमृत स्वरूप चेतना मौजूद है। वहां भी चार आयामों की मैं बात करूंगा। एक तो साक्षी चैतन्य, कॉन्श्यसनेस। ध्यान में, मेडिटेशन में हम द्रष्टा भाव, साक्षी भाव साधते हैं और अपने जीवन के केंद्र बिंदु पर पहुंचते हैं। साक्षी चेतना उसका पहला आयाम है। दूसरा आयाम है उसका 'ओंकार-श्रवण'। हमारे भीतर एक अनहद नाद गूंज रहा है। बुद्ध ने जो कहा था न, जीवन की वीणा का संगीत मैंने भी उठाया है। वह हम सब के भीतर गूंज रहा है। गुरु नानक देव जी जिसके लिए कहते हैं 'एक ओंकार सतनाम।'

जब आप **ओशो फ्रेगरेंस** का छः दिवसीय ध्यान समाधि कार्यक्रम करने आएंगे, तब आप भी उस ओंकार को सुन पाएंगे। वह आपके भीतर मौजूद है। तो अंतः श्रवण, ओंकार श्रवण। तीसरा आयाम, हमारे भीतर परमात्मा का प्रकाश भी मौजूद है। आलोक दर्शन। यह हमारी ही कान्श्यसनेस के भिन्न-भिन्न आयाम हैं।

तो सबसे पहले साक्षी चैतन्य को साधना, वह हो गया मेडिटेशन। फिर हो गया श्रवण और दर्शन। पुराने संतों की भाषा में इसको कहा जाता है सुरति और निरति। सुरति यानी सुनने की कला, निरति यानी अंर्तनेत्र से देखने की कला। अपने भीतर हम प्रभु के संगीत को सुनें। अपने भीतर हम प्रभु के प्रकाश को देखें। और फिर चौथी बात वह है 'शून्य गगन'। श्रवण, दर्शन, गगन और साक्षी चेतन। यह भीतर की चार बातें। भगवान बुद्ध ने जिसको कहा शून्यता, नथिंगनेस। सद्गुरु ओशो की एक किताब का टाइटल है 'द ज़ीरो एक्सपीरियंस' निर्वाण उपनिषद के ऋषि जिसके लिए कहता है 'गगनम् महा सिद्धांतम्' वही महासिद्धांत है। अंतर्आकाश, इनर-स्पेस। तो चार क्वॉलिटिज़ है वहां की। शून्यता, अर्थात् आकाश स्वरूप होना। चैतन्यता, कान्श्यसनेस, ओंकार और आलोक। संगीत का श्रवण और प्रकाश का दर्शन। यह चार बातें भीतर साधनी हैं। और तब हम पाएंगे हमारी चौथी रानी अमृता, हमारे भीतर की वह चेतना, वह सध गई। और याद रखना, केवल वही हमारे संग जाती है। संग क्या कहना? वही हम हैं। वह हमसे भिन्न नहीं। वह हमसे पृथक नहीं। वह हमसे भी पहले से है। जब हम मनुष्य रूप में नहीं आए थे तब से है। यही अर्थ है उस कहानी में कि अमृता उस राजकुमार से ज्यादा बड़ी है।

प्यारे मित्रों, ये छोटी-छोटी बातें मैंने कही है, कोई बड़ी-बड़ी बातें आपसे नहीं कही और यह सब चीजें हमारे भीतर मौजूद हैं, बस उनका सही संयोजन बिठलाना है। रोटी में जितना नमक डलना चाहिए उतना ही डालना। चाय बनाने में क्या डलना चाहिए वही डालना। तो चाय भी सुंदर बनेगी, रोटी भी स्वादिष्ट बनेगी। सब कुछ अच्छा हो जाएगा।

तो जैसा हम सामान्यतः जी रहे हैं उस राजा की भांति, हमने उन तीन रानियों को बहुत ज्यादा ध्यान दे दिया है और उससे उनकी भी हालत खराब हो गई है। वह

खूबसूरत रानी अब खूबसूरत नहीं रही। वह मोटापे का शिकार हो गई है, थुलथुली और कुरूप हो गई है और विदुषी विक्षिप्त हो गई है। और भावना नाम मात्र को ही भावना है, वास्तव में वह दुर्भावना हो गई है। और अमृता का हमें ख्याल ही नहीं। वह अमृत स्वरूप चैतन्य हमारा स्वरूप है, वही हम हैं। अभी फिलहाल इस शरीर में हैं, इस संसार में हैं। इस संसार में रहते हुए ही साधना होगी। याद रखना कहीं छोड़कर हमें भागना नहीं है।

कल पत्रकार से मीटिंग में मैं कह रहा था। वे लोग कह रहे थे कि साधना के लिए संसार छोड़ना जरूरी कैसे नहीं है? मैंने कहा- जरा सोचो कोई विद्यार्थी स्कूल छोड़कर चला जाए तो पढ़ाई कहां करेगा? फिर परीक्षा कहां होगी। कोई मरीज अस्पताल से भाग जाए, पलायन कर जाए तो फिर इलाज कहां होगा? स्वस्थ कैसे होगा? यह संसार भी एक पाठशाला है। सच पूछो तो यह संपूर्ण विश्व ही विश्वविद्यालय है। द होल यूनिवर्स इज आवर यूनिवर्सिटी। हम यहां कुछ सीखने के लिए, कुछ सबक ग्रहण करने के लिए आए हैं। और जब तक हम सबक ग्रहण नहीं कर लेंगे हमें बारंबार आना होगा। अगर कोई विद्यार्थी फेल हो जाएगा तो उसको फिर वही क्लास ज्वाइन करनी होगी। फिर फेल हो जाएगा, फिर ज्वाइन करनी होगी। जब तक वह पास नहीं हो जाएगा उसको फिर-फिर आना होगा। यह जिंदगी भी एक पाठशाला है। अगर हमने पाठ नहीं सीखा, यह जो सम्यकता का पाठ मैंने आपको बताया, अगर हमने यह नहीं सीखा, हम फेल हो जाएंगे। हमें फिर आना पड़ेगा दोबारा। अगर हम पास होकर गए तो हम आवागमन से मुक्त हो जाएंगे। हम स्वस्थ हो गए तो हम अस्पताल से डिस्चार्ज हो जाएंगे।

करीब एक महीने पहले की बात है, एक मित्र एक दिन पूछ रहे थे कि जो मुक्त बुद्धपुरुष हो गए वह फिर जन्म क्यों नहीं लेते? मैंने कहा कोई व्यक्ति जो पोस्ट ग्रेजुएट हो चुका है, वह फिर से प्राइमरी स्कूल में पहुंच कर कहे कि मुझे दाखिला दे दो। हम उसको दाखिला देंगे क्या? एक भला-चंगा स्वस्थ व्यक्ति अस्पताल में पहुंच जाए वह कहे मुझे भर्ती कर लो। मुझे बीमारी कुछ नहीं, बस ऐसे ही शौक से आ गया। डॉक्टर उसको भगा देंगे कि यहां की बीमारी लग न जाए तुमको। मरीजों के लिए जगह नहीं है सब बेड भरे हुए हैं, तुम यहां क्यों आ रहे हो? गेट आउट!

ठीक ऐसे ही जो व्यक्ति यहां से स्वस्थ होकर गया अर्थात् स्वयं में स्थित होकर रूटेड इन वनसेल्फ, जो अपने साक्षी चैतन्य में, अपने शून्य गगन में रम गया, उसको फिर वापिस नहीं आना पड़ता। वह यहां से डिस्चार्ज हो गया। वह ग्रेजुएट हो गया, पास हो गया। जिस व्यक्ति को आवागमन से मुक्त होना है, उसे इस संसार में रहकर ही साधना करनी होगी। इस संसार को एक विद्यालय की तरह लेना।

एक आदमी तीस साल तक हिमालय की गुफाओं में साधना करता रहा और फिर उसे लगा कि अब मैं शांत हो गया हूं। तीस साल से क्रोध नहीं आया, बेचैनी नहीं हुई, चिंता नहीं पकड़ी, अब मैं दुनिया में जाऊं और लोगों को भी संदेश दूं शांत होने का। कुंभ का मेला चल रहा था वह मेले में पहुंच गया। वहां भीड़-भाड़ में एक आदमी का पैर उसके पैर पर पड़

गया। उसने उसे धक्का मार कर नीचे पटका, उसकी कॉलर पकड़ ली, छाती पर पैर रख कर खड़ा हो गया कि जानते नहीं मैं फलां-फलां महात्मा हूं। तीस साल मैंने तपस्या की है जंगल में। तुमने मेरे पैर पर पैर रखा। उस आदमी ने कहा महात्मा जी, आपकी तपस्या निष्फल गई एक बात पक्का है। आप इतने क्रोधित! अरे पैर पर पैर लग गया कोई जानबूझ कर नहीं किया। इतनी भीड़-भड़क्का है, धक्का-मुक्का चल रहा है। आप तो महाक्रोधी हो। इतना तो सामान्य जन भी क्रोधित नहीं होते। मैंने सॉरी भी आपसे कह दिया। तब वह महात्मा चौंका कि वास्तव में तीस साल में भ्रम में ही पड़ गया था कि मैं शांत हो गया हूं।

सावधान! जंगल में रहकर साधना नहीं होगी। वहां धोखा हो जाएगा। यहां पर धोखा नहीं हो सकता। यहां जिन लोगों के बीच हम रह रहे हैं, खासकर हमारे परिवारजन और रिश्तेदार, वे सब हमारे परीक्षक हैं, एग्ज़ामिनर हैं। थोड़े दिनों पहले एक युवक मुझसे पूछ रहा था शादी करूं कि न करूं, द्वंद में हूं। मैंने कहा पक्का करो। वह कहने लगा क्यों? मैंने कहा एग्जामिनेशन कौन लेगा तुम्हारा? वह कह रहे थे मैं तो बस ध्यानस्थ होना चाहता हूं। पत्नी आ जाएगी फिर ध्यान में बाधा पहुंचाएगी। मैंने कहा बाधा नहीं पहुंचाएगी वह तुम्हारे ध्यान की परीक्षा लेती रहेगी बीच-बीच में कि ठीक ठाक हो कि नहीं। जिस दिन तुम्हारी पत्नी सटिस्फाईड हो जाए, उस दिन मैं भी तुम्हें कहूंगा- हो गए तुम बुद्धपुरुष। पत्नी का सर्टिफ़िकेट ले आना।

चारों तरफ हमारे जो लोग हैं वह हमारे दुश्मन नहीं है। इन्हीं से हमें सबक सीखने मिलेगा और इन्हीं से हमारा एग्जामिनेशन चल रहा है कंटीन्यूअस, ऑन गो एग्जामिनेशन है। प्रतिपल परीक्षा हो रही है। संसार को छोड़कर नहीं भागना है, साधना यहीं होगी और इसलिए ओशो ने अपने संन्यासियों को संसार छोड़ने से मना किया।

'जोरबा द बुद्धा' का एक नया संयोजन उन्होंने प्रस्तावित किया और वास्तव में पुराने जमाने में जो लोग घर छोड़ कर भाग गए, पलायनवादी हो गए, उसमें से कुछ लोग तो कायर रहे होंगे। कुछ मेंटली पर्वर्टेड रहे होंगे। यह कोई अच्छे लोग तो नहीं हो सकते। जिस पत्नी को विवाह के समय फेरे लगाकर कहा था, कसम खाई थी कि सुख-दुख में साथ निभाऊंगा और एक दिन अचानक उसको छोड़कर भाग गए। ये कोई सज्जन व्यक्ति के लक्षण हैं? बच्चे पैदा किसलिए किए थे? बाप के रहते हुए वे अनाथ जैसा जीवन जीएंगे। यह कोई भले मानुष का लक्षण है? और इस संन्यासी के बूढ़े माता-पिता जिन्होंने सोचा था कि बुढ़ापे में बेटा लकड़ी का सहारा बनेगा, वह सहारा गायब हो गया। जिस व्यक्ति के हृदय में थोड़ा भी प्रेम है, सद्भाव है, वह ऐसा कभी न कर सकेगा। उतना कठोर तो कभी न हो सकेगा कि अपने प्रियजनों को छोड़कर चला जाए। और जो व्यक्ति इतना कठोर है, क्या तुम सोचते हो वह शांति को, आनंद को, समाधि को पा लेगा? भूल जाओ। इस कठोर आदमी को कुछ नहीं मिलने वाला। यहीं रहकर हमें अपनी संवेदनशीलता साधनी है, अपनी भावनाओं का शुद्धिकरण करना है, अपने तन-मन का शुद्धिकरण करना है। इस बात को खूब अच्छे से समझ लो।

संसार और मोक्ष विपरीत नहीं हैं। यह संसार इसीलिए है ताकि मुक्ति फलित हो सके। अभी मैंने मेंशन किया न ओशो की किताब 'योगा द अल्फा ऐंड द ओमेगा' उसका यह स्टेटमेंट, यह वचन मैं आपसे कह रहा हूं- संसार इसीलिए है ताकि मुक्ति फलित हो सके। ये ओशो के शब्द हैं। यह संसार बिना किसी प्रयोजन के नहीं है, परमात्मा पागल था क्या कि संसार बना दिया। और महात्मा बड़े समझदार हैं, छोड़-छाड़ कर भाग रहे हैं। परमात्मा से ज्यादा अकल इनको है? परमात्मा ने स्कूल बनाया और कोई विद्यार्थी छोड़कर भाग जाए स्कूल, इस विद्यार्थी को तुम होशियार कहोगे कि नालायक कहोगे? इसी जगत में रहकर हमें ध्यानस्थ होना है, समाधिस्थ होना है, परमानंद को जानना है और न केवल जानना है, फिर शेयर भी करना है, बांटना भी है।

इतने लोग दुखी हैं। क्या उनके प्रति थोड़ा करुणा भाव नहीं रखोगे? भागने की तो बात ही छोड़ दो। हमें 'जोरबा द बुद्धा' होना है। पुराने जमाने में सोचा जाता था कि संसारी और संन्यासी दो अलग-अलग बातें हैं, एक दूसरे के विपरीत। नहीं, सद्‌गुरु ओशो के बाद एक आध्यात्मिक क्रांति का दौर आया है। एक स्पीरिचुअल रिवॉल्युशन, एक नई दृष्टि हमें मिली। यहीं संसार में रहकर हमें साधना करनी है। कैसे करनी है वह मैंने आपको बता दिया। शरीर के तल पर चार बातें, चार बातें मन के तल पर, चार बातें हृदय की भावनाओं के तल पर और चार बातें चेतना के तल पर। चेतना वाली बातों को मैं विस्तार से नहीं कह रहा हूं, क्योंकि आप में से अधिकांश लोग उनको अभी नहीं पकड़ पाएंगे। उसके पहले भूमिका बननी जरूरी है। तन, मन और हृदय के तल पर वे चार-चार बातें सध गईं तब वह सिचुएशन बनेगी जिसमें आप अपने भीतर की उस अमृत चेतना रानी को जान सकोगे, अपने स्वरूप को पहचान सकोगे। अभी तो मैंने सिर्फ कह दिया ओंकार, आलोक, शून्य गगन, साक्षी चेतना, आपने सुन लिये शब्द। जरूरी नहीं कि आप उसका भावार्थ पकड़ पाएं। कोई बात नहीं। मैं उम्मीद भी नहीं करता; लेकिन बाकी के तीन तलों की बातें तो आप पकड़ सकते हैं। कोई कठिन बात तो उसमें जरा भी नहीं थी। आप उनको साधिए। शरीर से शुरु करिए, स्थूल से। मन का ख्याल रखिए। अपने हृदय का भी ख्याल रखिए। ये तीनों आपकी ही रानियां हैं। आप इनको अतिशय लाड़-प्यार देकर बिगाड़ो मत, बर्बाद नहीं करो और ना ही उस चौथी को भूखी रख कर कमजोर करो। यही हमें साधना है। और यह सम्यकता से सधेगा।

श्रोण वाली कहानी याद रखना। संगीत मध्य में उत्पन्न होता है। न संसारी, न संन्यासी। बीच के बन जाओ। मध्य मार्ग को अपना लो। तब तुम वास्तव में ओशो के संन्यासी हुए। इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है, इसे थोड़ा संवारना है, बस! साधना पुरुषों की भाषा है, महिलाओं की भाषा में कहना चाहिए- जिंदगी का श्रृंगार!

चर्चा समाप्त। आपके जो सवाल आएंगे, अब उनके जवाब दूंगा।

धन्यवाद। जय ओशो।

साधकों के सवाल–जवाब

एक मित्र ने पूछा है– व्यस्त जीवन में ध्यान के लिए समय कैसे निकालें?

भाई साहब, कम–से–कम एक मामले में तो हम बिल्कुल साम्यवादी मानते हैं परमात्मा को। मेरे जीवन में, आपके जीवन में और बाकी सब के जीवन में एक दिन में चौबीस घंटे दिए हैं, एक घंटे में साठ मिनट दिए हैं, एक मिनट में साठ सेकेंड दिए हैं। अन्य चीजों में हम कह सकते हैं भेद–भाव है; कोई अमीर है, कोई गरीब है, कोई सुंदर है, कोई कुरूप है, कोई स्वस्थ है, कोई बीमार है। समय के मामले में तो शिकायत मत कीजिए। सब को एक सा समय मिला हुआ है। जो काम हमें करना होता है, उसके लिए समय मिल जाता है। बस इतनी बात याद रखिए। जो काम आपको नहीं करना, पोस्टपोन कर देते हैं आप। कहते हैं समय नहीं। ये सब बहाने हैं। और मैंने जो बातें बताई हैं, इसमें ऐसी कौन सी बात है जिसमें समय लगेगा? सम्यक् भोजन करने में समय लगेगा? आप भोजन तो करते हो न। उतना ही समय तो लगेगा। अलग से कौन सा समय लगेगा? बहुत सा समय आपका बच जाएगा। व्हाट्सऐप वाला समय, ई–मेल वाला समय बहुत बच जाएगा!

एक मित्र ने लिखा है कि परमात्मा के साकार ध्यान के बारे में प्रकाश डालिए।

आप थोड़ा–सा ही चिंतन करें तो बात स्पष्ट हो जाएगी। जो भी चीज़ आकारवाली है, जिसमें रूप है... उसकी सीमा होगी, उसकी शुरुआत होगी, उसका समापन होगा। परमात्मा अथवा सत्य से तात्पर्य है– जो अनंत हो, जो अनादि हो... नो बिगिनिंग नो एंड, जो असीम हो,

जिसकी कोई लिमिट्स न हों। जो भी चीज़ रूप और आकार में है, उसका तो जन्म भी है और मृत्यु भी है। वह रूप बना है, तो बिगड़ेगा। और रूप की सीमा है, लिमिटेशन्स हैं। आप थोड़ा भी चिंतन करेंगे, तो स्पष्ट हो जाएगा कि साकार को परमात्मा कहना तो बहुत ही बड़ी भ्रान्ति है। परमात्मा तो निराकार ही हो सकता है, अरूप ही हो सकता है, असीम और अनंत ही हो सकता है। जो असीम है, अनंत है, वह भला छोटी–सी आकृति में कैसे समाएगा? यह एक चाइल्डिश ऐटीट्यूड, बचकानी धारणा है, परमात्मा के आकारमय होने की। कृपया इससे थोड़ा ऊपर उठें। आप स्वयं ही थोड़ा–सा भी चिंतन करेंगे, तो आपको यह बात क्लियर हो जाएगी।

लेकिन बचपन से वैसा ही हमने चारों तरफ सुना है, देखा है। कोई किसी देवी–देवता को पूज रहा है, कोई कुछ और कर रहा है। परमात्मा को हमने बचपन में रूप और आकारवाला जाना। क्योंकि हम स्वयं उस समय बचकाने थे, हममें उतनी बुद्धि, विवेक न था। छोटे बच्चे गुड्डे–गुड़ियों से खेलते हैं, वे उनको भी असली ही समझते हैं। गुड्डे की टांग टूट गई, तो बच्चा रोता है। उसको भूख नहीं लगती, खाना नहीं खाता, नींद नहीं आती क्योंकि गुड्डे की टांग टूट गई। उसके लिए गुड्डा बिल्कुल रीयल है। निश्चित ही एक दिन वह बड़ा हो जाएगा और यह बात समझ में आ जाएगी कि ये तो खेल खिलौने थे, ये कोई जीवंत वस्तुएं थोड़े ही थीं। जिस दिन यह समझ में आ जाएगा उस दिन खेल–खिलौने छूट जाएंगे। याद भी नहीं आएगा कि खेल–खिलौने कहाँ गए! किन्तु जहाँ तक धर्म की बात है, हम बूढ़ी उम्र होते होते भी बचकाने ही बने रहते हैं। वह चाइल्डिशनेस जाती नहीं। वही देवी–देवताओं की मूर्तियां, मंदिर और चर्च इत्यादि। गुड्डा–गुड़ियों से ज्यादा उनका महत्त्व नहीं है। बच्चों के लिए ठीक है; लेकिन हैरानी की बात है कि प्रौढ़ लोग भी उसी में उलझे हुए हैं। बूढ़े लोग भी उसी में उलझे हुए हैं। धर्म के मामले में तो उम्र के साथ भी जैसे बचकानापन खत्म होता ही नहीं। छोटे बच्चे गुड्डा गुड़ियों से खेलें... समझ में आता है। लेकिन बड़े तो थोड़े परिपक्व बनें, बी मेच्योर।

एक मित्र ने पूछा है कि रात को ध्यान करते समय ऐसा लगता है कि पूरे शरीर में विद्युत दौड़ रही है और दर्द होने लगता है। ऐसा लगता है कि कोई विस्फोट–सा होगा।

श्रीमान जी, आप रात में ध्यान क्यों करते हैं? ध्यान यानी होश। रात को आप नींद में जाना चाह रहे हैं– नींद अर्थात् बेहोशी। आप प्रकृति के खिलाफ जाएंगे, तो फिर संघर्ष होगा, फिर तो विस्फोट होगा ही। जब सोने का समय है, तो कृपा करके चैन से सोइए। जब जागरण का समय है, उस समय ध्यानपूर्ण होइए। ज्यादा से ज्यादा जागिये। इसलिए सुबह का समय ध्यान के लिए सर्वाधिक अनुकूल है।

ओशो ने तीन प्रकार की ध्यान विधियां निर्मित की हैं जिनमें प्राणायाम और श्वास का प्रयोग है। उनको सुबह के समय करना सर्वाधिक उचित है। उसमें साक्षीभाव साधें और होश की साधना करें। दूसरे प्रकार की ध्यान विधियां हैं, जो नींद में जाने में सहयोग करती हैं– उदाहरण के लिए कीर्तन, सूफी दरवेश नृत्य, ये रात को करें। कुछ विधियां हैं मध्य की... उनमें उतने प्रगाढ़ होश की

भी जरूरत नहीं है, और न ही बेहोशी की तरफ ले जाती हैं; एक मदहोशी, एक मध्य की अवस्था है। वे दोपहर के लिए ठीक हैं। तो विधियों का समय भी, जैसे शास्त्रीय राग का समय होता है, खास समय, उस समय वे ज्यादा प्रभावशील होती हैं। उचित समय पर उचित विधि करिए। रात को सोते समय ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है। रात को तो आप सम्मोहन का प्रयोग करें– योगनिद्रा– ताकि गहरी नींद आए।

अगला सवाल है, मुझे थोड़ी–थोड़ी देर बाद उदासी का अनुभव होता है और कभी–कभी मैं बिना वजह के रोती भी हूँ। पता नहीं मन क्या पाना चाहता है? मुझे कुछ समझ नहीं आता यह क्या है?

आप किसी मनोचिकित्सक की सलाह लें। हो सकता है कि आप डिप्रेशन की, निराशा की रोगी हों। लेकिन मैं अभी कन्क्लूसिवली नहीं कह सकता क्योंकि ज़रा विस्तार से जांच पड़ताल करनी होगी, तब पता चलेगा। बस इससे थोड़ा–सा संकेत मिलता है कि शायद आप डिप्रेशन की मरीज हैं। बेहतर होगा आप किसी साइकैट्रिस्ट से कन्सल्ट करें। हमारे शरीर में कुछ खराबियाँ आ जाती हैं। कभी–कभी किन्हीं केमिकल्स की कमी से डिप्रेशन की बीमारी होती है। उन केमिकल्स को रीप्लेस किया जाए, तो आपको फिर ठीक लगने लगेगा। मानसिक बीमारी को ऐसा न समझें कि केवल मन में ही होती है। हमारे केमिकल स्ट्रक्चर में भी कहीं कुछ कमी–बेशी हो जाती है। हमारे मस्तिष्क में जो न्यूरोट्रांस्मिटर्स और बड़ी सूक्ष्म मात्रा में हॉरमोन्स होते हैं, उनकी ज़रा–सी कमी या अधिकता में मन डाँवाडोल हो जाता है। निराशा के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। तो बेहतर है आप एक बार साइकैट्रिस्ट को कन्सल्ट करें। अगर डिप्रेशन है तो उसका इलाज संभव है।

अगला सवाल है कि मेरे दुख के कारण मेरे स्वयं के कर्म हैं, मैं यह जानती हूँ, स्वीकार करती हूँ... परन्तु मैं इसे जिन्दगीभर अनुभव करना चाहती हूँ ताकि उस विषादमयी स्थिति के आने पर भी मैं विचलित ना होऊं। किन्तु मैं ऐसा नहीं कर पाती। यह कैसे संभव होगा?

थोड़ा इंतज़ार करें कल एक सेशन होगा स्वीकारभाव का, सम्यक् स्वीकृति का। उसमें आपके सवाल का जवाब मिल जाएगा और वह विधि भी मिल जाएगी कि कैसे हमारी पूरी जिन्दगी पर यह तथाता का भाव, स्वीकार का भाव फैले ताकि हम सुख–दुख में भी विचलित न हों। सुख भी हमें विचलित करता है, उत्तेजित करता है और दुख भी। दोनों ही उत्तेजनाएं, एक्साइटमेंट्स जब विदा हो जाते हैं, तब शांति की, आनन्द की अवस्था उत्पन्न होती है। याद रखना! केवल दुख ही अशान्ति नहीं है, सुख भी अशान्ति है। अक्सर हम लोग ऐसा नहीं सोचते। सुख भी अशान्त कर जाता है, बेचैन कर जाता है; वह भी ज्यादा देर बर्दाश्त नहीं होता।

लोग कहते हैं सुख क्षणभंगुर क्यों होता है? भगवान की बड़ी कृपा है! ज्यादा देर टिक जाए, तो हम पागल हो जाएं। वह भी बर्दाश्त के बाहर है। सुख भी उत्तेजक है और दुख भी। एक पॉजिटिव एक्साइटमेंट है, एक नेगेटिव। लेकिन हैं दोनों ही एक्साइटमेंट। और शांति का मतलब है स्टेट ऑफ नॉन एक्साइटमेंट, चित्त की उत्तेजनारहित अवस्था; वही पाने योग्य है। कल इस संबंध में विस्तार से चर्चा होगी; फिलहाल मैं इस प्रश्न को कल पर छोड़ रहा हूँ।

अगला सवाल है कि अक्सर देखा जाता है कि मां–बाप बच्चों की खातिर सबकुछ त्यागते हैं; किन्तु वही बेटा बड़ा होकर अपना खुद का परिवार बसाता है और मां–बाप को अनदेखा करता है। ऐसा क्यों?

ऐसा ही तो उसके मां–बाप ने किया था! आपने अभी कहा न कि माँ–बाप अपने बच्चों की खातिर सबकुछ त्यागते हैं, यही नियम तो वह भी पालन कर रहा है। अब उसने अपना परिवार बसाया और अपने बच्चों की खातिर सबकुछ त्याग रहा है। इसमें कोई नई बात कहाँ हुई? ऐसी ही परम्परा चली आ रही है। उसके दादा–दादी ने भी ऐसे ही किया था। उसके मां–बाप ने भी ऐसा ही किया था। उसके नाना–नानी ने भी ऐसे ही किया था। वह भी ऐसा ही कर रहा है, उसकी औलाद भी ऐसा ही करेगी। वे भी इनका ख्याल नहीं रखेंगे। वे अपने बच्चों का ख्याल रखेंगे।

प्रकृति के इस नियम को समझो– थिंग्स आर मूविंग इन फास्ट फॉरवर्ड डायरेक्शन। आनेवाली पीढ़ी का ख्याल रखा जाएगा। तभी तो आगे विकास होगा। हर मां–बाप अपने बच्चों की, अपनी संतान की फिक्र करेगा ताकि वे विकसित हो सकें, अपने पैरों पर खड़े हो सकें। उनको सहारे की जरूरत है। जब वे बड़े हो जाएंगे, अपने पैरों पर खड़े हो जाएंगे, तो निश्चित ही वे आनेवाली पीढ़ी की फिक्र करेंगे। जानेवाली पीढ़ी की फिक्र से क्या लाभ? उनको तो विदा होना ही है। उनकी विदाई के दिन आ गए। कार में पीछे देखने के लिए जरूर बैक मिरर होता है; जिन्दगी की गाड़ी में बैक मिरर नहीं है। गाड़ी सामने चल रही है और उसकी हेडलाइट सामने है। ऐसा ही होना चाहिए, तो ही गाड़ी चल पाएगी। अगर सारे लोग अपने माता–पिता की ही फिक्र करने लगें, बच्चों से भी ज्यादा पिछली पीढ़ी की, तब तो जिन्दगी चल ही नहीं सकती।

प्रकृति के इस नियम को स्वीकारें... ऐसा ही सदा–सदा से चला आ रहा है और आगे भी होगा। पिछली पीढ़ी के लिए थोड़ा–बहुत आदर सम्मान भी बच्चों ने कर लिया, तो बहुत है। पश्चिमी देशों में तो वह भी खो गया है। सोशल सिक्योरिटी और मेडिकल इंश्योरेंस, ओल्ड पीपल होम... सामाजिक व्यवस्था बनी। ऐसी व्यवस्था सब जगह बनेगी। जहां आज नहीं है, वहाँ कल बनेगी; क्योंकि युवा पीढ़ी पिछली पीढ़ी का ख्याल नहीं रख सकती। जो गरीब देश हैं, जहां सरकार की तरफ से सब सुविधाएं नहीं हैं, वहाँ तो मजबूरी में ख्याल रखना पड़ रहा है। याद रखना! वह एक मजबूरी और लाचारी है। जैसे ही संपन्नता आएगी और पूरा समाज ओवरफ्लोइंग समृद्धि में जियेगा, पिछली पीढ़ी के लोगों का ख्याल रखना बंद हो जाएगा। और जब समाज समृद्ध होगा, तो सरकार को, समाजसेवी संस्थाओं को इनका ख्याल रखना

होगा। एक इंडिविजुअल तो नहीं रख पाएगा, वह तो मजबूरी और गरीबी में लोग रख रहे थे, कोई उपाय ही नहीं था, क्या करें। जैसे–जैसे संपन्नता बढ़ेगी उसके साथ–साथ जेनरेशन गैप भी बढ़ता जाएगा। यदा–कदा कोई अपवाद हो सकते हैं; लेकिन नियम नहीं हो सकता।

नियम तो यही है कि आनेवाली पीढ़ी का ख्याल रखना होगा। नियम यही है। यदा–कदा कोई अपवाद हो सकते हैं। वे माता–पिता जो अपने बच्चों के प्रति वास्तव में बहुत सहृदय रहे हैं, बहुत प्रेमपूर्ण रहे हैं, उनके बच्चे बुढ़ापे में भी उनका सम्मान करते रहेंगे। ऐसा इक्का–दुक्का 'वंस इन अ वाइल' ही होगा। पाँच परसेंट से ज्यादा उनकी गिनती नहीं होने वाली। क्योंकि अधिकांश मां–बाप बच्चों को प्रेम नहीं करते हैं बल्कि उनके ऊपर अपनी इच्छाएं थोपते हैं। उन्हें सताते हैं, उन्हें मारते हैं, डांटते हैं... प्रेम के नाम पर एक सूक्ष्म हिंसा चलती रहती है। और फिर बच्चे बड़े होकर इसका बदला लेते हैं।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे फजलू की पिटाई कर रहा था। कह रहा था कि तुझे ही सुधारने के लिए, तुझे ही ठीक करने के लिए... ले एक झापड़ और। आठ वर्षीय फजलू ने खूब पिटने के बाद पूछा कि पापा मन तो मेरा भी होता है कि आपको सुधारूँ, आप की भलाई करूँ, वे दिन कब आएँगे जब मैं आपकी भलाई कर सकूँ?

वे दिन ज्यादा दूर नहीं हैं... आएँगे। आज बाप जवान है, बेटा छोटा है, लाचार है, कमजोर है, पिता के सहारे ही जी सकता है। इसके बिना जिन्दा भी नहीं रह पाएगा। आज बाप उसकी भलाई कर रहा है। भलाई के नाम पर बुराई ही कर रहा है। कर रहा है हिंसा और नाम दे रहा है प्रेम। मुखौटे के पीछे कुछ और छिपा है। बच्चा सब समझ रहा है। समय आने पर, जब वह जवान होगा, बाप बूढ़ा होगा, तब वह अपने ढंग से भलाई करेगा, जितनी उससे बन सकेगी। अकेला नहीं कर पाएगा, तो शादी करके पत्नी ले आएगा। फिर बेटा–बहू दोनों मिलकर कोलैबरेशन में भलाई करेंगे। इसी को बोलते हैं कोलैबरेशन। बेटा अपने माता–पिता को खुद सताए, तो इतना अच्छा भी नहीं लगता। पराए घर की लड़की आकर मजे से सता सकती है। उसको कोई संकोच भी नहीं। बेटा अपनी पत्नी को इंडायरेक्टली सपोर्ट करेगा। शाबाश! जो काम मैं नहीं कर पाया, तुमने कर दिखाया। तुम सही मायने में मेरी लाइफ पार्टनर हो। मेरे अधूरे अरमान पूरे हो रहे हैं।

चेतन रूप से शायद ही ऐसा कोई सोचता हो। क्योंकि ऐसा विचार भी हमें बहुत खराब लगता है; लेकिन सच्चाई ऐसी ही है। कम–से–कम 95 परसेंट तो ऐसी है। मुश्किल से 5 परसेंट अपवाद हैं। और अपवाद वही हैं जिनके माता–पिता सचमुच में ही बहुत प्रेमल और करुणावान थे। सचमुच में दिखावा नहीं कर रहे थे, मुखौटा नहीं था। उनके बच्चे सदा उनके प्रति प्रेम व आदर से भरे रहेंगे। लेकिन सामान्य नियम तो यही है कि आनेवाली पीढ़ी की फिक्र की जाएगी, जानेवाली की नहीं। उगते सूरज को सब नमस्कार करते हैं; ढलते सूरज को कोई भी नहीं। और ऐसा होना स्वाभाविक है।

भारत में स्थिति देखी जाए, तो अभी महानगरों में खासकर बीच की अवस्था है, न तो पश्चिम जैसी संपन्नता आई है और न ही पुरानी धारणाएं, पुराने परिवार की व्यवस्था अभी पूरी टूटी है। बीच में पिस रहे हैं। न घर के, न घाट के। या तो पश्चिम की तरह पूरी व्यवस्था समाज

की, सरकार की, देश की हो जाए। वही होगी भविष्य में। संयुक्त परिवार की पुरानी व्यवस्था तो नहीं लौट सकती, वे दिन तो लद गए। वह तो बहुत ही दुखद साबित हुई है। वे दिन वापिस लौट के आने वाले नहीं। जो व्यवस्था एक बार टूट चुकी, आउट ऑफ डेट हो चुकी, उसका मतलब ही यही है कि वह व्यवस्था अधिकांश लोगों को रास नहीं आई। इसीलिए तो वह टूटी, नहीं तो टूटने की जरूरत ही नहीं थी। अतः कुछ नया ही आ सकता है, पुराना तो वापस नहीं लौटेगा। अगर वह बचने योग्य होता, तो जाता ही क्यों? लेकिन हमारा पुराने का मोह है।

मैं सुबह आप से चर्चा कर रहा था न कि 'फ्रीडम फ्रॉम द पास्ट' बड़ी मुश्किल बात है! पुराने से हमारा अटैचमेंट हो जाता है। हम चाहते हैं कि वह व्यवस्था बनी रहे। अच्छे-अच्छे विद्वान सोचते हैं कि राम राज्य वापिस आ जाए। बड़ी विचित्र बात है... अगर वह बचने योग्य था, तो वह गया क्यों? निश्चित ही वह श्रेष्ठ व्यवस्था नहीं थी; इसीलिए तो विदा हो गई। वापिस लौटने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। अपने मोह को देखना! हमको ऐसा सोचने से भी चोट लगती है, बुरा लगता है; लेकिन यही सच है। निश्चित ही पुरानी पीढ़ी के लिए कुछ और इन्तजाम होना चाहिए। नए तरीके से सोचें। ये न सोचें कि बच्चों से आपको कुछ रिटर्न मिलेगा। वह तो मुमकिन नहीं है। जितना मिल रहा है, उसके लिए धन्यवाद दीजिए वही बहुत है। ज्यादा की उम्मीद मत करिए।

लेकिन समाज को निश्चित ही ऐसी व्यवस्था बनानी चाहिए कि वृद्ध लोग भी इंडिपेंडेंट रह सकें। जब वे कमा रहे हैं, उस समय उनकी कमाई का जो हिस्सा, उनकी पेंशन या प्रोविडेंट फंड बनता है, उससे उनका भविष्य सुरक्षित हो, वे अपने ढंग से अपनी जिन्दगी जी सकें। वे क्यों बेटा बहू के मोहताज रहें? ऐसा नहीं सोचना की बेटा-बहू को ही दिक्कत होती है वृद्ध लोगों से, वृद्ध लोग भी बहुत दुखी होते हैं अपनी ही सन्तान से। बीच में इतना पीढ़ी अन्तराल 'जेनरेशन गैप' पैदा हो जाता है कि कोई कम्यूनिकेशन ही नहीं रह जाता। एक दूसरे के साथ केवल मिसअंडरस्टैंडिंग ही हो सकती है। केवल तनाव ही पैदा हो सकता है।

मैं कई बार लोगों से पूछता हूँ कि आपकी जिन्दगी के सबसे सुखद दिन कौन-से थे। अक्सर लोग कहते हैं कि जब कॉलेज में हॉस्टल में रह रहे थे। मैंने इस बात को खूब नोट किया, मैंने इसपर थोड़ा चिंतन किया कि ऐसी कौन-सी चीज़ है हॉस्टल में रहने में... ? एक बात क्लीयर हुई कि एक ही उम्र के लोग जहाँ संग-साथ रहेंगे वहाँ म्युचुअल अन्डरस्टैंडिंग होगी और वे प्रसन्नतापूर्वक रह पाएँगे। और जहां-जहां लम्बी उम्र के फासले वाले लोग साथ-साथ रहेंगे, वहाँ पर बड़ा दुख, तनाव और कष्ट पैदा होगा। दोनों ही एक दूसरे को सताएंगे। जानबूझकर नहीं; लेकिन अपना-अपना जीवन अपने ढंग से जियेंगे। उनमें कोई मेल नहीं बैठने वाला। उनकी सोच, उनके विचार एक दूसरे से काफी भिन्न होंगे। अपने समान उम्र के लोगों के साथ में मैचिंग होती है।

प्रकृति के नियमानुसार ही चीज़ें हो रही हैं। हमको इसमें संशोधन करके ऐसी व्यवस्था बनानी चाहिए कि सब लोग सुखपूर्वक रह पाएं। जो मैं कह रहा हूँ कि वृद्ध लोग साथ रहें, उनकी एक अलग सोसायटी बसे, अलग उनकी कॉलोनी हो, वे लोग भी बहुत खुश रहेंगे। उनकी

अपनी दोस्ती होगी, अपने समान उम्र के लोगों के साथ उठना–बैठना होगा, उनकी बातचीत के विषय एक होंगे, आपस में चर्चाएं होंगी, उनके शौक एक से होंगे, वे ज्यादा मजे में रहेंगे। संयुक्त–परिवार में जहाँ दो–तीन पीढ़ियां एक साथ रह रहीं हैं, वहाँ कोई भी खुश नहीं रह पाता. .. कोई भी खुश नहीं रह पाता। और जिनके साथ हम खुश नहीं रह पाते, उनके प्रति नाराजगी पैदा होना स्वाभाविक है। फिर हम उनसे छद्‌म रूप से कहीं न कहीं बदला लेते रहते हैं। ऐसा करने की कोई भी जरूरत नहीं है।

जैसे किसी जमाने में आदिवासी समाज में कबीले हुआ करते थे। सौ–सौ, दो–दो सौ लोग इकट्ठे रहते थे, वे कबीले के दिन गए, फिर संयुक्त परिवार आया... अब संयुक्त परिवार के भी दिन गए, अब एकल परिवार आया और भविष्य में एकल परिवार भी नहीं बचने वाला। वह भी ज्यादा टिकने वाला नहीं है। अभी सोचकर हमें हैरानी होती है; लेकिन इसके आसार नजर आ रहे हैं स्पष्ट रूप से; इंडिविजुअल फैमिली भी नहीं बचने वाली। इसमें जो दो लोग या तीन लोग रह रहे हैं, वे भी एक दूसरे को बहुत दुखी कर रहे हैं। एक इंडिविजुअल अपने आपमें बेहतर ढंग से जी सकेगा। भविष्य में तो ऐसा ही होगा; लेकिन अभी हम मध्य की अवस्था में हैं जहां एकल परिवार और जुड़ा हुआ परिवार के बीच की चीज़ें चल रही हैं। संयुक्त परिवार टूटने के कगार पर हैं। कहीं–कहीं टूट चुका है।

और जो लोग खुश रहते हैं... आज सुबह हमारे जेनरल मैनेजर ने शेयर किया था। सात भाई बहन... सब मां से बहुत प्रेम करते हैं। वे इसलिए की सब दूर–दूर हैं कोई कहीं... कोई कहीं है। होली–दिवाली पर मिलें, तो अच्छा लगता है। अगर ये आठ लोग एक जगह पर इकट्ठे रहने लगें, तब पता चलेगा कितनी मुसीबत होगी।

छोटी–छोटी चीजों में भेद हैं। ज़रा–ज़रा सी बात। किसी को कोई फैशन पसन्द है, किसी को उस चीज़ से नफरत है। कोई महिला किसी प्रकार से खाना बनाती है उसका स्वाद अलग है, दूसरी स्त्री उसकी देवरानी या जेठानी के बनाए खाने का स्वाद अलग है। एक खाना बनेगा घर में, यदि दस लोग होंगे तो मैं नहीं समझता की तीन–चार से ज्यादा को पसन्द आ सकता है वह। एक ही माँ के चार बच्चे... मां ऐसा कोई भोजन नहीं पका सकती जो चारों को पसन्द हो। क्या करोगे! लोग अलग–अलग हैं। उनकी पसन्द अलग हैं, उनके विचार अलग हैं। कभी–कभार थोड़ी देर के लिए मिले त्योहार पर, पर्व पर, खुशी के माहौल पर; वह एक अलग बात है। हर व्यक्ति स्वतंत्र रहना चाहता है और अपने ढंग से जीना चाहता है। मैं इसमें कोई भी खराबी नहीं देखता। ऐसा होना बिल्कुल स्वाभाविक है, ऐसा होना ही चाहिए।

निश्चित ही वृद्ध लोगों के लिए कोई अन्य वैकल्पिक व्यवस्था होनी चाहिए; ताकि वे भी प्रसन्नतापूर्वक जी सकें। और जैसा मैंने कहा कि अधिकांश लोगों से मैंने पूछा और मैंने यही पाया कि वे हॉस्टल में बहुत खुश थे। और उसका कारण मैंने यही ढूंढ़ा है कि वह समान उम्र के लोगों के संग रहने की वजह से। अभी भी जहाँ लोग सर्विस करते हैं अपने गांव से, अपने घर से दूर; वहाँ भी हमउम्रों के बीच में रह रहे हैं वे। एक खास एज की रेंज है। साठ में रिटायर हो जाएंगे। एक खास रेंज के लोग हैं, उनके विचार आपस में मिलते–जुलते हैं इसलिए वहाँ पर

ज्यादा खुशी होती है। वापिस जब रिटायरमैंट के बाद बड़े परिवार में पहुंचेंगे वहाँ फिर इतनी खुशी हासिल नहीं हो पाएगी। अपने हमउम्र लोगों से मिलना–जुलना कम हो जाएगा, उनके साथ उठना–बैठना नहीं होगा। और मजबूरी में जिनके साथ उठना–बैठना पड़ेगा, उनके साथ कुछ तालमेल जमेगा नहीं। तब तक तीसरी पीढ़ी आ चुकी होगी। हर बीस साल में एक पीढ़ी आ जाती है, पच्चीस साल में।

साठ साल का व्यक्ति जब रिटायर होकर जाता है, तो उसके बेटे के बेटे जन्म ले चुके होते हैं। उनके साथ कुछ मैचिंग बैठाना मुश्किल है। फिर भारी जेनरेशन गैप खड़ा हो जाएगा। निश्चित ही इसकी व्यवस्था सबको मिलजुल कर सोचनी चाहिए। समाज के जो व्यवस्थापक हैं, समाज के ठेकेदार हैं, गवर्नमेंट को सोचना चाहिए; और एक विकल्प एक ऑल्टरनेटिव सोसायटी खड़ी होनी चाहिए। बहुत ही अच्छा हो अगर समान उम्र के लोग संग साथ रहें। दस–दस साल की रेंज के बनने कॉलोनी बननी चाहिए कि यह कॉलोनी टीनेजर्स की है, यह कॉलोनी तीस से चालीस वालों की है, ये कॉलोनी एबव 40 का है। एबव 50 जब उम्र हो जाए; वहाँ से ट्रान्सफर दूसरी जगह। सब लोग बहुत प्रसन्न रहेंगे और जैसे–जैसे विज्ञान विकसित हो रहा है, संपन्नता आ रही है, यह सब इन्तजाम हो सकता है। पहले तो संभव ही नहीं था। ऐसा सोचना भी संभव नहीं था कि ऐसा हो सकता है। लेकिन अब हो सकता है और होना चाहिए। तो मैं किसी परम्परा और रूढ़ि के पक्ष में नहीं हूँ। इस समस्या का कुछ नया ही समाधान खोजना होगा।

अगला सवाल है, मेरे दिलो–दिमाग मे रह–रहकर यह सवाल उठ रहा है कि मैंने अपनी पूरी जिन्दगी में नहीं सोचा था कि मैं पुणे महाराष्ट्र से हरियाणा के एक छोटे–से गांव में कभी आऊंगी। इस यात्रा में जरूर एक व्यक्ति ने सहायता की, वे निमित्त बने, पर कहीं न कहीं मुझे लगता है कि मेरी जो प्यास है अपने आपको जानने की, वही प्यास मुझे यहाँ खींच लाई है। और मैं प्रेम और ध्यान की यात्रा करना चाहती हूँ। पर यह पता नहीं कैसे? कृपया कुछ कहें।

निश्चित ही इतनी दूर से हजारों किलोमीटर की यात्रा करके यहाँ पहुंचना, एक छोटे–से ग्रामीण अंचल में, यहाँ अधिकांश लोगों ने मुरथल का नाम भी नहीं सुना होगा यहाँ आने के पहले... आप खिंचे चले आए हैं। जरूर कोई शक्ति है और वह शक्ति आप के भीतर है, याद रखना। वह है सत्य को जानने की प्यास। वह अदम्य जिज्ञासा ही आपको खींच के लाई है।

फिर आपने पूछा है, कैसे आगे की यात्रा होगी? बस यहाँ जो रहा है, उसमें ठीक से भागीदार बनें। मैं देखता हूँ कई लोग यहाँ माइक पर आने से भी कतराते हैं। वे पार्टिसिपेट नहीं कर रहे हैं, वे दर्शक की भांति आए हैं। यहाँ तमाशा नहीं हो रहा है, जो दर्शक बन गए देखने के लिए। आप अपना जीवन रूपांतरित करने आए हैं। आपको 100 परसेंट पार्टिसिपेट करना चाहिए।

कुछ लोग प्रश्न पूछने तक में संकोच करते हैं। यह तो ऐसा हुआ कि कोई डॉक्टर के पास जाए और अपनी बीमारी न बताए। तो फिर इलाज कैसे होगा? अपने आपको खोलें। अपने हृदय को उघाड़ें। माना कि बहुत कुछ है जो देखने दिखाने योग्य नहीं है; किन्तु आप घावों को ढककर रखेंगे, तो घाव भरेंगे नहीं। घाव उघाड़ें ज़रा, हवा और धूप लगने दें। इसकी चिंता न करें कि लोग क्या कहेंगे। वैसे भी आपको बता दूं एक सीक्रेट बात! आपके बारे में लोगों की अच्छी धारणा वैसे भी नहीं है। इसलिए ज्यादा चिन्ता करने की जरूरत नहीं। आप खुद सोचो आपके मन में किसके प्रति अच्छी धारणा है? कोई लगता है आपको आदरणीय! आपको कहाँ लगता है! बस ऐसे ही दूसरों का मन है। ऊपर–ऊपर से दिखाते हैं, रेस्पेक्ट शो करते है... रस्पेक्ट है नहीं। इसलिए ज्यादा चिन्ता नहीं करना कि हमने सबके सामने दिल की बात कह दी और प्रश्न पूछ लिया, तो कहीं भद्द न हो जाए कि कोई कहे अरे! तुम अज्ञानी... तुम इतना भी नहीं जानते? अज्ञानी हो इसीलिए तो आए हो ज्ञान की तलाश में। इसमें संकोच कैसा! वह सत्य की प्यास ही तुमको खींचकर लाई है।

यहाँ जो हो रहा है, बस पूरी तरह उसमें भागीदार बनो, और धीरे–धीरे हम उस तरफ कदम उठाएंगे, कदम उठ ही रहे हैं, आज दूसरा दिन है। छह दिन होते–होते आप वह जान लेंगे, जिसकी आपको तलाश थी। एक सैटिस्फैक्शन, एक कन्टेंटमेंट आप साथ लेकर लौटेंगे।

आज दोपहर को जब मैं यहाँ से जा रहा था, तो एक मित्र ने मुझे कहा कि एक क्लास लीजिए जिसमें ईश्वर के बारे में कुछ बताएं। उसका समय आने तो दो, थोड़ी साफ–सफाई, मन को ज़रा साफ कर लें, शांत कर लें, प्रसन्नता से भर लें, पहले ज़रा दुखों के कंकड़–पत्थर बीनकर अलग करें। जैसे खेती करता है न किसान! पहले तो कंकड़–पत्थर, घास–पतवार हटाता है, फिर बोता है बीज, फिर खाद–पानी डालता है, फिर फसल आती है। ईश्वर के बारे में जल्दबाजी न करना। अभी आपको लग रहा होगा कि अरे यहाँ तो अध्यात्म की बात ही नहीं हो रही, जीवन जीने की कला सीखा रहे हैं बस। परमात्मा की बात ही नहीं। ओर आप आए थे परमात्मा की खोज में। पहले ज़रा काँटे कंकड़ बीन लेने दो। ये घास–पतवार उखाड़ लेने दो। इस दुख, चिन्ता और संताप सहित ईश्वर से मिलन नहीं हो सकता।

उपनिषद् के ऋषि कहते हैं ईश्वर को सच्चिदानंद! हम ठहरे उसके बिल्कुल उल्टे! आनन्द की जगह हम हैं दुखियारे, चिंतित, और तनावग्रस्त। सत्य की जगह हम हैं बिल्कुल अप्रमाणिक, असत्य, झूठे मुखौटे वाले... और चित्त, चैतन्य! उसका तो होश ही नहीं है हमको। स्वयं के प्रति पूरी तरह बेहोश हैं। उस सच्चिदानंद से तो वही मिल सकेगा जो स्वयं सत्य है, चैतन्य है, और आनन्द स्वरूप है।

समान का ही समान से मिलन हो सकता है। तेल और पानी को मिलाएं, तो नहीं मिलते। हां, दूध और पानी मिल जाते हैं। क्योंकि दूध 90 प्रतिशत पानी ही है। दोनों समान हैं। केवल समान का ही समान से मिलन हो सकता है। परमात्मा से हमारा मिलन नहीं हो सकता; क्योंकि हम जिस अवस्था में हैं उसमें कोई मिलन संभव नहीं... कोई ब्रिज नहीं बनता दोनों के बीच में। फिलहाल हम परमात्मा की बात आपसे जानबूझकर नहीं कर रहे हैं। अभी ब्रिज नहीं बन पाएगा।

पहले आप शांत हो जाओ। आप थोड़ा सत्य में जड़ें जमाओ। ध्यान प्रयोगों से थोड़ा चैतन्य बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं। आनेवाले दिनों में और भी प्रगाढ़ रूप से ध्यान और योग के प्रयोग चलेंगे। आप आनन्दित हो जाओ। वह परम आनन्द है... पहले हम छोटे–मोटे आनन्द को तो जान लें, तो शायद परमानन्द से भी मिलन हो जाए। अंतिम तीन दिनों में चौथे, पाँचवें, और छठवें दिन हम ईश्वर साक्षात्कार की दिशा में कदम उठाएंगे। अभी उसकी केवल भूमिका तैयार हो रही है। अभी हम बीज नहीं बो रहे हैं, खाद–पानी नहीं डाल रहे। इस कंकड़–पत्थर वाली जमीन में बीज डालने से कोई लाभ नहीं। जहां इतना घास–पात उगा है, वहाँ बीज भी नष्ट हो जाएंगे, कुछ लाभ होने वाला नहीं।

तो जिन मित्र ने पूछा है, मैं उनको कहना चाहूँगा, छह दिन रुकिए। अगर आप तीन दिन के लिए ही आए हैं और ईश्वर की जिज्ञासा आपने उठाई है। क्या सचमुच में ही यह जिज्ञासा है और प्यास है? अब आपके रुकने से पता चलेगा कि यूँ ही कुतूहलवश पूछ लिया– ईश्वर के संबंध में – या वास्तव में प्यास ही है?

छह दिन रुकें, मैं आपको आश्वासन देता हूँ, जो बड़ा सवाल आपने उठाया है, उसका जवाब लेकर जाएंगे। और जवाब शाब्दिक नहीं होगा; बौद्धिक और इंटेलेक्चुअल नहीं की मैं आपको कुछ समझा दूंगा ईश्वर के बारे में... नहीं, समझने से क्या होगा! इतनी किताबें, इतने ग्रंथ दुनिया में मौजूद हैं। कोई भी पढ़–लिख सकता है, उसमें कौन–सी बात है। लेकिन उसको जानकर ईश्वर का कुछ ज्ञान होता नहीं। यहाँ हम प्रयोग में भरोसा करते हैं, समझाने–बुझाने में नहीं। समझाते भी हैं इसलिए; ताकि प्रयोग की भूमिका बन जाए, आप उसके लिए तैयार हो जाएं, राजी हो जाएं। अगर सचमुच में ईश्वर की प्यास है, धीरज रखो, हम उसी दिशा में चल रहे हैं। छह दिन पूरे डिवोट करो।

अगला सवाल है कि एक बार धोखा खाकर हृदय दोबारा किसी पर विश्वास करने की इजाज़त नहीं देता।

थोड़ा गुणा–भाग, गणित आता है कि नहीं? दुनिया में सात अरब इन्सान हैं। किसी एक ने या दो ने या तीन ने आपको धोखा दे दिया और पूरी आदमीयत से भरोसा उठ गया। यह कौन–सा गणित है? ज़रा परसेंटेज निकालिए। सात अरब में दो आदमियों ने या तीन आदमियों ने धोखा दे दिया, तो श्ह कितना परसेंट हुआ? मुझे तो इतना गणित नहीं आता, पर इतना जरूर पता है कि प्वाइंट जीरो जीरो जीरो जीरो....कुछ ऐसा फिगर आएगा। आप उस एक व्यक्ति, दो व्यक्ति को इतनी वैल्यू दे रहे हैं। क्या यह मैथमेटिकली सही है?

हजारों लोग हैं जिन्होंने आपको धोखा नहीं दिया है और नहीं देंगे। कितने लोगों ने आपको प्रेम से पाला–पोसा, बड़ा किया, जन्म दिया, पढ़ाया–लिखाया, कितने लोगों ने आपको शिक्षा दी, आपको भांति–भांति से संवारा, कितना सपोर्ट और सहयोग मिला है! परिवार का, समाज का... वह सब भूल गए? एक आदमी ने धोखा दे दिया। वह एक आदमी इतना इंपॉर्टेंट है?

यह क्यों भूल गई कि सूरज आपको अभी भी सुबह रौशनी देता है, चांद–तारे रात को

अपना सौन्दर्य आपको भी देते हैं, हवा कभी यह नहीं कहती कि मुझे साँस नहीं लेना, मेघ आपके घर पर भी बरसते हैं। पूरी प्रकृति आपको फुल सपोर्ट कर रही है। सब तरफ से कृपा बरस रही है उसकी। वह आपको दिखाई नहीं देती। एक आदमी ने धोखा दे दिया, और धोखा भी क्या दिया होगा... दस–बीस हजार रुपए झपट लिए होंगे, और क्या किया होगा! लाख दो लाख सही... हाउ डज़ इट मैटर? सूरज आपको अपना प्रेम देता है, पृथ्वी आपको सपोर्ट देती है, हवाएँ आपको श्वास दे रही हैं, वृक्ष आपके लिए ऑक्सीजन दे रहे हैं, पेड़–पौधे आपके लिए फल, सब्जियों और भोजन का इन्तजाम कर रहे हैं। नदियों को देखो! आपके लिए पानी बहाए ला रही हैं। पूरा जीवन... पूरा एग्जिसटेंस सपोर्ट कर रहा है; इसीलिए आप हैं; वरना आप होते ही नहीं, दि होल एग्जिसटेंस इज हेल्पिंग यू।

किसी एक–आध सिरफिरे ने आपके मन के प्रतिकूल कर दिया और आप कहते हो कि सब पर से भरोसा उठ गया। ये कैसा भरोसा है! थोड़ा गणित के हिसाब से चलो। तब आप पाओगे कि हृदय में एक अद्‌भुत श्रद्धा पैदा हुई इस पूरे जीवन के प्रति। यह ठीक है कि वन्स इन अ व्हायल कभी कोई सिरफिरा होता है... वह जीवन का नियम नहीं है। वह भूलचूक है, अपवाद है। कहीं कुछ गलती हो जाती है, और ज़रा सहानुभूतिपूर्वक देखोगे, तो जिसने धोखा दिया है उसपर भी तुम्हें दया ही आएगी। वह भी उसकी कोई मजबूरी रही होगी। कुछ तो लाचारियां रही होंगी; वरना कोई बेवफा नहीं होता। उसकी अपनी कोई मजबूरी रही होगी। तब आपको नाराजगी के बजाय दया ही आएगी। उस व्यक्ति की पता नहीं कौन–सी मजबूरी थी। भरोसा रखो! सारा जीवन सब भांति सपोर्ट कर रहा है। श्रद्धालु बनो। मैं नहीं कहता कि मंदिर में, कि किसी मूर्ति में, कि किसी गुरु में श्रद्धा करना, मैं कहता हूँ पूरे जीवन को चारों तरफ गौर से देखो तो सही। तुम्हारे भीतर अपने आप भरोसा पैदा होगा। एक–आध व्यक्ति अपवाद स्वरूप कुछ गलत व्यवहार कर गए आप के साथ, तो उनके प्रति नाराजगी नहीं आएगी। उनपर भी दया ही आएगी।

एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान के लिए उपयुक्त समय एवं स्थान बताएं?

सबसे उपयुक्त स्थान आपका घर है। और सबसे उपयुक्त समय वह है, जब आप स्वयं को एनर्जेटिक स्फूर्ति से भरे हुए ऊर्जावान महसूस करते हैं। यद्यपि उपरोक्त समय हम सब के लिए अलग हो सकता है; तथापि अधिकांश लोगों के लिए ऐसा उपयुक्त समय सुबह का वक्त ही होगा। लेकिन कुछ लोग इसके अपवाद हो सकते हैं। कई लोगों की सुबह नींद नहीं खुलती। सुबह के समय उनको अच्छा नहीं लगता। स्फूर्ति महसूस नहीं होती। वे अपने लिए दूसरा समय चुनें। मैं ऑलरेडी कह चुका हूँ कि ध्यान की अलग–अलग विधियां हैं। जो समय आपको रास आता है, उस समय ध्यान करें। अगर आपको कन्फ्यूजन लगता है, तो ऐसा करें, एक एक हफ्ता, एक एक खास समय करके देख लें। उसके जो परिणाम आएँगे, उनसे पता लग जाएगा कि कौन–सा समय आपके लिए सर्वाधिक अनुकूल है।

और सबसे उपयुक्त स्थल आपका अपना घर। वहीं आपको रहना है, वहीं आपको जीना है,

अपने घर को मंदिर मानके चलिए। जब ध्यानपूर्वक और प्रेमपूर्वक वहाँ जियेंगे, वह घर मंदिर हो जाएगा। कहीं भागने की जरूरत नहीं, कहीं जंगल में, गुफाओं में, मंदिरों में, मठों में जाने की जरूरत नहीं। यहाँ आप आए हैं एक पाठशाला में, सबक सीखिए और अपने घर जाइए। इम्तिहान आपके घर में होगा। हम यहाँ केवल पाठ सिखाते हैं, हम परीक्षा नहीं लेते। आपके परीक्षक, आपके एग्ज़ामिनर आपके घर में बैठे हुए हैं। जब आप लौट के घर जाएंगे, तब पता चलेगा। आपके भाई, बहन, पति, माता-पिता, बच्चे और पड़ोसी... वे लोग परीक्षा लेंगे कि देखते हैं क्या सीखकर आए हैं। बड़ी बातें करते हो कि होशपूर्ण, और स्वीकारभाव में हो, संकल्पवान हो गए हो; देखते हैं। उनको दुश्मन की भांति मत देखना। वे आपके एग्ज़ामिनर हैं, अगर वे एग्ज़ामिनेशन नहीं लेंगे तो आपको कैसे पता चलेगा। अगर आप कहते हो कि मैं शांत हो गया हूँ, तो वे कोशिश करेंगे कि अशांत हो जाओ, तो उनको धन्यवाद देना कि आपकी बड़ी कृपा है। आप मेरी परीक्षा लेते हैं, तो मैं भी स्वयं को कसौटी पर कसता रहता हूँ कि वास्तव में शांत हुआ कि नहीं, उनको भी धन्यवाद देना... सबसे उपयुक्त स्थल अपना घर ही है।

एक मित्र ने पूछा है **ओशो फ्रेगरेंस** में क्या-क्या कार्यक्रम होते हैं?

निवेदन है कि हमारी वेबसाइट पर आप देखिए। अभी मैंने जो चर्चा की है, ध्यान समाधि में इसकी कला सिखाते हैं, छः दिन का यह कार्यक्रम होता है। उसके बाद ओंकार श्रवण। अपने भीतर के संगीत को सुनने की कला सीखते हैं। सुरति समाधि में उसमें डुबकी लगाते हैं। तीसरे तल का कार्यक्रम है निरति समाधि जिसमें भीतर के प्रकाश का दर्शन किया जाता है। इसके अलावा सम्मोहन प्रज्ञा और महाजीवन प्रज्ञा जिसमें हिप्नोसिस की कला और पास्ट लाइफ रिग्रेशन, पिछले जन्मों को याद करने की कला सिखाते हैं।

अगला सवाल- जिनको हम प्रेम करते हैं हमारे घर वाले, उन्हीं से हमारा झगड़ा क्यों होता है?

और किससे होगा? परदेश में बैठे किसी अनजान व्यक्ति से। आपको उनसे अपेक्षाएं हैं, उनको आपसे अपेक्षाएं हैं। न आप उनकी अपेक्षाएं पूरी कर सकते, न वे आपकी पूरी कर सकते। कलह तो होगी। खींचातानी होगी। अनी-अपनी बात मनवाने की कोशिश चलेगी। अहंकार की अक्कर होगी। इसे अपनी साधना का हिस्सा समझो। जागो। ये आपके घर वाले लोग आपकी परीक्षा ले रहे हैं, इनको धन्यवाद दो। धीरे-धीरे अहंकार के पार ओंकार में प्रवेश मिलेगा। सब अपेक्षाओं से, कामनाओं से मुक्ति मिलेगी। सबका अनुग्रह मानो। जय ओशो।

प्रेम व भयः भाव के प्रभाव

प्यारे मित्रों, अपने हृदय की भावनाओं के दो रूपों और उनके प्रभावों को समझना हर साधक के लिए उपयोगी होगा।

प्रेम, मैत्री, स्नेह, ममता, दया, करुणा, कृतज्ञता आदि सद्भावनाएं हमें जगत से जुड़े होने का अहसास देती हैं। हम स्वयं को इस विराट अस्तित्व का हिस्सा महसूस करते हैं। इसके विपरीत, जितनी दुर्भावनाएं हैं उसमें हम अपने चारों तरफ एक कठोर दीवार बना लेते हैं। हम एक घेरे में बंद हो जाते हैं जिसमें दूसरे को प्रवेश नहीं। सच पूछो तो जिससे हम घृणा करते हैं, नफरत करते हैं, उससे हमारा कोई संपर्क ही नहीं होता। वह एक सुरक्षा कवच में बंद है, हम अपने कैप्सूल में बंद हैं। कोई मिलन नहीं। और जहाँ सद्भावना है वहाँ पर हम एक-दूसरे के संपर्क में आ रहे हैं, जुड़ रहे हैं। यों कहें कि योग का छोटा रूप घटित हो जाता है। किसी से जुड़े, किसी के साथ हम एक अनुभव कर रहे हैं, किसी के संग हम समान अनुभव कर रहे हैं और इसलिए ये जो सदभावना वाले तत्व हैं, ये हमें एक छोटी-सी योग की झलक तो दिखा ही देते हैं। इसी चीज को विकसित करके हम महायोग की तरफ, पूरी समष्टि से जुड़ने की तरफ चल सकते हैं। इसलिए सद्भावनाएं अध्यात्म की दुनिया में साधन बन जाती हैं, भक्ति बन जाती हैं, श्रद्धा बन जाती हैं।

जो व्यक्ति जितना दुर्भावनाओं में जी रहा है, वह उतना संकीर्ण हो गया, छोटा हो गया, वह पूरे अस्तित्व से टूट गया। जिसका कोई मित्र नहीं है, किसी से प्रेम नहीं है, किसी से लगाव नहीं, किसी पर भरोसा नहीं। ऐसा समझो वह एक कटघरे में बंद है और उसकी दीवारें उसने स्वयं बना लीं। वह हर-एक से डरा हुआ है। इसलिए आप देखेंगे जो व्यक्ति जितना प्रेमपूर्ण, जितना मैत्रीपूर्ण होता है, वह उतना ही खुले हृदय का होता है, मिलनसार होता है और बिना भय के जीता है। जितना घृणा, नफरत करने वाला व्यक्ति; उतना ही भयभीत भी। वह सबसे

डरा होता है। जाने-अनजााने उसने सबसे दुश्मनी ले रखी है। उसका सब के साथ संघर्ष है, प्रतियोगिता है, दूसरों को गिराना है, पछाड़ना है, पीछे धकेलना है, उनसे आगे निकलना है। दुश्मनी सबसे है; चाहे पता हो, चाहे न पता हो। सभी के साथ उसका संघर्ष है। कुल मिलाकर वह अस्तित्व के, परमात्मा के ही जैसे खिलाफ है। पूरे अस्तित्व से उसने एक लड़ाई ले रखी है। अपने अहंकार को मजबूत बनाने की कोशिश, जीतने की कोशिश और सबको हराने की कोशिश। इस कोशिश में स्वाभाविक रूप से भय उत्पन्न होगा।

पहली बात हम एक व्यक्ति के रूप में इतने छोटे हैं! इस विराट अस्तित्व से हम कैसे लड़ेंगे और कैसे जीतेंगे, यह तो हमें पता ही है कि हमारी हार पक्की है। हम जीत नहीं सकते। असफलता का भय बना ही रहेगा। इसलिए चिंता लगी ही रहेगी। इसलिए जो व्यक्ति दुर्भावनाओं में जीता है वह सदा चिंता में रहेगा, वह हमेशा डरा-डरा रहेगा। उसकी सबसे दुश्मनी-सी रहेगी। वह अपने आप को बिल्कुल क्लोज कर लेगा; जैसे द्वार-दरवाजे सब बंद हों। जितने द्वार-दरवाजे बंद होते जाएंगे, उतनी ही जीवंतता कम होती जाएगी। क्रमशः वह पत्थर जैसा, पाषाण हृदय, जिसको हम कहते हैं संगदिल; वैसा होता चला जाएगा। यह उसका स्वयं का ही निर्णय है और एक विशियस सर्कल खड़ा हो जाता है। जैसे-जैसे उसकी जीवंतता कम होती जाती है, जगत से संपर्क टूटता जाता है, वह और भयभीत हो जाता है, वह और डर जाता है और सिकुड़ जाता है।

सद्गुरु ओशो ने कहा है कि प्रेम का जो उलटा तत्व है, वह भय है। प्रेम का उलटा घृणा नहीं जो कि सामान्यतः हम सोचते हैं, घृणा में भी हम दूसरे से संबंधित हैं कम-से-कम। प्रेम का ठीक विपरीत तत्व है भय। इसकी परख कैसे होगी? अपने अनुभव से आप देखना। जब-जब हम प्रेमपूर्ण होते हैं, हम रिलैक्स्ड होते हैं, किसी व्यक्ति की उपस्थिति में हम फैले हुए हो जाते हैं। जैसे हमारी जीवन ऊर्जा, हमारे भीतर का प्राणमय कोष विस्तीर्ण हो गया। जब हम भयभीत होते हैं, हम सिकुड़ जाते हैं। हमारा वाइटल फोर्स छोटा हो गया, संकीर्ण हो गया। इस बात को आपने अनुभव किया होगा। तो एक में प्राण ऊर्जा सिकुड़ती है, एक में प्राण ऊर्जा फैलती है। इसलिए असली विपरीत तत्व यही हैं- प्रेम और भय।

एक और मजेदार घटना। जिसके प्रति हमारा प्रेमभाव होता है, मैत्रीभाव होता है उसके संग हमारा भय का रिश्ता नहीं होता। वहाँ हम शांत, शिथिल, रिलैक्स होते हैं और हम जैसे हैं, वैसे हो पाते हैं। सहज, सरल। कुछ छुपाया हुआ नहीं है। जैसे हैं वैसे हैं। स्पष्ट, साफ सुथरे। जो अंदर हैं, वही बाहर हैं। जो अंदर सोच रहे हैं, बाहर भी वही बोलते हैं। सहज। जहाँ पर भय है, वहाँ पर हम औपचारिक हैं। बस ऊपर-ऊपर के सभ्यता के एटीकेट्स और मैनर्स निभा रहे हैं। दिखावटी, चालाकीपूर्ण पाखण्ड भरा व्यवहार है। हो सकता है सामनेवाला धोखा खा जाए, पर हम तो अपने भीतर भली-भांति जानते हैं कि हम डर की वजह से वैसा कर रहे हैं और जिसके प्रति हमारे मन में डर है, हम उसको प्रेम या आदर कभी सचमुच में दे ही नहीं सकते। क्योंकि जिससे हम डर रहे हैं, जहाँ हमारी जीवन ऊर्जा सिकुड़ जाती है, हम संकीर्ण हो जाते हैं, एक प्रकार से हम कम जीवित हो जाते हैं। वहाँ हम इसका प्रतिशोध लेना चाहेंगे, बदला लेना चाहेंगे। वस्तुतः हम उसके जीवन को नष्ट करना चाहेंगे। क्योंकि उसने हमारी जीवंतता को नष्ट किया

है। डराकर, धमकाकर ऐसी परिस्थिति खड़ी करके कि जिसमें हम सिकुड़ गए।

जहाँ प्रेम का माहौल है, वहाँ पर हम फैल जाते हैं। हम अधिक जीवंत महसूस करते हैं। मोर अलाइव! निश्चित रूप से उसके साथ आती है प्रसन्नता, उसके साथ आती है आनंद की अनुभूति। और जहाँ हम आनंदित हैं, फूल की तरह खिल गए हैं, वहाँ हम भी दूसरे को खिला हुआ देखना चाहते हैं। जिसकी वजह से हम खिल सके, हम दूसरे को भी शांत, शिथिल, रिलैक्स, प्रफुल्लित करना चाहेंगे।

प्रेम के बदले में प्रेम घटित होता है, मैत्री के बदले में मैत्री घटित होती है। इसका ठीक उलटाः भय के रिस्पॉन्स में भय उत्पन्न होता है। चूंकि दुनिया में प्रेम के नाम पर अधिकतर भयवाला संबंध चल रहा है और इसलिए सारी चीजें बड़ी मिक्स–अप हो गई हैं, कुछ पहचान में ही नहीं आता। हम जिसे दोस्ती कह रहे हैं, प्रेम कह रहे हैं, आदर, श्रद्धा कह रहे हैं; अक्सर वहाँ पर भय मौजूद है। ये दो विपरीत चीजें एक साथ हो ही नहीं सकतीं। फिर यह भय ही सत्य होगा। वह प्रेम दिखावटी होगा इस भय की वजह से हमारा सारा प्रेम नष्ट हो जाता है।

माता–पिता कह रहे हैं बच्चे से कि आदर करो हमारा। क्योंकि हम मां हैं, हम पिता हैं। बच्चे को करना पड़ता है; क्योंकि उसकी मजबूरी है, वह असहाय है। सब भांति इन पर निर्भर है, इनके बिना वह जीवित भी न बच सकेगा। वे जो भी मांग करेंगे, इसको पूर्ति करनी ही होगी। कोई उपाय ही नहीं। भीतर ही भीतर वह घृणा कर रहा है, भयभीत है। लेगा वह बदला कभी–न–कभी जरूर लेगा। अक्सर वृद्ध लोग शिकायत करते हैं कि हमने तो बच्चों के लिए इतना कुछ किया न जाने किस जन्म का बदला ले रहे हैं बड़े होकर। किसी जन्म का नहीं, इसी जन्म का ले रहे हैं। जब आपके हाथ में शक्ति थी, वह कमजोर थे; तो आपने उनको सताया, धमकाया, डराया, अपनी बात मनवाई। अब स्थिति पलट गई। आप वृद्ध हो गए, कमजोर हो गए, उनपर आश्रित हो गए। आज वे शक्तिशाली हैं। उनके हाथ में धन–पैसा है। अब वे अपने ढंग से सताएंगे। हिसाब–किताब पूरा करेंगे। न प्रेम का संबंध पहले था, न अब है।

यही घटना देखते हैं पति–पत्नियों के बीच। पति शब्द का अर्थ होता है मालिक। हर पति मालिक बनने की कोशिश में है। मालिक बनकर तो फिर दूसरे को डराना होगा, धमकाना होगा, अपनी आज्ञा से चलाना होगा। जब तक महिलाएं शिक्षित न थीं, पढ़ी–लिखी न थीं, आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं थीं, तब तक वह गुलामी चलती रही। जैसे–जैसे शिक्षा आई, समानता आई, आर्थिक संपन्नता आई और आर्थिक स्वतंत्रता आई, वैसे–वैसे हम देखते हैं कि परिवार टूटने लगे। वास्तव में वे कभी जुड़े ही नहीं थे। बस ऊपर–ऊपर का दिखावटी जोड़ था, मजबूरी में। जैसे वे बच्चे माता–पिता के प्रति आदर से नहीं भरे हैं, केवल दिखावटी चल रहा है खेल, एक नाटक चल रहा है। मौका आते ही वे बागी हो जाएंगे। ठीक ऐसे ही पति–पत्नी का संबंध हजारों साल से धोखा देता रहा। अब मौका आया है। उन्नत देशों में जहाँ सामाजिक सुरक्षा है, वहाँ परिवार की जड़ें बिल्कुल उखड़ गईं।

जहाँ पर महिलाओं को दमित होके रहना पड़ा जबरदस्ती, वहाँ वे प्रेम और आदर दिखाती रहीं; लेकिन सूक्ष्म तरीकों से बदला लेती रहीं। उनके अपने ढंग हैं बदला लेने के। वह पति जो मालिक बनने की कोशिश कर रहा है, शीघ्र ही भीतर–ही–भीतर वह जोरू का गुलाम हो जाता

है। यह होना ही है। पत्नी अपने ढंग से गुलामी के जाल फैला रही है। फिर आश्चर्य नहीं कि दोनों एक दूसरे के प्रति नफरत से भरे होंगे। भारी एक्सपेक्टेशन, बड़ी–बड़ी अपेक्षाएं और धोखाधड़ी के अलावा और कुछ भी नहीं। वह धोखा कितने दिन चलेगा? सारा प्रेम नष्ट हो जाता है। वही स्थिति है दुकान में, ऑफिस में, संस्थाओं में, फैक्ट्रियों में जहाँ लोग संग–साथ काम कर रहे हैं। कोई मैत्री नहीं है, कोई रिश्ता नहीं है, एक मजबूरी है। अब एक ऑफिस में पच्चीस लोग काम कर रहे हैं, किसी को किसी से कोई मतलब नहीं। सबको अपनी–अपनी सैलरी से मतलब है। संयोग की बात एक ही ऑफिस में वे नियुक्त हैं। कल को ट्रांसफर हो जाएंगे, जिंदगी में कभी इनकी याद भी न आएगी।

एक विचित्र दुनिया हमने बना रखी है, जहाँ प्रेम और मैत्री के नाम पर बस धोखा ही धोखा चल रहा है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि परमात्मा से हम बुरी तरह टूट गए। हम व्यक्तियों तक से नहीं जुड़ पा रहे, तो समष्टि से कैसे जुड़ पाएंगे। दो–चार लोगों से भी हमारा मिलन नहीं हो पाता, तो परम योग अस्तित्व से कैसे होगा। इसलिए जिस व्यक्ति को भी धर्म की साधना करनी है, उसे अपने आसपास देखना होगा। यह बड़ा कड़वा सच है; लेकिन इसको जानना ही होगा कि ऐसा है, दिस इज द फैक्ट; क्योंकि इस फैक्ट को पहचान कर ही फिर कुछ किया जा सकता है। इस तथ्य को जब हम पहचान लेंगे कि हम बस एक झूठा नाटक कर रहे हैं, अभिनेता–अभिनेत्री की तरह, तब हमारे प्राणों मे बड़ी बेचैनी हो जाएगी। हम एक झूठी जिंदगी जी रहे हैं, एक तड़फ पैदा होगी और तब हम एक प्रामाणिक जीवन जीने के लिए उत्सुक होंगे। हम स्वयं भी रिलैक्स होना चाहेंगे, सब तनावों से मुक्त होना चाहेंगे और जो हमारे संपर्क में आते हैं हम चाहेंगे कि वे भी सब तनावों से मुक्त हों। किसी पाखण्ड की जरूरत न हो। सहज और सरल जैसे हैं वैसे हो सकें। तब सही मैत्रीभाव जन्मेगा। यही मैत्रीभाव फैलते–फैलते सारे विश्व से जुड़ सकता है।

ऋषियों ने कल्पना की है 'वसुधैव कुटुंबकम', सारी दुनिया एक परिवार... काश ऐसा हो सके। बड़े रूप में कब होगा, कहना मुश्किल है। व्यक्तिगत रूप से तो हो ही सकता है। कम–से–कम आप निर्णय कर लें। आपके भीतर किसी के प्रति शत्रुता न हो, आप रिलैक्स होकर जीना शुरू कर दें।

महावीर का वचन है कि कोई भी मेरा शत्रु नहीं। ऊपर–ऊपर से देखेंगे तो उनकी जीवन कथा में तो कई शत्रु आते हैं। कई लोगों ने उनके प्राण हरने की कोशिश की, अपमान करने की कोशिश की। और महावीर कहते हैं कि मेरा कोई भी शत्रु नहीं। क्या इनको ठीक से पता नहीं है? महावीर की तरफ से कोई शत्रु नहीं। वे दूसरे लोग क्या कर रहे हैं, उनकी वे जानें, वह उनकी तरफ से है। महावीर इतने सहज, सरल! जैसे हैं वैसे ही जी रहे हैं। उनकी तरफ से किसी से कोई संघर्ष नहीं है, कोई शत्रुता नहीं है। किसी के साथ कोई हिंसा नहीं है उनकी तरफ से। उनकी तरफ से परम मैत्री का भाव है। अब दूसरे क्या करते हैं, उनकी वे जानें।

ईसा मसीह का कोई दुश्मन नहीं है। ईसा मसीह की तरफ से कह रहा हूं। यूं तो बहुत दुश्मन थे और सूली पर चढ़ाकर उनके प्राण ले लिए। लेकिन फिर भी उनके अंदर दुश्मनी की

भावना पैदा न कर सके। मरते दम तक भी वे यही कह कर गए कि हे प्रभु! इन्हें क्षमा कर देना, बेचारे जानते नहीं क्या कर रहे हैं। मैं तो अमृत चेतना हूं। इनको पता ही नहीं। ये मुझे मारने की कोशिश कर रहे हैं। मैं मर ही नहीं सकता। ये बेचारे नासमझ! फालतू इतनी मेहनत कर रहे हैं। उनकी तरफ से दया और करुणा में कोई कमी न हुई। हत्यारों के प्रति भी नहीं हुई। यह है परम मैत्रीभाव।

थोड़ा तुलना करना। एक तरफ तो बुद्ध, महावीर और ईसा मसीह जैसे लोग हैं। बुद्ध की कहानी तो आपको पता ही होगी। किसी व्यक्ति ने भूलचूक से ज़हरीला भोजन करा दिया था। फूड पॉयजनिंग हो गई। जब बुद्ध को समझ में आया कि मृत्यु निकट है, तो उन्होंने सबसे पहला काम क्या किया? अपने शिष्यों से कहा कि गांव में डुंडी पीट दो कि वह व्यक्ति महासौभाग्यशाली है जिसने बुद्ध को अंतिम भोजन कराया। दो लोगों की महिमा अपार है। एक वह मां जिसने बुद्ध को पहला भोजन कराया और एक यह व्यक्ति जिसने आज मुझे भिक्षा दी, उसने अंतिम भोजन कराया।

क्यों बुद्ध ने ऐसा किया? जानबूझकर। कहीं ऐसा न हो कि उनके शिष्यों को पता चले कि इस व्यक्ति के भोजन कराने से मृत्यु हुई है, तो उससे बदला लें कि उसकी हत्या कर दें। बुद्ध ने कहा वह अत्यंत महिमाशाली और महासौभाग्यशाली व्यक्ति है।

बुद्ध की तरफ से कोई दुश्मनी नहीं है, कोई आक्रोश नहीं है। परम मैत्रीभाव, उसमें कोई कमी नहीं हो गई। एक तरफ बुद्ध, महावीर और जीसस जैसे लोग हैं, सुकरात जैसे लोग हैं, मीराबाई जैसे लोग हैं, जिनको सब प्रकार से यातनाएं दी गईं, किंतु उनके प्रेम, मैत्री और करुणा में ज़रा कमी न हुई। दूसरी तरफ हम लोग हैं कि हम अपने आसपास जो लोग सब प्रकार से हमारे जीवन में सहयोगी और समर्थक हैं, उनके प्रति भी हमारे मन में शुद्ध प्रेम नहीं, शुद्ध मैत्री नहीं। वहाँ एक पाखण्ड चल रहा है। क्या यह उचित है? याद रखना! दूसरे की हानि होगी कि नहीं होगी, मैं नहीं जानता, ऐसा करने में हमारी तो हानि हो ही गई। हम एक बंद कटघरे में जी रहे हैं। करीब-करीब मुर्दा।

हमने अपनी जीवंतता, संवेदनशीलता सब नष्ट कर डाली। हम डरे हुए हैं दोस्ती का हाथ बढ़ाने में। अपने आप में सिकुड़े हुए। हम चलते-फिरते लोगों में और कब्र में बंद जो मुर्दा लाश है उसमें, कुछ खास फर्क नहीं। बस हम सांस लेती हुई लाशें हैं, कुछ खास फर्क नहीं। इस कब्र के बाहर निकलें। यह जो इंसेंसिटिविटी, असंवेदनशीलता की, प्रेमहीनता की, मैत्री के अभाव की जो कब्र है, इसके बाहर निकलें, तो हमारा जीवन भी परम आनंद से भर सकता है।

प्यारे मित्रों, इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है। किंतु जिंदगी एक अवसर मात्र है। इस अवसर के साथ में स्वतंत्रता भी मिली है। हम चाहें तो इसे नरक और चाहें तो स्वर्ग बना सकते हैं। अधिकतर लोगों ने प्रथम विकल्प चुना है। समझदार व्यक्ति वही है जो द्वितीय विकल्प चुने।

आज की चर्चा को यहीं विराम देते हैं। धन्यवाद। जय ओशो।

जिंदगी का उद्देश्य क्या है?

सभी मित्रों को नमस्कार,

हम एक महत्त्वपूर्ण विषय पर चर्चा करने जा रहे हैं––'जिंदगी का उद्देश्य क्या है?'

इसके पहले कि हम चर्चा के विस्तार में चलें सबसे पहले तो हमें यह सोचना चाहिए कि क्या यह प्रश्न सही है? क्योंकि गलत प्रश्न का कोई सही जवाब नहीं हो सकता। हम कुछ ऐसे पूछते हैं कि जैसे जीवन हमको मिला है इसका क्या उद्देश्य है? सच्चाई यह है कि जीवन कोई वस्तु नहीं है जो हमें मिली है, हम स्वयं ही जीवंत हैं। कोई मिली हुई वस्तु का उपयोग हो सकता है। समझो कोई कहे कि मुझे कपड़े मिले हैं इनका क्या उद्देश्य है। बता सकते हैं कि क्या उद्देश्य है? धूप, सर्दी से रक्षा करना।

आपके पास कार है, कार का क्या उद्देश्य है? जहां आप जाना चाहें आप उसमें बैठ कर जा सकते हैं। कार एक साधन है, एक वाहन है। शिक्षा का क्या उद्देश्य है पूछा जा सकता है, किसलिए डिग्री प्राप्त करें? इससे हम आजीविका कमा सकेंगे, व्यापार कर सकेंगे, नौकरी कर सकेंगे, ...उद्देश्य है। हर चीज का जिंदगी में उद्देश्य है। यहां हम बैठे हैं इस हॉल का क्या उद्देश्य है? उद्देश्य है कि यहां सभा हो सके। यह साऊंड सिस्टम का क्या उद्देश्य है? कि मेरी बात आप सब को सुनाई दे सके। कुर्सी का क्या उद्देश्य है, कि उस पर आराम से बैठ सकें। जिंदगी में सभी चीजें साधन हैं, उनसे कुछ प्राप्त होता है। एक कठिन सवाल तब उत्पन्न हो जाता है जब हम पूछते हैं कि जिंदगी का क्या उद्देश्य है? हम गलत सवाल पूछते हैं। जीवन स्वयं अपने आप में उद्देश्य है, लक्ष्य है, वह किसी चीज का साधन नहीं है, वह स्वयं ही साध्य है। दो प्रकार की चीजें हैं जगत में, एक जिनको हम कहते हैं

साधन, एक है साध्य। एक है लक्ष्य और एक है उस लक्ष्य तक पहुंचाने वाली चीजें। समझो कार अपने आप में साधन नहीं हैं। अगर वह कहीं ले जाती न हो, हम कहें कि कार बहुत महंगी है, बड़ी सुंदर है, रंग भी बहुत अच्छा है, सीट भी बहुत कंफर्टेबल है। बस एक खराबी है उसमें, अपनी मर्जी से वह चलती नहीं है। इस कार का क्या करेंगे? यह तो एक साधन थी, एक वाहन थी, जहां हम पहुंचना चाहते हैं वहां तक हमें पहुंचाने के लिए। हम धन कमाते हैं किसलिए? ताकि हम ठीक ढंग से, स्वस्थ तरीके से, सुरक्षित ढंग से अपना जीवन जी सकें। धन एक साधन है, इसलिए तो उसको धन कहते हैं। वह एक साधन है, अपने आप में वह साध्य नहीं है। शिक्षा भी साधन है, आजीविका कमाना भी साधन है, घर भी साधन है। यह सब चीजें साधन हैं। साध्य क्या है? इनसे हम अपने जीवन को ठीक ढंग से जी सकेंगे। जो हम करना चाहेंगे वह हम कर सकेंगे। यह सब उसमें सहयोगी हैं, उपयोगी हैं।

लेकिन सब चीजों को साधन की भांति देखते, देखते, देखते हम अजीब सवाल पूछने लगते हैं उन चीजों के बारे जो किसी के साधन नहीं है, जो स्वयं ही साध्य है, जो स्वयं ही उद्देश्य है, लक्ष्य है। उदाहरण के लिए जीवन। जीवन का कोई उद्देश्य नहीं है, जीवन अपने आप में उद्देश्य है। मैं संक्षेप में इस पर चर्चा करना चाहूंगा कि हम जब ऐसा सोचते हैं कि हर चीज किसी चीज का साधन है इससे यह प्राप्त होगा, उससे वह प्राप्त होगा, उससे वो प्राप्त होगा तब भी हमें कहीं–न–कहीं किसी चीज को तो मानना पड़ेगा जिसके लिए सब चीजें उपयोगी हैं। वह चीज आखरी चीज जिसको हम कहें अल्टीमेट, परम वह किसी का साधन नहीं होगी। अन्य सब चीजें उसका साधन होंगी, सहयोगी होंगी। तो फिर वह जीवन ही है और जीवन में हम जिसको भी हायर वैल्यूस, उच्चतम मूल्य कहते हैं वे सब उसी प्रकार के हैं। समझो कोई व्यक्ति कहता है कि मैं किसी को प्रेम करता हूं, और हम उससे पूछें कि प्रेम का लक्ष्य क्या है? एक सच्चा प्रेमी प्रेम का लक्ष्य नहीं बता पाएगा। क्योंकि प्रेम स्वयं एक हायर वैल्यू है, वह किसी का साधन नहीं है। अगर कोई व्यक्ति बताए इस–इस वजह से मैं प्रेम करता हूं, इसका मतलब वह प्रेम को जानता ही नहीं।

मैंने सुना है एक बीस वर्षीय युवती ने एक अस्सी वर्ष के बूढ़े अमीर से विवाह किया। पत्रकार उसका इंटरव्यू लेने पहुंचे। कहा कि आपने क्या इनमें ऐसा देखा, अस्सी साल के व्यक्ति में। माना कि बहुत अमीर हैं। आप बीस साल की हैं, आपने इनसे क्यों विवाह किया? उसने कहा मैंने इनमें दो चीजें देखीं। एक तो इनकी इनकम और दूसरे इनके दिन कम।

क्या आप इसको प्रेम कहेंगे? नहीं कहेंगे। क्यों? क्योंकि इसने तार्किक ढंग से बता दिया, लक्षण बता दिया। यह तो प्रेम न हुआ, यह तो चालाकी हुई, यह तो शोषण हुआ, षड्यंत्र हुआ। यह तो प्रेम का ठीक उल्टा हुआ, किसी का एक्सप्लॉएट करना हुआ। प्रेम का कोई लक्ष्य नहीं बताया जा सकता। मैं जगह–जगह सत्संग लेने जाता हूं, लोग पूछते हैं ध्यान का, समाधि का लक्ष्य क्या है? मैं चुपचाप मुस्कुरा कर रह जाता हूं, मैंने आज तक इसका उत्तर नहीं दिया। ध्यान का, समाधि का, परमात्मा का क्या लक्ष्य हो सकता है। वह स्वयं

अपने आप में लक्ष्य है। और अगर हम उसको भी साधन की भांति देखेंगे तो फिर हमारे सोचने–समझने में भूल हो गई। तो प्यारे मित्रों, पहले तो इस बात को खूब स्पष्ट रूप से समझ लें कि जीवन स्वयं अल्टीमेट है प्रेम की तरह, ध्यान की तरह, समाधि की तरह, परमात्मा की तरह। वह किसी का साधन नहीं बनेगा। लोग ईश्वर को भी इस भांति खोजते हैं कि अगर मिल जाए तो उससे कुछ काम करवा लें। क्या आप इनको आस्तिक कहेंगे? मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, चर्चों में जो लोग जाते हैं उनकी प्रार्थनाएं सुनो। मुख्य रूप से दो बातें उनमें समझ में आएंगी एक तो शिकायत, कम्प्लेंट कर रहे हैं कि यह गलत, वह गलत, ऐसा नहीं होना चाहिए, वैसा नहीं होना चाहिए। और फिर दूसरी चीज है सलाह, मशवरा कि हम बताते हैं क्या होना चाहिए। हे प्रभु ऐसा कर दे, हे प्रभु वैसा कर दे।

मुझे याद आता है पांच–सात साल पहले ध्यान समाधि के कार्यक्रम में सौ मित्र मौजूद थे। एक वृद्ध महिला गांव से आई थी, अनपढ़ थी। सब लोग बता रहे थे कि वह किसलिए आए हैं, जीवन का लक्ष्य क्या है? उस पर महिला ने बड़ी जोरदार बात कही। उसने कहा मैं ईश्वर को खोजना चाहती हूं। मैंने उनसे पूछा कि ईश्वर मिल जाएगा फिर आप क्या करेंगी? वो कहने लगी कि बेटा, अब बूढ़ापे में मेरी कमर दर्द होने लगी झुकते नहीं बनता। बाकी सब घर–गृहस्थी का काम मैं संभाल लेती हूं, कपड़ा धोना और पोछा लगाना, ये दो काम अब मुझसे नहीं होते। तो प्रभु से कहूंगी हे प्रभु ये दो काम तू संभाल ले, बाकी सब मैं कर लेती हूं।

हमें उस ग्रामिण महिला की भोली–भाली बात पर हंसी आ रही है। जरा अपने भीतर टटोलना। हमारे क्या इरादे हैं। भगवान मिल जाएगा तो हम उससे क्या करवाना चाहते हैं। हम भी उसे किसी काम में लगा देंगे। तब परमात्मा भी साधन हो गया वह भी साध्य न रहा। फिर उसको परम कहने की कोई जरूरत ही नहीं। परम का मतलब होता है 'दि अल्टीमेट'। अब उससे आगे और कुछ नहीं है जिसमें उसका उपयोग किया जा सके।

तो प्यारे मित्रों, सबसे पहले आपका ध्यान इसी बिंदु पर लाना चाहूंगा कि प्रश्न सुनने में तो ठीक लगता है कि जीवन का उद्देश्य क्या है? यह प्रश्न बिल्कुल गलत है, और गलत प्रश्न का कोई सही जवाब नहीं हो सकता। और इसलिए हजारों–हजारों साल से लोग पूछते रहे हैं जीवन का उद्देश्य क्या है? हमारे ही देश में कम–से–कम पिछले पांच हजार साल से सभ्यता का विकास हुआ। पांच हजार साल का शास्त्र और ग्रंथ उपलब्ध है। और उनमें भी चर्चा है इस बात की कि जीवन का उद्देश्य क्या है? और हजारों–हजारों फिलॉसफर्स ने, विद्वानों ने बड़ी चिंतन–मनन करके अपने सिद्धांत दिए। आज तक सहमती नहीं बन पाई। क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर हो ही नहीं सकता। अगर हमने गलत प्रश्न पूछा। अगर मैं पूछुं कि बताइए सूरज की रोशनी की सुगंध कैसी होती है? क्या जवाब देंगे? रोशनी की सुगंध? सुनने में तो लगता है कि सवाल ठीक है, ग्रामर के हिसाब से ठीक है। पर एक्ज़िस्टेंशियली यह सवाल ही गलत है। प्रकाश की सुगंध नहीं होती। तो फिर हम कहेंगे अच्छा! प्रकाश गंधहीन है, बदबूदार है। गलत नतीजे पर पहुंच गए। न सुगंध है, न दुर्गंध है वह बात ही उस पर लागू नहीं होती। ठीक ऐसे ही

हम पूछते हैं जीवन का अर्थ क्या है, जीवन का लक्ष्य क्या है? और हम खोजबीन करेंगे तो हमेशा गलत निष्कर्ष पर पहुंच जाएंगे फिर अंत में हम पाएंगे कि जीवन सारहीन है, व्यर्थ है। आज पश्चिम के बड़े–बड़े विद्वान, लेखक इस एक शब्द को बहुत उपयोग करते हैं वह है– मीनिंगलेसनेस, अर्थहीनता। जीवन के संबंध में जिसने भी चिंतन–मनन किया, वह एक दिन इसी नतीजे पर पहुंचा कि जीवन बेकार है। कुछ मतलब नहीं। क्योंकि हमने गलत प्रश्न से शुरुआत की। तो पहले कदम पर ही सावधान। गलत सवाल नहीं पूछना। दूसरी बात मैं आपसे कहना चाहता हूं, हम जिसे जीवन कहते हैं जन्म से लेकर मृत्यु तक की प्रक्रिया सिर्फ यही जीवन नहीं है। इसके आर–पार भी कुछ है अल्टीमेट। वह असली जीवन है, शाश्वत जीवन है। यह जो सत्तर–अस्सी साल की कहानी है अगर इसमें आपने कोई लक्ष्य खोजा आप किसी लक्ष्य को न पा सकेंगे। दुनिया के बहुत से विकसित देशों में स्वेच्छा मरण को कानूनी अनुमति मिल गई। अभी थोड़े दिन पहले हमारे देश में भी सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया है कि जो लोग मरना चाहें वह मर सकते हैं। उन्नत देशों में काफी पहले यह बात हो चुकी बीस–पचीस साल पहले हो चुकी। क्योंकि लोग कह रहे हैं जीने का सार क्या, हम किसलिए जीएं। याद रखना जब तक तकलीफें थीं, बीमारी थी, गरीबी थी, अशिक्षा थी तब तक लगता था कि जीवन का एक लक्ष्य है। जब वह सब चीजें पूरी हो जाती हैं, एक अमीर समाज में सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं तब अचानक समझ में आता है कि अरे! यह सब है किसलिए? फॉर व्हाट? गरीब समाज में यह सवाल पैदा नहीं होता। जैसे ही संपन्नता आती है एक नया सवाल उत्पन्न हो जाता है। अशिक्षित आदमी को ऐसा लगता है कि काश मैं शिक्षा प्राप्त कर लूं, ज्ञानवान हो जाऊं फिर खूब अच्छा रहेगा। गांव में रहने वालों को लगता है कि मैं शहर में जाकर बस जाऊं। यह–यह सुख–सुविधाएं हों फिर बड़ा मजा आएगा, बड़ा अच्छा रहेगा। गरीब आदमी को लगता है अमीर हो जाऊं। बीमार को लगता है एक बार स्वस्थ हो जाऊं फिर बहुत मजा करूंगा। जो कुंवारे हैं उनको लगता है एक बार शादी हो जाए फिर बड़ा मजा करेंगे और जो शादीशुदा हैं वे सोचते हैं कि हम मर ही जाएं। अगर हमारी सारी जरूरतें पूरी हो जाएं तब अचानक हमें पता चलता है कि हम निरुद्देश्य जी रहे हैं। कुछ मतलब समझ में नहीं आ रहा है किसलिए जिएं। सद्गुरु ओशो के प्रवचन में एक बड़ी प्यारी कहानी आती है।

एक सम्राट था। सब कुछ उसके पास था। एक रात उसने सपना देखा। सपने में मौत की काली छाया ने आकर उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा कि सुनो, कल का दिन तुम्हारी जिंदगी का आखिरी दिन है। कल शाम को सूर्यास्त के समय मैं तुम्हें लेने आऊंगी तैयार मिलना। कह कर वह काली छाया विदा हो गई। इस सपने को देखते हुए राजा इतना घबड़ा गया, पसीने–पसीने हो गया कि उसकी नींद खुली। आधी रात के समय उसने अपनी रानियों को उठाया, राजकुमारों को उठाया। कहा कि ऐसा मैंने सपना देखा कि कल मेरा आखरी दिन है। सूर्यास्त के साथ–साथ मैं भी अस्त हो जाऊंगा। यमदूत मुझे लेने आ जाएंगे। पूरा परिवार चिंता में पड़ गया। उन्होंने सोचा कि अपने दरबारियों को, विद्वानों को

बुलाकर उनसे सलाह लें, ज्योतिषी को बुलाएं। आधी रात को पूरा दरबार लगाया गया। उस सम्राट ने पूछा बताओ मैं क्या करूं? कोई विद्वान कुछ कहने लगा, कोई कुछ कहने लगा, ज्योतिषी अलग-अलग प्रकार की बातें बता रहे थे कि इस सपने का यह अर्थ, उस सपने वह अर्थ है। उनमें वाद-विवाद छिड़ गया। सम्राट के वृद्ध नौकर ने आकर उसके कान में फुसफुसाया कि महाराज इन विद्वानों की बातों में न आओ, ये जिंदगी भर से विवाद कर रहे हैं, आज तक कुछ निष्कर्ष नहीं निकला। आप मेरी सलाह मानो, जो आपके पास सबसे तेज घोड़ा है उस पर आप सवार हो जाओ और यहां से दूर निकल जाओ। क्योंकि मौत आपको लेने यहां आएगी और आपको यहां पाएगी ही नहीं। सम्राट को भी बात समझ में आ गई कि विद्वानों के भरोसे न रहे। इनकी बातों का अंत नहीं आता। और जिन्दगी का अंत आने वाला है। ये बहस करते रहेंगे। वह चुपचाप उठा; विद्वानों को पता भी नहीं चला, वे अपनी बहस में लगे हुए थे।

सम्राट ने अपने लिए सबसे तेज घोड़ा निकलवाया, उस पर सवार हुआ और वहां से भागा। जितनी तीव्र गति से हो सकता था, भागा। सम्राट ने दोपहर को न भोजन किया, न पानी पिया, न घोड़े को कुछ खिलाया-पिलाया; सोचा कि राज्य की सीमा के बाहर निकल जाऊं। कहीं दूर, बहुत दूर। होते-होते दोपहर भी बीत गयी, सूर्यास्त का समय भी आ गया। राजा निश्चिंत हुआ। उसने एक वृक्ष के नीचे अपने घोड़े को खड़ा किया, उसकी पीठ थपथपाई और कहा कि शाबाश! तुम ठीक जगह पर मुझे ले आए। तभी एक काली छाया प्रगट हुई, उसने भी घोड़े को थपथपाया और कहा शाबाश! मुझे भी डर लग रहा था तुम यहां ठीक समय पर राजा को ला पाओगे कि नहीं। इसलिए मैंने रात को सपने में दर्शन दिया था कि तुम्हारी मौत यहां लिखी है सूर्यास्त के समय पेड़ के नीचे। और तुम हजारों किलोमीटर दूर वहां महल में सोए हो। पहुंच पाओगे कि नहीं, मुझे भी शक था। लेकिन तुम्हारा घोड़ा गजब का है; ठीक समय पर उसने ठीक जगह पहुंचा दिया ।

प्यारे मित्रों, हम जिस किसी भी घोड़े पर सवार हैं, चाहे वह धन का घोड़ा हो, चाहे राजनीति का घोड़ा हो, चाहे ज्ञान का घोड़ा हो, शिक्षा का घोड़ा हो, चाहे यश और प्रतिष्ठा का घोड़ा हो, चाहे प्रेम का, संबंधों का, घर-गृहस्थी का घोड़ा हो, जिस घोड़े पर हम सवार हैं बस एक बात याद रखना कि घोड़ा बहुत कुशल है। बिल्कुल ठीक समय पर ठीक जगह पहुंचा देता है। आज तक उससे भूल-चूक नहीं हुई, आज तक नहीं हुई।

अगर इसी को हम जिंदगी समझते हैं जन्म से लेकर मृत्यु तक की छोटी सी कहानी को, तो फिर इसमें कोई सार नजर नहीं आता। फिर क्या फर्क पड़ता है कि हम गरीब रहे कि अमीर रहे, पढ़े-लिखे थे कि अनपढ़ रहे, कुवांरे रहे कि शादीशुदा थे, सम्राट थे कि भिखारी थे... हाऊ डज इट मैटर? हमारे जैसे अरबों लोग हो चुके। सात अरब लोग अभी धरती पर हैं। एक दिन में ढाई लाख आदमी मरते हैं। कुछ फर्क पड़ता है क्या? कौन थे वे ढाई लाख आदमी? उन्होंने क्या किया, क्या नहीं किया, जीवन में क्या सफलता प्राप्त की, कि

असफल हो गए, कोई तो फर्क नहीं पड़ता। एक दिन हम भी दुनिया में नहीं होंगे। वह दिन कोई भी दिन हो सकता है। कुछ फर्क पड़ जाएगा क्या? आप सुंदर थे कि कुरूप थे, स्वस्थ थे कि बीमार थे, बड़े मकान में रहते थे कि छोटे घर में, क्या फर्क पड़ता है। जब यह कहानी ही खतम हो जानी है तो फिर क्या फर्क पड़ता है। फिर तो इससे भी फर्क नहीं पड़ता कि पाप किए कि पुण्य किए। क्या फर्क पड़ता है। पापी भी मर जाते हैं, पुण्यात्मा भी मर जाते हैं; किसी का नामोनिशान शेष नहीं रह जाता। फिर तो जीवन में कोई सार नजर नहीं आता।

मैं आपका ध्यान दूसरे बिंदु पर लाना चाहता हूं; हम जिसको जीवन समझते हैं सिर्फ यही जीवन नहीं है। यह जीवन एक लंबा सिलसिला है। जन्म के पहले भी हम थे, किसी अन्य रूप में, किसी अन्य शक्ल-सूरत में, अन्य नाम था हमारा। और जिसे हम मृत्यु कहते हैं, उसके बाद भी कंटीन्युटी में कुछ अमर रहेगा। नाम, रूप, स्थान बदल जाएंगे। हम फिर भी होंगे। उस विराट जीवन को अगर देखें तो पाते हैं कि इस छोटे से शारीरिक जीवन के आर-पार फैला हुआ है वह शाश्वत जीवन। वह स्वयं अपने आप में लक्ष्य है। उसे जानना ही इस छोटे से जीवन का उद्देश्य हो सकता है। उसे हम परम जीवन कहें, आत्मिक जीवन कहें, परमात्मा का अनुभव कहें, परमानंद का अनुभव कहें, जैसी आपकी मर्जी। अगर इस छोटे से जीवन का कुछ उद्देश्य है तो वह महाजीवन है, वह परम जीवन ही है। इस जीवन में हम उसको जान लें, उसको पहचान लें जो न कभी जन्मता है, न कभी मरता है। तो हमारा यह जीवन भी सफल हो गया। अन्य छोटी-छोटी चीजें जिनको हम सफलता कहते हैं, उनको तो सफलता नहीं कहा जा सकता।

एक अन्य सम्राट की कहानी स्मरण आती है जो एक बार रेगिस्तान में भटक गया था। प्यासा था। कई दिन बीत गए और पानी की एक बूंद भी नसीब नहीं हुई। और अंततः एक दिन आ गया कि तेज चिलचिलाती धूप, भयंकर गर्मी और वह बिल्कुल डिहाइड्रेटेड हालत में, लगता था कि अंतकाल आ गया। प्यासा मर रहा था। कल्पना करो तभी एक आदमी वहां आए और कहे कि एक गिलास पानी मेरे पास है, चाहिए क्या? राजा कहेगा जरूर चाहिए। वह आदमी कहे कि लेकिन इसकी क्या कीमत चुकाओगे? सम्राट क्या कहेगा? कहेगा जो तुम मांगो वही। वह कहेगा पानी महंगा है इतना सस्ता नहीं है। क्या आधा राज्य देने तैयार हो? एक गिलास पानी का? याद रखना सम्राट के पास ज्यादा वक्त नहीं है। ज्यादा मोल-तोल किया तो सांस छूटने वाली है। वह तैयार हो जाएगा। वह आदमी कहे कि इस बीच में मेरा रेट बढ़ गया। पूरा राज्य लूंगा, सब कुछ जो तुम्हारे पास है। आर यू रेडी? क्या कहेगा सम्राट? कहेगा ठीक है। राज्य जीवन के लिए है, जीवन राज्य के लिए नहीं है।

अब वह आदमी कहे कि पूरा राज्य ले लूंगा तब पानी पीने दूंगा। मगर एक शर्त है कि जैसे तुम पानी पीओगे तुम्हारा गला भी दबा दूंगा। अब रेडी हो? आप जरा खुद सोचो आप उसकी जगह होते, आखिरी क्षण है। उसके लिए भी रेडी होना पड़ेगा कि चलो कम-से-कम पानी पीकर तो मरेंगे। मर तो वैसे भी रहे हैं, राज्य तो वैसे भी छूट ही गया, अब किसके हाथ में पड़ता है क्या फर्क पड़ता है? क्या आपको नहीं लगता कि जीवन ही सर्वाधिक मूल्यवान

है? यह जीवन किसी का लक्ष्य नहीं है। हां, राज्य हो, धन हो, सुख–सुविधा हो तो जीवन में वह सहयोगी होगा। लक्ष्य राज्य नहीं है, राज्य का लक्ष्य जीवन है। आप हर दृष्टि से देखना।

हमने जो भी जीवन में पाया है वह सब साधन है, उसका साध्य हमारा जीवन है। और यह जो छोटा जीवन है इसका एक साध्य विराट जीवन है। अगर हम अपने जीवन को, अपने होने को चार खंडों में बांटें तो समझना बड़ा आसान होगा। फिर हमारे उद्देश्य भी बिल्कुल स्पष्ट हो जाएंगे। तो ये चार स्टेप्स ऐसे समझ लो कि हम किसी मकान की छत पर पहुंचना चाहते हैं, चार मंजिला मकान है। तो जो सीढ़ी हम चढ़ रहे हैं, एक सीढ़ी हमें दूसरी तक पहुंचाएगी, दूसरी तीसरी तक, तीसरी सीढ़ी चौथी तक हमें पहुंचाएगी। सबसे पहली सीढ़ी हमारा शरीर है। दूसरा हमारा हृदय, भावनाओं का जगत। और तीसरा हमारा मन, सोच–विचार का जगत। ये तीन सीढ़ियां हैं और चौथी हमारी अंतर्आत्मा है, हमारी चेतना, कॉन्शियसनेस। इन तीनों सीढ़ियों का लक्ष्य उस चौथे तक पहुंचाना है। वह चौथा ऐसा समझो मंदिर है और ये तीन सीढ़ियां हैं मंदिर तक पहुंचने की। कोई व्यक्ति अगर मंदिर को न जानता हो और वह सीढ़ी पर ही बैठा–बैठा विचार करे कि सीढ़ी का क्या लक्ष्य है, यह किसलिए बनी है, तो कुछ भी समझ में न आएगा। और यही भूल–चूक हमसे हो गई है। हमें उस मंदिर का ध्यान नहीं है जहां तक पहुंचने के लिए ये सब साधन मात्र हैं । अगर हम मंदिर को भूल गए तो सीढ़ी तो अपने आप में व्यर्थ है, सीढ़ी का क्या करोगे? इस चौथी चीज को ख्याल में लाना होगा।

तो पहले मैं तीन की चर्चा करना चाहूंगा। पहली सीढ़ी हमारा शरीर है। निश्चित रूप से शरीर की कुछ आवश्यकताएं हैं। उदाहरण के लिए भोजन चाहिए, सुख चाहिए, सुविधा चाहिए, स्वास्थ्य चाहिए, संपन्नता चाहिए, क्योंकि शरीर के लिए भोजन–पानी का इंतजाम करने के लिए धन चाहिए, संपत्ति चाहिए, सुरक्षा चाहिए। ये हमारी शारीरिक जरूरतें हैं। निश्चित रूप से इनको हमें पूरा करना होगा। याद रखना इनको पूरा करने से अपने आप में कोई सार हासिल नहीं होगा केवल सीढ़ी ठीक होगी। यह सीढ़ी आगे काम आ सकेगी। प्रकृति ने जो इंतजाम किया है... तीन चीजों का मुख्य रूप से... भूख दी है, भय दिया है, कामवासना की प्रवृत्ति दी है; भूख इसलिए दी है कि हम भोजन की तलाश करें ताकि हम जीवित रह सकें। सेक्स दिया है ताकि हम संतान उत्पत्ति कर सकें और अपनी जाति को जीवित रख सकें। यह केवल मनुष्य को ही नहीं, समस्त प्राणियों को, पशु–पंछियों को, पेड़–पौधों को, सबको दिया है। और तीसरा, भय दिया है। हम अपने जीवन की रक्षा कर सकें, अपने आपको बचा सकें।

ये तीन मौलिक प्रवृत्तियां प्रकृति ने प्रत्येक जीव को दी है। मनुष्य को भी दी है। निश्चित रूप से ये शरीर की जरूरतें हैं। अब कोई इसी में सोचना चाहे कि इसका क्या लक्ष्य है? अपने आप में इसका कोई लक्ष्य नहीं है। मैं भोजन करता रहूं और जिंदा रहूं और जीवन की रक्षा कर लूं और संतान उत्पत्ति कर जाऊं और आगे की पीढ़ी को जन्म दे जाऊं... कोई सोचे कि इसका अपने आप में क्या लक्ष्य है? इस प्रक्रिया का अपने आप में

कोई लक्ष्य नहीं है। हमारे पहले हमारे लाखों–लाखों पूर्वज हो चुके, वे हमें जन्म दे गए और हम बैठे सर फोड़ रहे हैं कि इसका लक्ष्य क्या है? हमारे आगे आने वाली पीढ़ी भी ऐसे ही सोचेगी।

तो शरीर को चलाने के लिए ये तीन अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्व हमारे भीतर हैं, प्रकृति के द्वारा प्रदत्त। लेकिन हमें ख्याल हो कि यह देह किसी अन्य चीज के लिए सीढ़ी है तब तो इसका सदुपयोग हो जाएगा। तब तो भोजन करना भी सार्थक है, तब धन कमाना भी सार्थक है और आजीविका, सुख–सुविधा का इंतजाम करना... सब चीजें सार्थक हो जाएंगी, किसी महान लक्ष्य के परिपेक्ष्य में, उसके कॉन्टेक्स्ट में। अपने आप में जीवित रहने का तो कोई लक्ष्य नहीं हो सकता। जैसा मैंने बताया कि बहुत से उन्नत देशों में जहां जीवन की सब जरूरतें पूरी हो गईं, भौतिक रूप से, मटेरियलिस्टिकली जो–जो हो सकता था वह सब उपलब्ध है, वहां एक बड़ा क्वेश्चन मार्क लग गया। फॉर व्हाट? इसको क्यों कंटीन्यू रखें? फिर खाना खाएंगे, फिर सो जाएंगे, फिर सुबह उठेंगे, फिर उठाया टूथब्रश। कितने सालों से उठा रहे हैं टूथब्रश? किसलिए? फॉर व्हाट? समझदार आदमी सोच–विचार करता है।

तो हमारी दैहिक जरूरतें हैं, आवश्यकताएं हैं, उनकी पूर्ति के लिए हम कुछ करते हैं। फिर दूसरे तल पर आता है हमारा ह्रदय, भावनाओं का जगत। उसकी कुछ अपनी जरूरतें हैं ताकि खुशी उपलब्ध हो सके। शरीर की जरूरतें पूरी करने से सुख मिलता है, एक फिजिकल प्लेजर। भूख लगी तो तकलीफ थी, पेट भर लिया तो एक तृप्ति का एहसास हुआ। प्यासे थे, परेशान थे। पानी पी लिया एक सैटिस्फैक्शन। ये फिजिकल जरूरतें हैं हमारी, फिजिकल नीड्स। अगर पूरी न हों तो कष्ट होगा, पूरी हो जाएं तो एक प्लेजरेबल सेंसेशन, जिसको हम कहते हैं सुख। शारीरिक सुख प्राप्त होगा।

अब ह्रदय दूसरे तल की बात है, वह जरा सूक्ष्म है... भावनाओं का जगत। वहां पर केवल प्लेजर, सुख ही नहीं है, सुख से और गहरी बात है जिसको हम कहते हैं खुशी। यह जरा सूक्ष्म बात है। समझो किसी आदमी को पेंटिंग करने का शौक है। उसने एक सुंदर चित्र बनाया। इससे कोई फिजिकल प्लेजर तो नहीं मिला, लेकिन एक खुशी मिली। किसी गीतकार ने, संगीतकार ने कोई सुंदर गीत बनाया, एक नई कविता लिखी, एक खुशी प्राप्त होती है। कला में, सृजन में, प्रेमपूर्ण संबंध में एक खुशी प्राप्त होती है। जैसे अभी थोड़ी देर पहले मैंने आपसे कहा कि प्रेम का कोई लक्ष्य नहीं है। प्रेम अपने आप में परिपूर्ण है। ह्रदय के तल पर इस बात को समझना। प्रेम एक भावना है, एक सद्भावना। अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण। इसका कोई लक्ष्य नहीं है।

ये जो खुशियां हैं, ये ज्यादा गहराई पर हैं। आप खेल खेलते हैं, किसी को क्रिकेट का शौक है, किसी को फुटबॉल का शौक है, उससे क्या मिलता है? किसी को प्लेजर नहीं मिलता। शरीर को तो कष्ट होता है। आप दौड़ते हैं, भागते हैं, पसीना आता है, चोट लग

जाती है, गिर जाते हैं। क्या मिलता है? खुशी मिलती है। यह कुछ सूक्ष्म आंतरिक बात है। कोई आपसे पूछे कि आप फुटबॉल के पीछे क्यों दौड़ते रहते हैं? क्या टारगेट है? इसका कोई टारगेट नहीं है। यह खुशी अपने आप में खूब अच्छी है। हम इसको प्राप्त करना चाहेंगे।

तो फिजिकल के बाद इमोशनल बातें हुईं जो अपने आप में टारगेट है। प्रेम के कई रूप हैं। एक है छोटे बच्चों के प्रति स्नेह की भावना, वात्सल्य की भावना। एक मां अपने बच्चे से प्यार करती है, ममता की जो भावना है, इससे उसे क्या मिलता है? खुशी। आपने अपने से कमजोर की कुछ मदद कर दी, इससे आपको क्या मिलता है? खुशी। कोई फिजिकल प्लेजर नहीं मिल रहा है। यह शारीरिक सुख नहीं है, कोई और गहरी इमोशनल चीज है। अपने बराबर वालों के साथ मैत्री की भावना होती है, दोस्ती की भावना होती है। तो प्रेम के और भावनाओं के कई–कई रूप हैं। ये हमें हार्दिक खुशी देते हैं। तो पहला हुआ शारीरिक सुख, दूसरा हुआ हार्दिक खुशी और तीसरे तल पर हम आते हैं जिसको हम कहें मानसिक। हमारे मन की भी कई जरूरतें हैं। हम अच्छा साहित्य पढ़ना चाहते हैं, अच्छा नाटक देखना चाहते हैं, अच्छा सीरियल देखना चाहते हैं, चिंतन–मनन में रुचि लेते हैं, शिक्षा में रुचि लेते हैं, ज्ञान अर्जन करते हैं, वैज्ञानिक बनते हैं, अविष्कार करते हैं– ये हमारे मन की जरूरतें हैं। याद रखना पशु–पंछियों के पास मनुष्यों के जैसा मन नहीं है और यह उनकी जरूरतें नहीं हैं। ये हमारी जरूरतें हैं।

फिर मन के तल पर एक और चीज आती है कि मेरा कोई महत्व हो, यश और प्रतिष्ठा हो, लोग मुझे जानें। इसके लिए हम बहुत कुछ करते हैं। यह हमारे मन की जरूरत है। पशुओं में ऐसी जरूरत नहीं है, वृक्षों को ऐसी जरूरत नहीं है क्योंकि हमारे जैसा मन उनके पास नहीं है। मनोरंजन की जरूरत है। किसी पशु को मनोरंजन की जरूरत नहीं है। एक भैंस घास चरती रहती है जिंदगी भर। कभी कोई परिवर्तन की डिमांड करती है क्या? हो गया बहुत, घास अब नहीं खाएंगे। मनुष्य को आप अच्छे से अच्छा भोजन दो जो उसके पसंद का है, चार–पांच दिन के बाद वह कहने लगेगा कि अब बस यह नहीं। परिवर्तन की जरूरत है क्योंकि हमारे पास मन है, वह ऊब जाता है, किसी भी चीज से ऊब जाता है। कुछ नवीनता चाहिए। यह हमारे मन की जरूरत है। यह कोई शारीरिक जरूरत नहीं है, यह कोई हार्दिक जरूरत नहीं है। लेकिन मन परिवर्तन मांगता है, नवीनता मांगता है, ज्ञान मांगता है, सम्मान मांगता है। चार लोग मुझे जाने, मेरी प्रतिष्ठा हो।

इसलिए मनुष्य जैसे राजनीति करता है दुनिया के कोई पशु–पंछी वैसा नहीं करते। यह हमारे मन की जरूरत है। हमें स्वीकारना होगा। तो ज्ञान, विज्ञान, शिक्षा, मनोरंजन, यश, प्रतिष्ठा, विविधता, परिवर्तन और अपने भीतर छिपी हुई प्रतिभा का विकास। कोई हिडेन टैलेंट हर बच्चे के भीतर है। हम इस दुनिया में कुछ करने को आए हैं। हर एक को एहसास होता है कि कुछ खास चीज, कोई बीज उसके भीतर छिपा है, वह पुष्पित पल्लवित हो जाए तो उसके जीवन में बड़ा गहरा सैटिस्फैक्शन, एक संतोष का

अनुभव होगा। जो व्यक्ति कवि होने आया है, अगर वह कवि हो पाया उसे बहुत गहरी तृप्ति का एहसास होगा। जो व्यक्ति वैज्ञानिक होने को आया था अगर वह अपनी खोजबीन कर पाया तो संतुष्ट होकर विदा होगा। और अगर हम वो नहीं कर पाए जो हम करने को आए थे, हमारे भीतर हमेशा अतृप्ति रहेगी, हम अनसैटिस्फाइड महसूस करते रहेंगे, भीतर एक बेचैनी बनी रहेगी। कुछ मजा नहीं आ रहा। ठीक है धन है, पैसा है, मकान है, घर–गृहस्थी सब कुछ है। लेकिन कुछ मजा नहीं आ रहा। वह मजा तभी आएगा जब हमारे भीतर छिपी हुई प्रतिभा पूरी विकसित हो पाए।

किसी के भीतर अभिनय की कला छिपी है, किसी के भीतर कोई खिलाड़ी छिपा है। जब तक इनका अभिनय और जब तक इनका खेल प्रगट नहीं हो जाएगा मजा नहीं आएगा। एक बीज को अपने–आप में क्या मजा आ सकता है। बीज देखने में कंकड़–पत्थर के समान है। अपने आप में तो कुछ अच्छा नहीं लगेगा। बीज को तो तभी अच्छा लगेगा जब उसमें से अंकुर निकले, एक पौधा बने, खूब पत्तियां आएं और बसंत बहार की ऋतु हो और फूल खिलें और फल लगे। तभी वह वृक्ष तृप्त हो सकेगा।

ठीक ऐसे ही हमारे भीतर कुछ छिपी हुई प्रतिभाएं हैं। ज्यादातर तो हमें खुद पता नहीं होता। ढूंढ़ने की मेहनत करनी पड़ती है। हर व्यक्ति को करनी पड़ती है। और जो लोग सफल हो जाते हैं खोजने में कि मेरे भीतर क्या छिपा है वही लोग जीवन में एक आंतरिक सफलता का एहसास करते हैं। कोई नर्तक बनने को आया है, कोई गायक बनने को आया है, कोई लेखक बनने को आया है, कोई वैज्ञानिक बनने को आया है। भिन्न–भिन्न बीज हम लेकर आए हैं टैलेंट के। वो हिडेन टैलेंट हमारा विकसित हो। तो ये तीन तल हुए देह, दिल और दिमाग। शरीर, हृदय और मन। इन तीनों तलों पर हमारी सारी जरूरतें हैं।

पश्चिम का एक बहुत महान वैज्ञानिक हुआ है साइकोलॉजिस्ट अब्राहम मैस्लो। शायद आपने नाम सुना हो, बड़ी प्रसिद्धि उसने सारी दुनिया में पाई। उसकी प्रसिद्ध किताब में उसने एक सीढ़ी बनाई है जिसमें लैडर्स सोपान हैं। एक–एक सोपान उसने रखा है; सबसे पहले फिजिकल नीड्स, फिर हृदय की जरूरतें, फिर मन की जरूरतें। उनको सीढ़ीबद्ध रूप से उसमें जमाया है कि कौन सी चीज बुनियादी है, कौन ऊपर की है। शरीर की जरूरतें सबसे बुनियादी। हम कहते हैं न रोजी, रोटी, कपड़ा, मकान। ये हमारी बुनियादी जरूरतें हैं। लेकिन सिर्फ इतना करके हम तृप्त नहीं हो जाएंगे। इसके बाद हृदय की जरूरतें शुरू हो जाती हैं। उतना करके भी हम तृप्त नहीं हो जाएंगे। उसके बाद मानसिक जरूरतें शुरू हो जाती हैं। और अब्राहम मैस्लो ने अपनी किताब में आखिरी सीढ़ी के आगे दो डंडे छोड़ दिए हैं कि अभी और सीढ़ी कहां जा रही है, मुझे पता नहीं। जहां तक जिंदगी भर में मैंने खोजा वह मैंने लिख दिया। ये इंसान की जरूरतें हैं, लेकिन इतना सब कुछ हो जाने के बाद भी इंसान सैटिस्फाइड नहीं होता और मुझे नहीं पता वह क्या चाहता है।

इस प्रश्न पर अब्राहम मैस्लो ने अपनी किताब खतम कर दी कि मैंने बहुत खोजा,

बहुत खोजा कि आखिर आदमी चाहता क्या है? जब तक हमारी जरूरत पूरी नहीं होती, हमें लगता है यही हमारा लक्ष्य है। लेकिन जब वह पूरी हो जाए तब पता चलता है कि कुछ मतलब नहीं निकला। फिर हम दूसरी चीज चाहने लगते हैं, तीसरी चाहने लगते हैं, चौथी, पांचवीं, छठवीं... फाइनली बिल्कुल ऊपर पहुंच गए, सब कुछ पा लिया जो जीवन में पाने योग्य था।

क्या गौतम बुद्ध के जीवन में सब कुछ नहीं था। उस जमाने के प्रसिद्ध सम्राट के बेटे थे। खूब धन दौलत थी, खूब राज्य था, खूब नाम था, सम्मान था, इज्जत थी। उनके पिता ने राज्य की सारी सुंदरियों को बुद्ध के हवाले कर दिया था, उनके हरम में छोड़ दिया था। किसी चीज की कमी न थी। जो इंसान पाना चाहता है वह जरूरत से ज्यादा उपलब्ध था। फिर क्यों बुद्ध एक दिन अपना महल छोड़कर चले जाते हैं? वो सब मिल जाए तब पता चलता है कि कुछ बात बन नहीं रही। मैं कुछ और चाहता हूं। जब तक नहीं मिले तब तक ऐसा लगता है कि इसमें सारे प्राण रखे हैं मेरे। यह मिल जाए तो बस सब मिल जाएगा।

समझो मैंने सम्राट की कहानी कही जो रेगिस्तान में प्यासा मर रहा है। क्या आप सोचते हो एक गिलास पानी उसको मिल जाएगा तो तृप्ति मिल जाएगी? हम सब तो दिन भर में पांच-छः गिलास पीते हैं कोई तृप्ति मिलती है क्या? एक गिलास और मिल जाएगा तो क्या हो जाएगा? कुछ नहीं हो जाएगा। लेकिन जब नहीं मिल रहा तो लगता है कि यही सब कुछ है। और मिल जाएगा तो पता चलेगा कुछ भी नहीं मिला। तो हमारे जिंदगी की कहानी संक्षिप्त में यह है कि जितनी हमारी जरूरतें हैं, जब तक वे पूरी नहीं हुईं तब तक हमें लगता है कि बहुत ही महत्वपूर्ण मुद्दा है। बस ऐसा हो जाएगा तो एकदम मजा आ जाएगा। असली मुश्किल तब खड़ी होती है जब वह मिल जाता है।

मैं सुबह-सुबह मॉर्निंग वॉक पर निकलता हूं मुरथल में। हम जहां रहते हैं वहां बहुत सारे ढाबे हैं। अक्सर उस रोड से मेरा जाना होता है। मैं देखता हूं कि ढाबों की जगह पर काफी कुत्ते पलते हैं। उनको बहुत भोजन मिल जाता है बचा-खुचा। बहुत कुत्तों की भीड़ है। कुत्तों की एक टेंडेंसी मैंने देखी कि कोई कार निकली या मोटरसाइकल या साइकल, उसके पीछे वह दौड़ता है। बहुत तेजी से दौड़ता है भौंकता हुआ। अगर कार निकल गई तो फिर थोड़ी देर में लौट कर आ जाता है। उसको ऐसा लगता है कि मैं जीत गया, भगा दिया इसको। मेरे इलाके में खबरदार कोई घुसा। कई बार मैंने देखा कि संयोग की बात समझो कोई व्यक्ति आ रहा है उस ढाबे पर नाश्ता करने, यह कुत्ता दौड़ा उसकी कार के पीछे। उस बेचारे को तो पता भी नहीं कि पीछे कुत्ता दौड़ रहा है। संयोग की बात कि उसने वहां कार खड़ी कर दी, उतर आया। अब यह कुत्ता मुश्किल में पड़ता है कि क्या करें? कार को क्या करोगे? कार को काटोगे, खाओगे? कुछ नहीं कर सकते। कुत्ता बड़ी लज्जित सी नजरों से यहां-वहां देखता है कोई देख तो नहीं रहा। धीरे से पूंछ दबा कर वापिस लौट आता है। बड़ी शर्मिंदगी महसूस होती कि फालतू में दौड़े।

हंसना मत बेचारे कुत्ते पर। आप खुद अपनी जिंदगी में देखो। जिन-जिन चीजों के

पीछे आप दौड़े अगर वे हाथ से निकल गईं तब आपको बुरा लगता है। जब वे प्राप्त हो जातीं हैं, तब हक्के-बक्के रह जाते हैं कि अब करें 1ंने अपनी प्रसिद्ध मनोविज्ञान की किताब को एक प्रश्न में समाप्त कर दिया कि मैं नहीं समझ पा रहा हूं, बहुत अध्ययन-मनन किया, बहुत लोगों के इंटरव्यू लिए... फिर आप चाहते क्या हो? उद्देश्य क्या है? मैं अब्राहम मैस्लो के सवाल का जवाब देना चाहता हूं। अब तो वह दुनिया में नहीं रहे। यह देह, दिल और दिमाग, ये सीढ़ियां थीं जिनपर चढ़कर हमें ऊपर एक मंजिल पर पहुंचना था। उसको नाम दो परमात्मा, चाहे कहो परम जीवन, अल्टीमेट, वह था इन सब का लक्ष्य। अगर वह ख्याल में नहीं आया तो सीढ़ियां तो अपने आपमें कोई मकसद नहीं रखतीं। वे तो साधन हैं किसी साध्य तक पहुंचने का। निश्चित रूप से भोजन चाहिए, सुरक्षा भी चाहिए, घर-गृहस्थी चाहिए, मकान चाहिए, कपड़ा चाहिए, दवा चाहिए सब कुछ चाहिए। मनोरंजन भी चाहिए, विविधता चाहिए, ज्ञान चाहिए, अध्ययन मनन चाहिए, हार्दिक लगाव चाहिए सब कुछ चाहिए। लेकिन ये सब किसी और चीज की तरफ सहयोगी हैं। निश्चित रूप से हमारे भीतर का हिडेन टैलेंट न खिल सकेगा अगर हमने यह इंतजाम न किए हों। समझो किसी व्यक्ति के भीतर बहुत अच्छा गायक छिपा हुआ है। किंतु उसके पास इतने भी पैसे नहीं हैं कि हारमोनियम खरीद सके, इतने भी पैसे नहीं हैं कि एक म्यूजिक टीचर से कुछ सीख सके। उसके भीतर की कला तो नहीं निखर पाएगी। बाहर का आयोजन तो करना ही होगा।

किसी के भीतर कुशल सितार वादक छिपा है, महीन सुरों का जिसके कान को ज्ञान है; लेकिन सितार खरीदने के पैसे नहीं हैं तो बात तो न बनेगी। तो निश्चित रूप से पैसा उपयोगी है किसी चीज के लिए। स्वास्थ्य उपयोगी है किसी चीज के लिए। स्वास्थ्य का अपने आप में कोई वैल्यू नहीं है। वह किसी अन्य चीज के लिए है। कुल मिलाकर हमारा यह सत्तर-अस्सी साल का जो छोटा सा जीवन जिसको हम जीवन कहते हैं यह पूरा का पूरा किसके लिए है? यह किसी परम जीवन को जानने के लिए है। जब तक उसे हम न जान लें, और वह हमारे भीतर ही छुपा हुआ है, वह हमारा चौथा तल है। यह देह, दिमाग, दिल, ये हमारे बाहर-बाहर की चीजें हैं। सबसे भीतर में हमारी चेतना है, कॉन्शियसनेस। जब हम उसे जान लेते हैं तब हमने अमृत जीवन को जाना, हमने शाश्वत जीवन को जाना, परम जीवन को जाना। हमने आत्मा को, परमात्मा को जाना। यह सब चीजों का लक्ष्य है। इसका स्वयं का कोई लक्ष्य नहीं है क्योंकि यह परम है, परम का मतलब ही है जिसके आगे अब और कुछ नहीं है।

तो प्यारे मित्रों, इन तीन तलों पर आपने भी खूब सफलताएं प्राप्त की होंगी। अब इसमें भी करेंगे। जरूर कीजिए। मेरी शुभकामनाएं। बस इतना याद रखना ये तीन चीजें देह, दिल और दिमाग, इनके तल पर आपने सब कुछ पा लिया, सब कुछ कर लिया, तो भी तृप्ति नहीं मिलेगी। एक चौथी चीज का और ख्याल बना रहे। तब ये तीनों चीजें उसकी सपोर्ट में, मदद पहुंचाती हैं। तब जाकर पूरी बात बनती है।

तो मैस्लो ने जहां अधूरी छोड़ी है बात कि मुझे नहीं पता ऐसा क्यों... आदमी क्या

चाहता है?... शायद आपने भी कभी न सोचा हो; आज सु–अवसर मिला है, सोच ही लें। यह जीवन किसी अमृत जीवन की तलाश में है। कुछ और हमें चाहिए तो ही जाकर बात बनेगी। अब भीतर की जरूरतें भी समझ लें। देह, दिल और दिमाग की आवश्यकता मैंने आपको बता दी। भीतर की आवश्यकता क्या है? वहां की आवश्यकता है ध्यान, मेडिटेशन। वहां की आवश्यकता है श्रद्धा, ट्रस्ट। वहां की आवश्यकता है भक्ति। वहां की आवश्यकता है मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण। हमारा बंधन क्या है? कामना हमारा बंधन है और कामना से मुक्त हो जाना मोक्ष है। वह हमारी परम स्वतंत्रता है। द अल्टिमेट फ्रीडम की अवस्था है। जब तक वह न मिल जाए हमारे प्राण तड़फते ही रहेंगे।

अब फिर से इस पूरी बात को मैं सिस्टमैटिकली जमाकर समझा रहा हूं। शरीर, मन और ह्रदय के तल पर हमारी कामनाएं हैं, जरूरतें हैं, उनको पूरा करने के लिए हम कुछ–कुछ करते हैं। ठीक। अब एक आखिरी जरूरत है, वह है बड़ी कॉन्ट्रडिक्ट्री, सुनने में बड़ी अटपटी लगती है, वह है कामना मुक्त हो जाने की कामना। मोक्ष का मतलब है कि जहां मेरे भीतर कोई कामना न हो। जो भी कामना है वह बंधन है और बंधन दुख देता है। बंधन का अपना दुख है। तब भीतर से एक बड़ी प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है कि क्या कोई ऐसा समय नहीं होगा जब मैं समस्त बंधनों से मुक्त हो जाऊं? मेरे भीतर कोई कामना, कोई वासना, कोई चाहत न बचे। ऐसी शुद्ध चेतना की अवस्था। उसी को हम कहते हैं मुक्ति या मोक्ष। ध्यान और भक्ति इसके साधन है। और तब हमें उपलब्ध होता है अकारण आनंद या परम आनंद।

शरीर के तल पर जो प्राप्त होता है उसका नाम है सुख–सुविधा। ह्रदय के तल पर जो प्राप्त होता है उसका नाम है खुशी, आह्लाद और मन के तल पर जो प्राप्त होता है उसका नाम है प्रसन्नता, प्रफुल्लता। चौथी बात मैं आपसे कह रहा हूं आत्मा के तल पर जो प्राप्त होता है उसका नाम है आनंद। और इसका कोई कारण नहीं होता। शुरुआत के तीन तलों पर हर चीज का कारण होता है। समझो यहां का एयरकंडिशंड हॉल है, टेंपरेचर अच्छा है तो अच्छा लग रहा है। अगर बहुत गरम हो जाए तो भी अच्छा नहीं लगेगा और ठंडा हो जाए तो भी अच्छा नहीं लगेगा। हमारे अच्छे लगने का एक कारण है। प्रथम तीन तलों पर हर चीज का कुछ कारण है। चौथे तल पर अकारण आनंद की अनुभूति है। कोई वजह नहीं है, आत्मा का स्वभाव ही आनंदमय होना है। शरीर का स्वभाव सुखपूर्ण होना नहीं है। शरीर में बीमारी आएगी, कष्ट होगा। अभी टेंपरेचर बढ़ जाए, गर्मी होने लगे, कष्ट हो जाएगा। भूख लग जाएगी थोड़ी देर में मेरी बातें सुनते–सुनते, कष्ट होने लगेगा, प्यास लग जाएगी कष्ट होने लगेगा। शरीर पर सुख है तो शरीर पर कष्ट भी है। पेन एंड प्लेजर। दोनों चलेंगे। ठीक वही बात ह्रदय के तल पर भी है। सिर्फ खुशी नहीं है गम भी है। और संग–साथ मिलेंगे, भारी–भारी से मिलेंगे दिन और रात की तरह। एक के बाद एक, एक के बाद एक आएगा। फिर दिन, फिर रात। फिर दिन, फिर रात। फिर सूर्योदय, फिर सूर्यास्त। खुशी आएगी फिर गम आएगा, फिर खुशी आएगी फिर गम आएगा। यही बात मन के तल पर लागू होती है; प्रसन्नता और खिन्नता बारी–बारी से आएंगे, जाएंगे। आएंगे, जाएंगे। क्योंकि मन

परिवर्तन चाहता है। जिस चीज से प्रसन्न हो जाता है उसी से थोड़ी देर में ऊब जाता है, उसी से फिर दुखी होने लगता है। बोर्डम पैदा हो जाती है।

तो तन के तल पर, मन के तल पर और हृदय के तल पर हर चीज का कारण है और वह परिवर्तित होता जाता है। इसीलिए उसको हम स्थाई नहीं मना सकते। कोई चीज स्थाई नहीं हो सकती। अभी मुझको लग रहा है मैं स्वस्थ हूं, लेकिन मैं जानता नहीं हूं शरीर में भीतर कौन सी बीमारी पनप रही है? उसके प्रगट होने में थोड़ा समय लगेगा। कुछ दिनों बाद पता चलेगा कि यह बीमारी आ गई। जब मैं सोच रहा था कि मैं स्वस्थ हूं, तब भी बीमारी अपना जाल फैला रही थी। तो शरीर, मन और हृदय के तल पर जिसको हम सुख, खुशी और प्रसन्नता कह रहे हैं वे टिक नहीं सकते। क्षणभंगुर ही होंगे, थोड़ी देर के लिए होंगे फिर विपरीत में चेंज हो जाएंगे। फिर बदल जाएंगे, फिर बदल जाएंगे। भीतर जो है आत्मा के तल पर वह शांति की और आनंद की परम दशा है। वह कभी नहीं बदलती। और इसलिए वहां पर फिर ऊब पैदा नहीं होती। वहां कोई परिवर्तन नहीं है। वहां जो है वह शाश्वत है। यहां तो कुछ भी शाश्वत नहीं है, शरीर के तल पर। सब चीजें मौत की तरफ जा रही हैं। याद रखना वह राजा की कहानी, घोड़े की कहानी। हम जो कुछ भी कर रहे हैं फाइनली हम वहीं पहुंच जाएंगे। सब चीजें बदल रही हैं, मौत की तरफ आगे बढ़ रही हैं। चौथी जगह है वह पाने योग्य है। जहां अकारण आनंद है और उसका विपरीत नहीं है। अन्य तीनों तलों पर विपरीत चीज मौजूद है। चौथे तल पर आनंद का विपरीत कुछ भी नहीं होता। वह सदानंद है, वह परमानंद है। तो प्यारे मित्रों, हमारे जीवन का लक्ष्य उस परम जीवन को पाना है।

गौतम बुद्ध के जीवन की एक घटना स्मरण आती है। वे अपने शिष्यों के संग बैठे हुए थे। एक नया-नया व्यक्ति आया और उसने किसी भिक्षु से पूछा कि आपकी उम्र कितनी है? उस भिक्षु ने कहा चार साल। वह आदमी हैरान हुआ, देखने में तो सत्तर-पचहत्तर साल का लग रहा है वृद्ध व्यक्ति है, सफेद दाढ़ी-बाल हो चुके हैं। कहता है चार साल! उन्होंने कहा आपको मेरा प्रश्न समझ में आया? सुनाई तो पड़ता है न? मैंने पूछा आपकी उम्र कितनी है। उसने कहा खूब अच्छे से समझ गया। मेरी वास्तविक उम्र चार साल है। जब मैं भगवान बुद्ध की शरण में आया, ध्यान करना सीखा, समाधि में डूबा और मैंने अपने भीतर उस परम तत्व को जाना, मैं उस दिन से अपनी जिंदगी को काउंट करता हूं। उसके पहले जो लंबा समय बीता पैंसठ साल का उसको अब मैं काउंट नहीं करता। वह जिंदगी नहीं थी, वह तो क्रमिक मृत्यु थी। ग्रेजुअल डेथ। असली जीवन तो उस दिन से शुरु हुआ जब मैं ध्यानस्थ हुआ, समाधिस्थ हुआ। इसलिए मैं उसी दिन से, उस दिन को मैं अपना जन्म दिन कहता हूं जब बुद्ध ने मुझे संन्यास दीक्षा दी। ठीक ही कहा उस वृद्ध व्यक्ति ने। उसके पहले हमारी जिंदगी केवल एक ग्रेजुअल डेथ है। अब जब कोई सवाल पूछता है इस ग्रेजुअल डेथ का क्या लक्ष्य है? इसका कोई उत्तर नहीं मिल सकता। उस अल्टीमेट लाइफ, उसकी तरफ आंखें उठाओ।

गौर से देखो तो सही, यह जिंदगी बड़ी प्यारी है!

फिलहाल इतना ही।

प्रश्न—01. विश्व में इतनी अशांति क्यों हैं?

ओशो शैलेंद्र जी– क्योंकि हम केवल बाहर की तीन सीढ़ियों पर अपनी जिंदगी जी रहे हैं। वहां तो शांति नहीं हो सकती। शांति तो हमारी अंतर्आत्मा में मौजूद है, लेकिन हम बहिर्मुखी हैं। हम अंतर्मुखी नहीं होते, हम ध्यान की अंतर्यात्रा नहीं करते तो शांति का एहसास नहीं होता। बाहर तो सदा–सदा से अशांति है। कई बार लोग मुझसे पूछते हैं कि आज के युग में इतनी अशांति क्यों है? ऐसा नहीं है, पहले के युग में भी ऐसा ही था। क्या आप सोचते हैं महाभारत जिस समय हुआ था कृष्ण के जमाने में लोग शांत थे? महाभारत कौन लड़ता? अशांत लोग रहे होंगे, महत्वाकांक्षी लोग रहे होंगे, दूसरे की धन–संपत्ति हड़पने वाले लोग रहे होंगे तभी तो।

आप क्या सोचते हो राम राज्य में शांति थी? कहां दूसरे की पत्नियों का हरण करके ले जाते थे। शांति तो नहीं हो सकती। ऐसा मत सोचो कि आज के युग में अशांति हो गई है। हां, शांति का उपाय समझो, शांति हमारे भीतर है। बाहर की हम सारी व्यवस्थाएं सुंदर कर लें, धन कमा लें, मकान बना लें, यह कर लें, वह कर लें, इज्जत पा लें, शांति नहीं हो सकती। सद्गुरु ओशो के प्रवचन में छोटी–छोटी कहानियां आती हैं जो मुझे बहुत प्यारी लगती हैं। उसमें से एक कहानी मैं आपसे कहना चाहूंगा और आपके सवाल का जवाब भी मिल जाएगा।

एक सूफी फकीर स्त्री हुई है, राबिया उसका नाम था। बड़ी गरीब महिला थी। एक संध्या अपने झोपड़े के बाहर सड़क पर कुछ खोज रही थी। कुछ राहगीर निकले। उन्होंने पूछा कि मां, क्या ढूंढ़ रही हो, कुछ मदद करें? उसने कहा कि हां बेटा, मेरी कपड़े सिलने के सुई गुम

गई है, खोजो। वे लोग भी खोजने लगे। शाम ढल रही थी, अंधेरा बढ़ता जा रहा था, एक आदमी ने कहा अगर आप एग्जैक्टली बताओ कहां गिरी है सुई तो खोजना आसान होगा, वरना अंधेरा हो रहा है, इतनी बड़ी सड़क पर हम सुई कैसे खोज पाएंगे? ठीक-ठीक जगह बताओ। राबिया कहने लगी कि यह न पूछो क्योंकि सुई तो भीतर कमरे में गिरी है! वे ठिठक कर खड़े हो गए; कहा कि तू भी पागल हो गई है बुढ़ापे में और हमको भी पागल बना रही है। यदि सुई भीतर गिरी है तो बाहर मिलेगी कैसे? उस फकीर स्त्री ने कहा कि मैं तो तुम्हीं लोगों की नकल कर रही हूं, तुम जिस शांति को और आनंद को खोज रहे हो दुनिया में, मुझे बताओ वह गुमा कहां था? गिरा कहां था? जहां खोया है वहीं मिलेगा।

शांति को आपने कहां खोया बताइए। आप नहीं बता पाएंगे। तो बाहर की चीजों से सुख मिलेगा, सुविधा मिलेगी, स्वास्थ्य मिलेगा, सुरक्षा मिलेगी, प्रेम मिलेगा, संबंध बनेंगे, दोस्ती बनेगी, मनोरंजन मिलेगा। बाहर की दुनिया से जो मिल सकता है वह मिलेगा। शांति को वहां खोज क्यों रहे हो? शांति तो भीतर है। वह ध्यान में मिलेगी और भक्ति में मिलेगी।

प्रश्न-02. आत्मा का स्वरूप क्या है?

ओशो शैलेंद्र जी- आत्मा का स्वरूप चैतन्यता है, कॉन्शियसनेस, जागरुकता, होश की क्षमता, जानने की क्षमता। द केपैसिटी टु नो। उसका कोई रूप नहीं है, कोई आकृति नहीं है, हम उसका चित्र नहीं बना सकते, किसी कैमरे में उसे कैद नहीं कर सकते, वह एक क्षमता है। जैसे आपसे पूछें कि प्रेम का क्या स्वरूप है? क्या चित्र बनाकर आप बता सकते हैं? क्या लैला और मजनूं के फोटोग्राफ लेकर उसमें पता चल जाएगा कि इनको प्रेम है कि नहीं है? नहीं, लैला और मजनूं का फोटोग्राफ क्या, पोस्टमार्टम भी कर दो तो भी उसमें से प्रेम नहीं निकलेगा। हां, लिवर मिलेगा, हड्डियां मिलेंगी, हृदय मिलेगा, प्रेम नहीं मिलेगा। क्या इसका मतलब है प्रेम नहीं होता? नहीं, हम सब जानते हैं प्रेम होता है, हम सब जानते हैं प्रसन्नता होती है। लेकिन क्या कोई काट-पीट करके प्रसन्नता को निकाला जा सकता है कि यह रही प्रसन्नता मिल गई। नहीं, किडनी मिलेगी, ब्लैडर मिलेगा, गॉल ब्लैडर मिलेगा, प्रसन्नता नहीं मिलेगी। सूक्ष्म मामला है।

ठीक ऐसे ही हमारी अंतर्आत्मा। वह जानने की क्षमता है। केपैसिटी टु नो। होश, अवेयरनेस। इसलिए जिस व्यक्ति को आत्मा की तरफ यात्रा करनी हो वह अपने जीवन में ध्यान को, अवेयरनेस को बढ़ाए। ज्यादा से ज्यादा होशपूर्वक जीए, इसी का नाम मेडिटेशन है।

प्रश्न-03. पाप और पुण्य की क्या परिभाषा है?

ओशो शैलेंद्र जी- जिस चीज को हम अत्यंत होशपूर्वक, प्रेमपूर्वक करते हैं उसका नाम है पुण्य। और इसका विपरीत जिस काम को करने के लिए बेहोशी जरूरी हो और प्रेमहीनता जरूरी हो उसका नाम है पाप। बड़ी सिंपल सी परिभाषा है यह सद्गुरु ओशो के द्वारा दी

गई। पुराने शास्त्रों में जाएंगे तो पता नहीं क्या-क्या वर्णन करेंगे, लंबी लिस्ट कि यह-यह करना दान-पुण्य है, यह-यह करना पाप है। ओशो ने बिल्कुल बात बदल दी। जिस चीज को अत्यंत प्रेमपूर्वक, संवेदनशील होकर, जागरूक होकर किया जाता है, उसका नाम है पुण्य। और इसका विपरीत, वह है पाप।

प्रश्न-04. मुझे ध्यान के समय बहुत नींद आती है क्या करूं?

ओशो शैलेंद्र जी- हे देवी, पहला काम तो यह करो कि रात को ठीक से सोओ। दूसरा काम यह करो कि सुबह उठ कर स्नान करके, ताजे कपड़े पहन कर, चाय-कॉफी आप पीती हैं तो वह पी लीजिए। कोई ठोस आहार मत लीजिए। पांच मिनट कुछ व्यायाम कर लीजिए, पांच मिनट प्राणायाम कर लीजिए। जब आपके भीतर ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है तो आप ज्यादा सजग और ध्यानपूर्ण हो सकेंगी, आसानी से। इन छोटी-छोटी बातों का ख्याल रखें। विशेषकर आज के युग में लोगों की नींद बहुत कम हो गई है। और जब नींद पूरी नहीं हुई तो जहां आप रिलैक्स होकर बैठे तुरंत नींद घेर लेगी। स्वाभाविक है। तो नींद की जरूरत पूरी तरह से तृप्त होनी चाहिए। आठ-नौ घंटे की नींद एक वयस्क व्यक्ति के लिए जरूरी है। उतना आप सोएं। और व्हाट्सऐप कम चलाएं, फेसबुक से परहेज करें।

आजकल नए प्रकार के उपवास इस प्रकार होने चाहिए कि मैं व्रत लेता हूं कि हर सोमवार को फेसबुक बंद रखूंगा। मंगलवार को व्हाट्सऐप नहीं देखूंगा। बुधवार को इंटरनेट का त्याग और शनिवार को पूर्ण इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स का त्याग। किसी गैजेट को हाथ भी नहीं लगाऊंगा। अब वे पुराने संयम वगैरह गए, उनकी कोई जरूरत नहीं। अब सबसे बड़ा संयम यह है ताकि आप चैन से सो सकें। अगर हम ठीक से सोएंगे तो ही हम ठीक से जाग सकेंगे। ध्यान यानी जागरण। इसकी भूमिका में गहरी नींद महत्वपूर्ण तत्व है।

प्रश्न-05. हम हमेशा इस बात का स्मरण कैसे रखें, जीवन के परम लक्ष्य का?

ओशो शैलेंद्र जी- एक बार कोई चीज आपको समझ में आ जाती है फिर स्मरण नहीं रखनी पड़ती। मैंने आपसे कहा, मेरी बात को आप मान मत लेना। आप स्वयं चिंतन-मनन करना, अपने भीतर टटोलना, अपनी जिंदगी के अनुभवों की कसौटी पर कसना, अन्य आसपास, निकट के लोग, जिन्हें आप जानते हैं, उनके जीवन का अध्ययन करना। जब आपके भीतर स्वयं यह निष्कर्ष आ जाएगा कि हमारे तथाकथित शारीरिक जीवन का, सत्तर-अस्सी साल की कहानी का कोई लक्ष्य नहीं हो सकता, यह तो स्वयं साधन है, इसका साध्य वह परम जीवन ही है, इस छोटे से जीवन में हम उस परम जीवन को, आत्मिक जीवन को जान लें, तो बात पूरी हो जाएगी। जिस दिन आपको

यह स्वयं दिख जाएगा अपनी आंखों से, उस दिन से कभी न भूलेंगे। दूसरे की बातों में नहीं आना। हो सकता है मैं झूठ बोल रहा हूं, हो सकता है मैं मजाक कर रहा हूं। और हो सकता है मैं सच भी बोल रहा हूं। लेकिन मैंने अपनी जिंदगी के अनुभव से जो जाना वह है, जरूरी तो नहीं कि आपके ऊपर वह लागू हो, हमेशा अपने विवेक से चलो। अपना सोच-विचार जारी रखो। किसी की बात पर भरोसा मत करना। भरोसा अपने भीतर के निर्णय का करना जो तुम्हारे भीतर से आता है। उसकी याद नहीं रखनी पड़ती, वह याद रहता है। सुनी-सुनाई बातों को, पढ़ी-लिखी बातों को याद करना पड़ता है। उनकी कोई कीमत भी नहीं। वे किसी काम नहीं आतीं।

तो मैं निवेदन करता हूं सभी मित्रों से कि मेरी बात को मान मत लेना, सोच-विचार करना। मैं समझूंगा कि मेरा यहां आना सफल हो गया। अगर आपके भीतर सोच-विचार उत्पन्न हो गया तब आप भटक नहीं सकते। आप अपना रास्ता खोज कर ही रहेंगे। मुश्किल केवल उन लोगों के साथ है जिनके जीवन में प्रश्न ही पैदा नहीं होता। वे कभी सोच-विचार नहीं करते। फिर वे एक यांत्रिक जीवन, जैसा सब जी रहे हैं, भीड़ जैसा जीवन जी रही है, वैसे ही जीते चले जाते हैं और एक दिन अचानक खतम हो जाते हैं। उनका जीवन निश्चित रूप से व्यर्थ जाता है। जिसके मन में सवाल उत्पन्न हो गया उसका तो व्यर्थ नहीं जा सकता। क्योंकि वह तो संभल-संभल कर अब एक-एक क्षण बिताएगा। उसने तो सार तत्व को जानने की दिशा में आंखें उठा लीं। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, वह पा कर ही रहेगा।

प्रश्न- 06. जीवन निर्वाह के लिए धन की आवश्यकता है, शरीर की जरूरतों के लिए और आत्मा के तल पर जाने के लिए भी ध्यान की जरूरत है। इन दोनों में बैलेंस कैसे बनाएं?

ओशो शैलेंद्र जी- बैलेंस बना ही हुआ है आपको बनाना नहीं है। बस समझ लें, हमें धन भी चाहिए और हमें ध्यान भी चाहिए। अकेले धन से भी काम नहीं चलेगा और अकेले ध्यान से भी काम नहीं चलेगा। सद्गुरु ओशो ने एक नई शिक्षा दी जिसको वे कहते हैं 'झोरबा द बुद्धा'। झोरबा प्रतीक है, ग्रीक उपन्यास का एक पात्र है वह, मटेरियलिस्टिक, सुविधावादी, भौतिकवादी, शारीरिक सुखों में जीने वाला। और बुद्ध प्रतीक हैं अध्यात्म के, शांति के, समाधि के, निर्वाण के, मुक्ति के। अकेले बुद्ध भी अधूरे हैं। माना कि उन्होंने भीतर महाशांति पा ली, लेकिन बाहर का जीवन तो अनेक कष्टों से घिरा हुआ है। भिखारी की तरह जी रहे हैं। जरूरी नहीं कि रोज भरपेट भोजन भी मिल जाए। जंगल में जी रहे हैं बिना सुविधाओं के। बड़ी परेशानी है, कोई सुरक्षा नहीं है। और वह जो मटेरियलिस्टिक व्यक्ति है वह सब सुख-सुविधाओं में, सुरक्षा में, स्वास्थ्य में, लंबी उम्र जी रहा है किंतु भीतर उसके शांति नहीं है। ये दोनों ही आधे-अधूरे और अपंग हैं। न तो हमें अकेला स्पीरिचुअलिस्ट होना है और न हमें अकेला

मटेरियलिस्ट होना है। इन दोनों के बीच में समन्वय खोजना है। हमें धन भी चाहिए, हमें ध्यान भी चाहिए। बस इसका ख्याल आ जाए और फिर हम दोनों दिशाओं में मेहनत करते हैं। इसमें भी अपना समय लगाना, उसमें भी अपना समय लगाना। तेईस घंटे अगर तुमने अपने जीवन की अन्य सुख–सुविधाओं को प्राप्त करने में व्यतीत किए हैं तो कम से कम एक घंटा अपने भीतर ध्यान में डूबने को समर्पित कर देना। बात बन जाएगी। संतुलन सध जाएगा।

प्रश्न–07. मेरा मन अशांत है, इसको शांत कैसे करूं?

ओशो शैलेंद्र जी– यह तो ऐसे हो गया जैसे कोई पूछे कि तूफान आया हुआ है, तूफ़ान को कैसे शांत करें? हम शांत तूफ़ान चाहते हैं। शांत तूफ़ान कभी आपने देखा? या तो शांति होती है या फिर तूफ़ान होता है। तूफ़ान का नहीं हो जाना ही शांति है। शांत तूफ़ान जैसी कोई चीज नहीं होती। हम गलत भाषा कहते हैं। हम कहते हैं कि तूफ़ान आया था, अब शांत हो गया। इसका क्या मतलब? तूफ़ान शांत हो गया? नहीं, हमको कहना चाहिए था तूफ़ान आया था, अब तूफ़ान नहीं है। इस उदाहरण से समझ लें। मन का मतलब ही है अशांति। शांत मन जैसी कोई चीज नहीं होती। हां, या तो मन होगा या मन नहीं होगा। यह संभव है कि हम ध्यान में डूब कर चेतना के भीतर अपने केंद्र में पहुंच जाएं। वहां मन नहीं है, हम मन से दूर निकल गए। ऐसा समझें अगर हम गोल घेरा बनाएं, एक बड़ा घेरा, वह हमारा शरीर है, उसके भीतर एक छोटा घेरा हमारा हृदय है, उसके और भीतर छोटा घेरा मन है और उसका केंद्र बिंदु हमारी अंतर्आत्मा है। अगर हम अंतर्आत्मा में पहुंचे, इन तीन चीजों से हम दूर निकल गए, भीतर पहुंच गए। हम उस जगह पहुंच गए जिसको कहते हैं अमनीय दशा। गुरुग्रंथ साहब में जिसे कहते हैं उन्मनी दशा। मन के पार। जापान के झेन फकीर उसको कहते हैं द स्टेट ऑफ नो माइंड। वहां मन नहीं है, वहां विचार नहीं है, वहां स्मृति नहीं है, वहां कल्पना नहीं है। वह भावातीत, निर्विचार अवस्था है। तो वह मन ही नहीं है। जहां विचार नहीं उसको मन कैसे कहेंगे? मन तो विचारों का जमघट है। विचार, विचार और विचार। उन्हीं का इकट्ठा नाम मन है। जहां विचार ही नहीं है वह तो मन ही नहीं रहा। तो याद रखना शांत तूफ़ान नहीं होता, तूफ़ान से हम दूर निकल जाएं, उस जगह पहुंच जाएं जहां शांति है, यह संभव है।

प्रश्न–08. जब ध्यान करता हूं तो मन यहां–वहां भागता है, क्या करूं?

ओशो शैलेंद्र जी– बिल्कुल सरल सा उपाय कीजिए। चुपचाप मन की भागदौड़ को देखिए। आप उसके द्रष्टा बन जाइए, साक्षी, जस्ट ए विटनेस। मन यहां–वहां डांवाडोल हो रहा है, भाग रहा है, एक विचार आया, दूसरा आया, तीसरा आया। आने दो, जाने दो। न बुलाना किसी को, न किसी को रोकना। चुपचाप देखो, एक नए तत्व का उदय हो गया– देखने वाला द्रष्टा। वह द्रष्टा ही तुम्हारी आत्मा है। इस प्रकार धीरे से तुम मन से दूर खिसक

गए, अपने चैतन्य में स्थित हो गए जहां चिर शांति है। तो मन के साथ झगड़ना नहीं है, उसको एकाग्र नहीं करना है। सद्‌गुरु ओशो जिस मेडिटेशन की बात करते हैं वह कॉन्सेंट्रेशन नहीं है। हां, अगर आपने कॉन्सेंट्रेशन साधने की कोशिश की कि मन को एकाग्र करेंगे, तब आप मुसीबत में फंसे। कॉन्सेंट्रेशन मत करना। मेडिटेशन यानी कॉन्सेंट्रेशन नहीं, चुपचाप देखना क्या हो रहा है। तब आप अपने आत्म स्वभाव में रम गए। आप मन से दूर निकल गए। वास्तव में इसी का नाम है ध्यान।

प्रश्न–09. एक मित्र ने पूछा है अकारण आनंद कैसे पाएंगे?

ओशो शैलेंद्र जी– अगर 'कैसे' से मिला फिर तो उसका कारण हो गया। प्रश्न पूछने के पहले जरा सोच तो लिया करें क्या पूछ रहे हैं? अकारण को कैसे पाएंगे? तो फिर आप जो क्रिया करेंगे वह उसका कारण बन जाएगा, तब वह मिलेगा। फिर तो वह अकारण नहीं रहा। हमारी चेतना का स्वभाव आनंदमय है। इसको हमें पाना नहीं है, जैसे हमने दुनिया में दूसरी चीजें पाईं। एक पोस्ट ग्रैजुएशन की डिग्री पाने के लिए पच्चीस साल मेहनत लगी तब जाकर वह डिग्री मिली। एक छोटी सी सैलरी पाने के लिए आप महीना भर मेहनत करते हैं तब एक महीने की सैलरी मिलती है। संसार में कुछ भी पाने के लिए हमें बहुत कुछ करना पड़ता है। उस क्रिया के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है। अपने जिंदगी भर के इस अनुभव के बाद कि कुछ करने से ही कुछ मिलता है, फिर जब हम ध्यान की बात सुनते हैं तो हम सोचने लगते हैं अच्छा! वहां क्या करने से प्राप्त होगा? हमारी पुरानी कंडिशनिंग कि हमेशा करने से ही मिलता है! यह बात सच है कि संसार में तो करने से मिलता है। तो आप चुनाव नहीं लड़ोगे तो ऐसा नहीं कि लोग आ जाएंगे आपके पास कि चलिए आपको राष्ट्रपति बना देते हैं। कोई नहीं बनाने वाला। भारी संघर्ष से गुजरो तब भी पता नहीं है कि बन पाओगे कि नहीं बन पाओगे। बिना संघर्ष के तो कभी बन ही नहीं सकते। संसार में तो कर–कर के बा–मुश्किल मिलता है।

लेकिन मैं आपको भीतर का रहस्य बता रहा हूं, वहां बिना किए मिला ही हुआ है। हमें कुछ पाना नहीं है। वह हमारा स्वभाव है, केवल हम उस तरफ उन्मुख हो जाएं बस। वह जो बहिर्मुखी होने की आदत हो गई है, घंटा भर के लिए प्रतिदिन अंतर्मुखी हो जाएं। बस कुछ प्राप्त नहीं करना है। इसलिए उसके लिए कोई श्रम भी नहीं करना पड़ेगा। वहां ऑलरेडी कुछ मौजूद है। कहते हैं भगवान बुद्ध को जब परमज्ञान हासिल हुआ, परम आनंद की अवस्था में पहुंच गए, किसी ने उनसे पूछा कि आपको क्या मिला? बुद्ध हंसने लगे। कहने लगे मिला कुछ भी नहीं, बल्कि काफी कुछ खो गया। उसने पूछा कि आपका मतलब? खो गया? बुद्ध ने कहा हां, मेरा दुख खो गया, मेरे गम खो गए, मेरी चिंताएं खो गईं, मेरा अहंकार खो गया, मेरी उदासी खो गई। उसने कहा मिला कुछ भी नहीं? बुद्ध ने कहा उसको मिला हुआ नहीं कह सकते वह तो पहले से ही था। शांति, आनंद... वह तो मेरा स्वभाव है।

मैं अंग्रेजी के दो शब्दों से आपको बात समझाना चाहूंगा। जैसे कोई वैज्ञानिक कुछ खोजबीन करता है तो हम हिंदी में एक ही शब्द यूज़ करते हैं खोज। अंग्रेजी में दो अलग–अलग शब्द हैं। एक है इंवेंशन और एक है डिस्कवरी। समझो जब साऊंड सिस्टम नहीं बना था, माइक्रोफोन नहीं बना था, जिस व्यक्ति ने बनाया उसने कुछ नया इन्वेंट किया। यह बिजली का बल्ब जिसने बनाया उसने एक नई चीज इन्वेंट की। इसके पहले बिजली का बल्ब नहीं था। न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का नियम खोजा। यह इंवेंशन नहीं है। गुरुत्वाकर्षण का नियम न्यूटन के बाप–दादे पैदा नहीं हुए थे, तब भी था और न्यूटन मर गया उसके बाद भी, आज भी है और सदा–सदा रहेगा। फिर न्यूटन ने क्या किया? न्यूटन ने डिस्कवर किया। इंवेंशन नहीं किया। यह न्यूटन ने बनाया नहीं है। यह तो प्रकृति का एक नियम था, पहले हम उसके बारे में जानते नहीं थे, तब भी वह था। न्यूटन ने उसे सिर्फ डिस्कवर किया। जैसे किसी मूर्ति के ऊपर एक कपड़ा ढंका है और फिर हम कहते हैं कि आज मूर्ति का अनावरण हुआ। कपड़ा हटा दिया उद्घाटन हो गया। अनावरण। आवरण हट गया।

तो खोज खोज दो प्रकार की है– इंवेंशन और डिस्कवरी। इस संदर्भ में अब समझिए भीतर जो शांति और आनंद का ज्ञान घटित होता है वह एक डिस्कवरी है। वह पहले से ही मौजूद है। हम अचानक उसके प्रति सचेत हो जाते हैं। हम यह नहीं कह सकते कि हमने कुछ प्राप्त कर लिया, हम अहंकारी हो गए और अभिमानी कि अरे मैंने आनंद जान लिया। नहीं, कोई आनंद को प्राप्त व्यक्ति ऐसा नहीं कहेगा। कहेगा कुछ पाया थोड़े ही है, वह तो पहले से ही था। मेरे भीतर भी, आपके भीतर भी, सबके भीतर है। कोई जाने या न जाने, वह है ही।

प्रश्न–10. आपकी सब बातें सुनीं, अच्छी लगीं, लेकिन धन से मोह इंसान क्यों करता है?

ओशो शैलेंद्र जी– क्योंकि धन की है कमी, चाहने वाले हैं बहुत। धन लिमिटेड है। अगर आपका मोहभंग हो जाएगा, आपकी जेब काट कर कोई न कोई ले जाएगा। धन छीना–झपटी है। मोह तो करना ही होगा, बचाना होगा। दुनिया की जितनी भी चीजें हैं वे हमने छीन–झपट कर प्राप्त की हैं। और कई लोगों की निगाहें उसी पर अटकी है। मैं भीतर के जिस परम धन की बात कर रहा हूं, ध्यान की, आनंद की वह संपदा अचूक है। मीरा बाई कहती है न–

पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु,
करि किरपा अपनायो।
आगे कहती है कि इसको चोर डकैत लूट नहीं सकते।
दिन–दिन बढ़त सवायो।

यह है परम धन। तो बाहर के धन पर बहुत भरोसा न करना। कब छिन जाए! अभी

सरकार कह दे कि दो हजार के नोट बंद। क्या करोगे? बस एक निर्णय और खतम। आपने जो हिसाब–किताब लगा रखे थे कि कितने इकट्ठे हो गए हैं, तंबाकू लपेट कर सिगरेट बना कर पीना और क्या? नहीं तो टॉयलेट पेपर की जगह यूज करना। उसकी अपने आप में कोई वैल्यू नहीं है। मैंने पहले कहा न आपसे कि धन एक साधन है। उससे हम कुछ और प्राप्त करते हैं, उसकी वैल्यू है। धन की अपने आप में कोई वैल्यू नहीं है, वह कोई साध्य नहीं है। लेकिन यह मोह स्वाभाविक है। बाहर के संसार की सारी चीजों के बारे में यह बात लागू होती है– मोह। दूसरे लोग छीनने की कोशिश में हैं। आपने भी किसी से छीना है। आप कोई धन लेकर पैदा नहीं हुए थे। आपने ही आगे प्राप्त किए हैं दूसरों से, अब दूसरे आपसे प्राप्त कर लेंगे। और यही बात अन्य सब चीजों के बारे में भी लागू होती है।

क्यों पति अपनी पत्नी के ऊपर मोहग्रस्त रहता है, ईर्ष्या करता है क्यों? सिर्फ तुम्हारी आंखें थोड़े ही हैं जो सौंदर्य देखती हैं। तुम्हारे पड़ोसी की आंखें भी अच्छी हैं। उसकी भी नजर पड़ती है सुंदरता पर। मोह स्वाभाविक है, पकड़ स्वाभाविक है। ईर्ष्या उत्पन्न होगी, बड़ी छीना–झपटी है। मैं आपके लिए दूसरी दुनिया की खबर लेकर आया हूं। यहां कोई छीना–झपटी नहीं है। मेरे आनंद का खजाना मेरे भीतर है, आपके आनंद का खजाना आपके भीतर है, प्रत्येक के भीतर। किसी को किसी से प्राप्त नहीं करना है। अपने भीतर ध्यान में डूबना है बस।

प्रश्न–11. संत–महात्मा कहते हैं कि जीवन स्वप्नवत है, माया जैसा है, फिर स्वप्न जीवन में से आत्म साक्षात्कार और सत्य कैसे प्राप्त हो सकता है?

ओशो शैलेंद्र जी– बड़ा दार्शनिक सवाल है दीपक जी का। पहले अच्छे से समझ लो। कह रहे हैं कि संत–महात्मा कहते हैं जीवन स्वप्नवत है, माया है। तो वे कह रहे हैं इस माया में से फिर आत्म साक्षात्कार और परम सत्य का ज्ञान कैसे होगा? झूठ में से झूठ ही निकलेगा न। झूठ में से सच कैसे निकलेगा? अगर माता–पिता असत्य हैं तो उनकी संतान सत्य कहां से हो जाएगी। वह भी असत्य ही होगी।

अब मेरी बात गौर से सुनिए दीपक जी। स्वप्न जरूर झूठ है, लेकिन स्वप्न का जो द्रष्टा है, देखने वाला, वह झूठ नहीं है। आप रात को सो गए हैं आप कुछ भी सपना देख रहे हैं, हो सकता है पूरी कहानी बिल्कुल झूठ हो। सारे पात्र झूठे, सारी घटनाएं झूठी, कुछ भी उसमें से नहीं है सच। लेकिन फिर भी आप तो हो! आप अपने होने से इंकार नहीं कर सकते। जो कहानी दिखाई दे रही है वह सब झूठ है, लेकिन देखने वाला तो सच है। इसलिए अध्यात्म की शिक्षा का जोर द्रष्टा पर है, साक्षी पर है। हो सकता है मैं सपना देख रहा हूं कि यहां मंच पर बैठ कर मैं भाषण दे रहा हूं और लुधियाना के इतने सारे मित्र सुन रहे हैं, अचानक अभी थोड़ी देर बाद मां अमृत प्रिया आएं और मुझे हिला कर कहें कि अरे! चाय नहीं पीनी क्या? मैं कहूंगा अरे! मैं तो सोच रहा था लुधियाना में प्रवचन दे रहा हूं। मैं कैसे आश्वस्त होऊं कि मैं

जो देख रहा हूं वह सच है। नहीं हो सकता। क्योंकि सपने में भी सब कुछ ऐसा ही नजर आता है। वह तो सपना जब टूटता है तब पता चलता है कि वह झूठ था। क्या कभी रात में पता चला सपना देखते हुए कि यह झूठ है। वह तो जागने पर ही पता चलता है।

ठीक ऐसे ही एक और आध्यात्मिक जागरण है, जहां हमारे सामान्य जागरण की अवस्था से बहुत ज्यादा उच्चतर तल की जागरूकता घटित होती है। और तब अचानक पता चलता है कि हम जो देख रहे थे वह स्वप्नवत था। तो संत–महात्माओं का यह कहना बिल्कुल ठीक है। जगत स्वप्नवत है, लेकिन यह बात उन्होंने परम जागरण की अवस्था में पहुंच कर जानी। स्वप्न में सब कुछ झूठ था केवल द्रष्टा झूठ न था। वह सच था। इसलिए द्रष्टा पर आ जाओ। एक और बात कह दूं। सत्य और सपने के बारे में भारत के मनीषियों ने, संतों ने जैसा कहा है, वे किस चीज को सत्य और किस चीज को झूठ कहते हैं। सत्य उसे कहते हैं जो पहले भी सच था, अभी भी है और बाद में भी होगा।

है भी सचु नानक होसी भी सचु।

यह सत्य की परिभाषा है जो था, है, होगा। बिगनिंगलेस एंड एंडलेस। अनादि और अनंत। और स्वप्न की क्या परिभाषा है? जो पहले नहीं था, फिर अचानक प्रगट हुआ और फिर अचानक गायब हो जाएगा। कल रात को जब आप सोए थे तब कोई सपना नहीं था। फिर नींद में अचानक एक कहानी चलनी शुरू हो गई और फिर अचानक सुबह आप जागे और सब गायब हो गया। तो स्वप्न की क्या परिभाषा है? जो पहले भी नहीं था, बाद में भी नहीं है। बीच में 'है' जैसा लग रहा था। जस्ट ऐन एपियरेंस। एक जादू जैसा। एक मैजिक ट्रिक। ऐक्चुअली माया का मतलब झूठ नहीं होता, माया का मतलब होता है मैजिक, जादुई। जरा सोचो, पहले नहीं था, बाद में नहीं है, बीच में हुआ। क्या यह जादू नहीं है? दो 'नहीं' के बीच में एक 'है' कैसे हो सकता है? जस्ट ऐन इल्यूजन, जस्ट ऐन एपियरेंस। इसको हम कहते हैं माया अथवा स्वप्न।

इस प्रकार से हमारा यह शरीर एक प्रकार से माया का हिस्सा है। एक दिन यह शरीर नहीं था, फिर जन्म हो गया, बाल्यावस्था आ गई, किशोरावस्था आ गई, युवावस्था आ गई, प्रौढ़ावस्था आ गई, बुढ़ापा आ गया और एक दिन यह समाप्त हो जाएगा। पहले भी नहीं था, बाद में भी नहीं है। इसको कैसे सच कहें? यह तो जादू का खेल है। ऐसे ही हमारे विचार हैं। आते रहते, जाते रहते। यह शरीर तो फिर लंबा चलता रहता है, सत्तर–अस्सी साल चलता है। विचार तो बिल्कुल ही थोड़ी देर के लिए। ठीक से देख भी नहीं पाते और वह चला गया, गायब हो गया। वैसे ही हमारे हृदय की भावनाएं हैं, हवा का झोंका खिड़की से आ गया। अच्छे से हम देख भी नहीं पाए गायब भी हो गया। क्या ऐसे ही क्रोध आपको नहीं आता? क्षण भर पहले आप ठीक–ठाक थे, अचानक किसी ने कुछ कह दिया, आग बबूला हो गए, क्रोध की भावना आ गई। कुछ मिनट बाद, कुछ घंटे बाद, एक दिन बाद, दो दिन बाद गायब हो गए। क्या ऐसे ही प्रेम भी नहीं आता? हवा का झोंका। अचानक किसी को देखा, प्रेम

भाव उमड़ आया। कसमें खा लीं कि सदा–सदा संग–साथ रहेंगे और तीन–चार दिन के बाद झोंका चला गया... अब क्या करो? इसको कहते हैं स्वप्न। पहले नहीं था, बाद में नहीं है, बीच में ऐसा लग रहा है कि है। बस वह लग रहा है। तो हमारे देह, दिल और दिमाग– इन तीनों तलों पर जो कुछ भी हो रहा है वह जादुई खेल है। कुछ भरोसा करने योग्य नहीं। किंतु वह जो चौथा तल है, जो इन तीनों को जान रहा है, वह वास्तव में है, वह सदा–सदा से है। उसी को मैंने शाश्वत जीवन या परम जीवन कहा है।

प्रश्न–12. जीवन में कुछ पल ऐसे आते हैं सब बहुत सुंदर लगता है, किंतु फिर भी विकार पीछा नहीं छोड़ते। उनसे पूर्ण मुक्ति कैसे मिले?

ओशो शैलेंद्र जी– अपने साक्षी भाव में रमो। विकार या तो मन के तल पर हैं या हृदय के तल पर हैं या शरीर के तल पर हैं। तुम्हारा होना इन तीनों से पार और दूर है। यू आर बियॉण्ड द थ्री। उस आत्मरमण की अवस्था में ज्यादा से ज्यादा जीना शुरू करो और तब तुम पाओगे सबसे दूर निकल गए। अब उनका स्पर्श तुम्हें नहीं होता।

महाराष्ट्र में एक संत एकनाथ हुए हैं। उनके पास एक युवक आता था और कहता था कि मैं हैरान होता हूं आप कितने शांत हैं, कितने आनंदित हैं, हमेशा आशीष ही देते हैं, कभी आपको क्रोध में नहीं देखा। आपके ऊपर किसी विकार का असर नहीं है। और एक मैं हूं बड़ा गुस्सैल, बड़ा झंझट, क्रोध, कलह में जीने वाला, घर–परिवार वालों से मेरा झगड़ा है, मोहल्ला पड़ोस से मेरा झगड़ा है। मेरी जिंदगी में कभी कोई चैन नहीं। संत एकनाथ उसे समझाते थे। किंतु वह फिर दो–चार दिन बाद आता कि आपकी बातें बड़ी अच्छी लगती हैं मगर परिणाम कुछ नहीं होता। मैं वैसे का वैसा हूं। संत एकनाथ ने एक दिन उसके हाथ पर नजर डाली और कहा कि अरे! तुम्हारी रेखा दिखाना जरा। फिर हाथ की रेखा देख कर कहा कि एक सप्ताह बाद तुम्हारी मृत्यु है। बस सात दिन हैं तुम्हारी जिंदगी में। अगले रविवार को शाम होते–होते तुम भी समाप्त हो जाओगे।

वह युवक जो अभी भला–चंगा आया था उठ कर खड़ा हुआ। ऐसा लगा बिल्कुल दुर्बल, सीढ़ी उतरते समय रेलिंग पकड़ कर उतरने लगा। संत एकनाथ ने कहा क्या हुआ? संभल कर चलो गिर न जाना। वह अपने घर पहुंचा, घर में जाकर उसने बताया कि एकनाथ ने ऐसा कहा है। ये मेरे आखिरी सात दिन हैं। उसकी पत्नी रोने लगी, उसके माता–पिता उदास हो गए, उनकी आंखों में आंसू आ गए। उसका पूरा परिवार दुखी हो गया। मोहल्ले पड़ोस में खबर पहुंच गई और लोग मिलने के लिए आने लगे, अंतिम दर्शन। आज–कल अंतिम दर्शन बड़ा अजीब हो गया है, व्हाट्सऐप में भी लिखा आता है लास्ट सीन। उसको हिंदी में अनुवाद करो तो आता है अंतिम दर्शन। एक–एक दिन बीतने लगा और उसकी भूख–प्यास भी खतम होने लगी। किसी चीज में कोई रुचि न रही उसकी। सात दिन के

बाद शाम होने के पहले ही संत एकनाथ आ गए और उन्होंने कहा कि मैं तुमसे पूछना चाहता हूं इन सात दिनों में किसी से झगड़ा हुआ? वह कहने लगा अब क्या झगड़ा करेंगे? अपने को यहां रहना ही नहीं है, जाने का इंतजार है। उसने कहा मैंने कोर्ट–कचहरी में दो–तीन मुकदमे चला रखे थे। एक अपने कजिन ब्रदर के ऊपर चला रखा था, एक पड़ोसी के ऊपर चला रखा था। मैंने वकील से कह कर वे भी विथड्रॉ कर लिये कि छोड़ो, जब हम नहीं रहेंगे दुनिया में, आखिर तब भी तो किसी न किसी के हाथ में जाएंगी ये चीजें। तो अभी चली जाएं क्या फर्क पड़ता है? उसने कहा कि मैंने कई लोगों से माफी भी मांगी जिनके प्रति मैंने कुछ गलत किया था और जिन लोगों ने मेरे साथ गलत किया था मैंने उनको क्षमा कर दिया। अब छोड़ो क्या फायदा।

संत एकनाथ ने पूछा और किसी विकार ने तुम्हारे मन को घेरा? वह युवक कहने लगा कहां के विकार? जहां मौत सामने खड़ी है वहां और क्या विकार आएगा? न लोभ आया, न लालच आया, न ईर्ष्या आई, न जलन, न किसी पर क्रोध आया... अब दुनिया जैसी चलती है चलती रहे, हमें क्या? चार दिन के मेहमान अब चले। संत एकनाथ ने कहा कि उठ कर खड़े हो जाओ, तेरी मौत नहीं आई यह मेरी एक तरकीब थी। तू बार–बार पूछता था कि विकार रहित कैसे जीते हैं? इतने शांत, इतने प्रसन्न? अब मैंने तुझे बता दिया। जिस व्यक्ति को अपनी मौत का ख्याल है उसके जीवन में कोई विकार नहीं आ सकते। उससे कुछ गलत हो ही नहीं सकता।

प्यारे मित्रों क्या फर्क पड़ता है सात दिन बाद आएगी मौत रविवार को, कि सात साल बाद आएगी सोमवार को। डज इट मैटर? याद रखो हम यहां सदा–सदा के लिए नहीं हैं। बस इतना जिसको ख्याल आ गया उसकी जिंदगी में कभी कुछ गलत नहीं होगा। कभी कोई पाप नहीं होगा। केवल पुण्य ही पुण्य बचेंगे। मृत्यु का स्मरण रखो।

प्रश्न–13. जपुजी साहब में एक पंक्ति आती है गुरु नानक देव जी की– पंचा का गुरु एक ध्यान। कृपया इसका अर्थ समझाएं।

ओशो शैलेंद्र जी– पांच से तात्पर्य हमारी पांच इंद्रियों से है। आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा। जिनके द्वारा हमें संसार का ज्ञान प्राप्त होता है। इन इंद्रियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त होता है लेकिन किसको? हमारे भीतर वह जो ध्यान की क्षमता है, द्रष्टा चैतन्य है उसको। तो केंद्र बिंदु में हमारी आत्मा है। उसके एक्सटेंशन पांच निकले हैं, पांच इंद्रियों से जुड़े हुए हैं। आंख से सूचना प्राप्त होती है, किसको? आत्मा को। कान से सूचना प्राप्त हुई, मैं कुछ सुनता हूं, किसको प्राप्त हुई? भीतर आत्मा को। वह जो ध्यान की, जागरूकता की क्षमता है, जानने की क्षमता, जिसको मैंने कहा द केपैसिटी टू नो। जिस क्षण किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है उसके कान तो अभी वैसे के वैसे हैं, उनमें तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन

अब सुनाई पड़ना तो बंद हो गया। क्यों? क्योंकि अब भीतर वह जानने वाला नहीं है। कान स्वयं थोड़े ही सुनते थे, कान के माध्यम से कोई सुनता था। आंख खुद नहीं देखती, आंख के द्वारा कोई देखता था जो भीतर था। अगर भीतर का वह तत्व विलीन हो गया तो आंख–कान स्वयं तो कुछ भी न जान सकेंगे।

ऐसा समझो एक मकान है उसमें पांच खिड़कियां हैं और भीतर मालिक है। मालिक एक खिड़की पर जाता है और वहां खूबसूरत दृश्य दिखाई देता है, दूर के पर्वत दिखाई दे रहे हैं, नदी दिखाई दे रही है। इसे समझो उसकी आंख है। एक दूसरी खिड़की पर जाता है, वहां पर पंछी आवाज कर रहे हैं, उनको सुनता है। समझो यह खिड़की उसका कान है। एक तीसरी खिड़की पर जाता है वहां नीचे फुलवारी है और फूलों की सुगंध आ रही है। समझो यह उसकी नाक है। ऐसी हमारी पांच खिड़कियां हैं। अगर यह मकान मालिक इस मकान से चला जाए तो क्या वह खिड़की फूलों की सुगंध को जानेगी? क्या वह खिड़की नदी और पहाड़ को देखेगी? क्या वह खिड़की पंछियों की आवाज सुन पाएगी? नहीं, खिड़की थोड़े ही सुनती थी। सुनने वाला भीतर था। हां, यह बात जरूर है कि बिना खिड़की के वह नहीं देख पाता, बिना खिड़की के न सुन पाता, बिना खिड़की के न सूंघ पाता। अगर खिड़की नहीं होतीं, सब तरफ दीवाल होतीं तो उसको कुछ भी सुनाई न देता, कुछ दिखाई न देता। पर याद रखना खिड़की स्वयं कुछ नहीं जानती। जानने वाला कोई और है।

पंचा का गुरु एक ध्यान

वह जो हमारे भीतर ध्यान की क्षमता है, केपैसिटी टू नो, वह जो जानने वाला है वह हम हैं और ये खिड़कियां शरीर की इन्द्रियां हैं। गुरु नानक देव जी इशारा कर रहे हैं अंतर्मुखी बनो। खिड़कियों में मत उलझे रहो। हम खिड़की के माध्यम से उस दृश्य में उलझ गए। आंखों से किसी की सुंदरता देखी और सुंदरता में उलझ गए। और जीभ के माध्यम से हमने कोई स्वाद जाना और हम स्वाद में उलझ गए। नहीं, याद करो कि किसको एहसास हो रहा है? तब तुम दृश्य से हटोगे और द्रष्टा पर आओगे। यह मकसद है गुरु नानक देव जी का।

पंचा का गुरु एक ध्यान

इन पांचों का गुरु वह है। असली सद्‌गुरु हमारे भीतर बैठा है, वह हमारी स्वयं की अंतर्आत्मा है। बाहर के व्यक्ति जिनको हम गुरु कहते हैं उनका एक ही काम है, वह हमारे भीतर के उस चैतन्य की तरफ, आत्मा की तरफ इशारा कर दें।

प्रश्न–14. लोग ईश्वर को डर के कारण पूजते हैं, क्या यह उचित है?

ओशो शैलेंद्र जी– आशीष जी, आपको उत्तर तो पता है तभी तो आप पूछ रहे हैं। भय से उत्पन्न हुआ भगवान और ऐसे भयभीत लोग जिस भगवान को पूज रहे हैं, जो कि उन्हीं की धारणा से उत्पन्न हुआ है। डर की वजह से। यह एक झूठी धारणा है, यह एक भ्रांति है, एक

अंधविश्वास है। इस पूजा से क्या लाभ होगा? कुछ भी नहीं। मैं पूजा करना नहीं सिखाता। सद्गुरु ओशो ध्यान करना सिखाते हैं, पूजा करना नहीं। किसी की पूजा नहीं करनी है। क्योंकि जो लोग पूजा कर रहे हैं वे दो कारणों से कर रहे हैं, या तो भय की वजह से या लोभ की वजह से। या तो वे डरे हुए हैं और सहारा खोज रहे हैं या किसी लालच में हैं, कुछ पाना चाहते हैं। कोई उनकी वासना की पूर्ति में मदद कर दे। यह पूजा कोई पूजा न हुई। इसमें तो हम भगवान का भी उपयोग कर रहे हैं अपनी मर्जी पूरी कराने के लिए। सच्चा आस्तिक कौन होता है? जो अपनी मर्जी पूरी करवाने पर उतारू नहीं है, जो कहता है हे प्रभु! जो तेरी मर्जी। राजी हूं तेरी रजा में। यह सच्चा आस्तिक हुआ। ऐसा व्यक्ति डरता नहीं, ऐसे व्यक्ति के अंदर कोई लोभ नहीं होता।

लेकिन ऐसी अवस्था तो ध्यान से उत्पन्न होती है, पूजा से नहीं। पूजा, प्रार्थना, अराधना ये आज तक किसी काम नहीं आए और न कभी आएंगे। इनसे सत्य का ज्ञान नहीं होता क्योंकि भगवान की यह धारणा स्वयं ही भय से उत्पन्न हुई है। यह तो धारणा ही झूठी है। हम मानते हैं कि कोई सर्वशक्तिमान ईश्वर है। क्यों मानते हैं? क्योंकि हम डरे हुए हैं। हम तो सर्वशक्तिमान नहीं हैं, हम तो सब कुछ नहीं कर सकते। अब हम मानना चाहते हैं, अंधविश्वास करना चाहते हैं कि कहीं कोई है सर्वशक्तिमान। वह हमारी रक्षा करेगा। तुम कितना ही मानते रहो रक्षा होने वाली नहीं।

वह हमारा घोड़ा, शाबाश! थपथपाओ उसकी पीठ। सही जगह ले जा रहा है। कोई रक्षा नहीं होने वाली। जो व्यक्ति सोच-विचारशील है वह ऐसी बचकानी चीजों में नहीं उलझता। कुछ लोगों की धारणा है कि परमात्मा परम मां, परम पिता के तुल्य है। क्योंकि बचपन में हमने माता-पिता का सहारा जाना फिर वे एक दिन विदा हो गए दुनिया से और हम अपने आपको अनाथ, बेसहारा महसूस करते हैं। अब जितना प्यार मां ने दिया था उतना दुनिया में कोई नहीं दे सकता। वह जो कमी खटक रही है, फिर हम एक कल्पना करते हैं कोई अदृश्य निराकार शक्ति की, हम उसे मां नाम दें, कि पिता नाम दें, कि परमात्मा कहें। हमारी चाहत क्या है? कि अभी भी हमारा कोई रक्षक है, कोई हमारी देखभाल कर रहा है, कोई हमारी चिंता कर रहा है।

यह हमारी चाहत है, यह सच्चाई नहीं है, इसमें सच्चाई नहीं है। इसलिए जैसे-जैसे शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ, विज्ञान विकसित हुआ, आधी से ज्यादा दुनिया अधार्मिक और नास्तिक हो गई। यह तो बहुत ही बुद्धिहीन किस्म के लोग हैं, बचकाने लोग। वे ऐसी धारणा में जी सकते हैं कि हमारा परमपिता हमारी देखभाल कर रहा है। इसके लिए चाइल्डिश ऐटिट्यूड, बचकानी बुद्धि चाहिए। एक तर्कशील व्यक्ति ऐसा नहीं सोच सकता। उसको दिखाई पड़ता है कि ऐसा तो नहीं है, दिस इज नॉट ए फैक्ट। इस पूजा, प्रार्थना में मेरी रुचि नहीं है, केवल मेडिटेशन की बात कर रहा हूं। जो तुम्हारे भीतर साक्षी चैतन्य है उसको जानो।

प्रश्न–15. मैं ओशो के बहुत से प्रवचन सुनता हूं, किंतु अभी तक वह बात नहीं हुई जो होनी चाहिए।

ओशो शैलेंद्र जी– आपका सवाल ऐसे है जैसे कोई पूछे कि मैंने बहुत सी रेसिपी और कुकरी बुक्स पढ़ी है, मुझे कंठस्थ भी हो गया। आप पूछ लीजिए कोई भी व्यंजन कैसे बनाना है? मैं आपको बता दूंगा। लेकिन मैं भूखा का भूखा ही हूं। भाईसाहब, किचन में जाकर कुछ काम करना होगा!

मैं आपको निमंत्रण देता हूं, यहां छः दिन का ध्यान समाधि शिविर होने वाला है, लुधियाना में भी और चंडीगढ़ में भी। और हरियाणा में अप्रैल में, मई में, जून में तीनों महीने छः–छः दिन का ध्यान शिविर है। आप उसकी डेट्स पता लगा लीजिए और आकर जरा कुकिंग करना सीखिए। तब पेट भरेगा। किताब अच्छी है, प्रवचन अच्छा है; लेकिन किसलिए? ताकि हम भोजन बना सकें। स्वादिष्ट भोजन कर सकें। अपने शरीर को पोषण दे सकें।

न्यूट्रिशन की किताब पढ़ कर क्या न्यूट्रिशन मिल जाएगा? नहीं, इसका यह मतलब नहीं है कि न्यूट्रिशन की किताब उपयोगी नहीं है। बहुत उपयोगी है। उसको जानकर हम पता लगाएंगे कि बैलेंस्ड डाइट क्यों होनी चाहिए और हमें क्या खाना चाहिए। हम अच्छे से खा सकें। किताब रटने से थोड़े ही बात बनेगी। किताब का सम्यक् उपयोग करो। आप कह रहे हैं कि बहुत दिनों से प्रवचन सुन रहा हूं। ओशो समझाते क्या हैं उसमें? कुल मिलाकर एक ही बात समझाते हैं कि ध्यान सीखो। आपने ध्यान आज तक किया नहीं। तो सुन क्या रहे हो? कुकिंग बुक में क्या लिखा है? यही तो लिखा है जाकर ऐसा–ऐसा खाना पकाओ।

दुनिया में दो प्रकार के नासमझ लोग हैं, समझ लो। एक नासमझ जो ग्रंथ और शास्त्र और प्रवचन सुनते–पढ़ते रहते हैं और कभी प्रयोग नहीं करते। और दूसरे नालायक वे जो बिना पढ़े–लिखे, बिना समझे सीधे किचन में घुस जाते हैं और पता नहीं क्या उल्टा–सीधा बना लाते हैं। दोनों गलत है।

मैंने सुना है एक आदमी खाना खाने बैठा, उसकी पत्नी ने लाकर सब्जी दी, उसने एक कौर सब्जी खाई, फिर उसने चिल्ला कर पूछा अरे भाग्यवान इस सब्जी का नाम क्या है? किचन में से पत्नी ने कहा– नाम से तुम्हें क्या लेना–देना, खाओ मजे से। उसने कहा लेना–देना कैसे नहीं? जब हम परलोक में पहुंचेंगे तो वहां भी तो पूछा जाएगा कि क्या खा कर मरे थे? कुछ लोग ऐसा खाना बनाते हैं। नहीं, हमें बीच का रास्ता अपनाना होगा।

दो प्रकार के लोग हैं– एक पाठक वर्ग जिनको पढ़ने में, सुनने में रुचि है। और दूसरे साधक वर्ग जो पढ़ाई–लिखाई पर ध्यान नहीं देते। सुनते–समझते नहीं, सीधा करने में जुट जाते हैं। दोनों से गलत हो जाता है। मध्य मार्ग अपनाना होगा। सुनो, समझो, विचार करो फिर उसका प्रयोग करो। जैसे एक वैज्ञानिक करता है। सोचता है, विचारता है, फिर प्रयोगशाला में जाता है, कुछ एक्सपेरिमेंट करता है, उस एक्सपेरिमेंट से फिर

कुछ निष्कर्ष हाथ में आते हैं। फिर कोई नई चीज बनती है। तुम बिना कुछ समझे केमिस्ट्री की लैबॉरेट्री में पहुंच गए और पता नहीं क्या, कौन सा केमिकल मिला कर विस्फोट कर लो! सावधान! ऐसी गलती मत करना। समझना, अपने सोच–विचार का उपयोग करना, सुनना, समझना, फिर प्रयोग करना।

तो आपको निमंत्रित करता हूं आप ध्यान समाधि में छः दिन का समय लेकर आइए और आपको विश्वास दिलाता हूं कि आप शांत अवस्था में द्रष्टा भाव में डूब पाएंगे और अपनी अंतर्आत्मा के भीतर वह जो परमात्मा का संगीत गूंज रहा है, 'एक ओंकार सतनाम' गुरु नानक देव जी जिसे कहते हैं, उस ओंकार की ध्वनि को सुन पाएंगे। सिर्फ छः दिन आपसे मांगता हूं, ज्यादा नहीं। शायद मेरी बात सुनकर आपको भरोसा नहीं आएगा कि संतों–महात्माओं ने पूरी जिंदगी लगा दी तब ओंकार सुनाई पड़ा। हमको छः दिन में कैसे सुनाई दे जाएगा। अरे यह तो जन्मों–जन्मों की साधना का फल होता है। आप गलती में हो। संत–महात्माओं ने जान लिया, वह बता गए कैसे सुनी जाती है ओंकार की ध्वनि। हमको फिर से प्रयोग थोड़े ही करना पड़ेगा।

एडिसन, जिसने बिजली का बल्ब बनाया, उसने तीन साल प्रयोग किए। उसको पता था कि किसी चीज से विद्युत करेंट प्रवाहित किया जाएगा तो वह प्रकाशित हो जाएगी। उसने क्या–क्या प्रयोग नहीं किए! सूअर की पूंछ के बाल से लेकर घास के पत्ते तक, उसमें इलेक्ट्रिक करेंट प्रवाहित किया कि शायद रोशनी देगा। तीन साल लगे। कम से कम दो हजार चीजों पर उसने प्रयोग किया तब जाकर टंगस्टन के वायर से रोशनी निकली। आप क्या सोचते हो? हम लोगों को फिर से शुरुआत करनी पड़ेगी सूअर के बाल से? यह सब को पता है कि जाकर बटन दबाया और बिजली जल गई। एडिसन को बहुत मेहनत करनी पड़ी थी।

जिन चीजों की खोजबीन हो चुकी है हमें दोबारा थोड़े ही खोज करनी पड़ती है। ठीक ऐसे ही आध्यात्मिक जगत में जिन लोगों ने ध्यान की टेक्नीक खोजी उन्हें हम सौ–सौ बार नमन करते हैं, कोटि–कोटि नमन। उन्होंने द्रष्टा भाव का सूत्र पकड़ा दिया। अब हमको थोड़े ही प्रयोग करने हैं। हमको तो सीधे द्रष्टा भाव में डूबना है। हम कोटि–कोटि नमन करते हैं उन संतों को जिन्होंने ओंकार का संगीत जाना और उन्होंने विधि बता दी। अब हमें थोड़े ही उतनी साधना करनी पड़ेगी। हम तो सीधा उस विधि का उपयोग करेंगे और ओंकार का संगीत सुनेंगे। हमारे तो मजे ही मजे हैं। अच्छा हुआ हम लोग बाद में पैदा हुए, कलयुग में। सारे साधु–महात्माओं को कितनी मेहनत करनी पड़ती थी घर–गृहस्थी त्यागो, जंगल में जाकर कुटिया में रहो, गुफा में शेर दहाड़ रहा है। अरे शेर–वेर की तो छोड़ो, मच्छर ही काट रहे हैं। कितनी परेशानी थी। और हम अपने घर में सुख–सुविधा में जीते हुए उसका मजा ले रहे हैं। उन लोगों ने मेहनत कर ली, उनको धन्यवाद दो, वे बता गए हैं सार सूत्र क्या है? तो बस जरा सा प्रयोग करना है, जरा सा समझना है और हफ्ते भर में बात बन जाएगी।

तो ऐसा नहीं सोचना कि जन्मों–जन्मों की साधना से ओंकार सुना जाता है तो छः दिन

में कैसे हो जाएगा। आने वाले भविष्य में और भी जल्दी हो जाएगा, छः घंटे में हो जाएगा। क्योंकि हम लोग जो खोजबीन कर रहे हैं, अब सब चीजें शॉर्ट–कट में मिलती जा रही हैं। तो आप सबको निमंत्रण देता हूं। आपने प्रवचन सुना ओशो का। यहां पर दो सी.डी. उपलब्ध हैं सद्गुरु ओशो ने जपुजी साहब पर बीस प्रवचन दिए हैं, उसका नाम है 'एक ओंकार सतनाम'। तो दस–दस प्रवचन की एक–एक एम.पी.थ्री. उपलब्ध है। कृपया जाते समय जरूर लेते जाइए और ध्यान से संबंधित एक सी.डी.। ये तीन सी.डी. मैं रिकमेंड करूंगा कि हर व्यक्ति सुने। और केवल सुने न, फिर आए, फिर ओंकार को सुने। बिल्कुल सरल है। न विद्वान होने की जरूरत है, न पहलवान होने की जरूरत है, न तपस्वी होने की जरूरत है, न दानी होने की जरूरत है। इन सब बातों का अध्यात्म से कोई लेना–देना नहीं है। कोई भी सामान्य व्यक्ति, चाहे वह छोटी उम्र का हो चाहे वृद्ध अवस्था में हो, चाहे वह स्त्री हो कि पुरुष हो, चाहे पढ़ा–लिखा हो कि अनपढ़ हो, वह अपनी अंतर्आत्मा में डूब कर उस ओंकार को जान सकता है जो सत्य है, परम सत्य है। उसी से जीवन में परम सौंदर्य प्रगट होता है।

वही है– सत्यं–शिवं–सुंदरं।

अपनी चर्चा समाप्त करता हूं, बहुत–बहुत धन्यवाद।

जय ओशो।

बहुआयामी जागरूकता

प्यारे मित्रों, बोध या सजगता, होश अथवा चैतन्यता एक विराट घटना है, किंतु उसके डिफ्रेंट ऐप्लीकेशन्स, अलग-अलग दिशाएं हो सकती हैं। समझने के लिए, मुख्य रूप से हम दो हिस्सों में बांट सकते हैं--पहला अंतर्मुखी और दूसरा बहिर्मुखी। प्रथम, अपनी खुद की तरफ और द्वितीय, दूसरों की तरफ। अब जो बहिर्मुखी होश है, उसमें हम कुछ टर्म्स यूज करेंगे, जो शायद आपने पहले न सुने हों। उनका अर्थ शब्द से ही समझ में आ जाएगा। एक को हम कहेंगे ऐक्टिव अवेयरनेस या सक्रिय होश। दूसरे को कहेंगे पैसिव अवेयरनेस या निष्क्रिय होश। समझो आप एक दीपक की लौ पर टकटकी लगा कर देख रहे हैं। आप ऐक्टिवली इंन्वॉल्ड हैं। सक्रिय होश। आप दीपक की लौ को जान रहे हैं। पूरी एकाग्रता से, आप ऐक्टिव हैं। सक्रियता में क्या होता है? हम कोई भी क्रिया करते-करते थक जाते हैं। निष्क्रियता में क्या होता है? हम थकते नहीं, हम पैसिव हैं, कुछ कर नहीं रहे।

उदाहरण के लिए समझो दो लोग आमने-सामने बैठे हैं। अभी मैं इसका प्रयोग भी आपको करवा दूंगा, तुरंत पकड़ में भी आ जाएगा। एक ढंग है कि मैं दूसरे व्यक्ति को देख रहा हूं ऐक्टिवली। ठीक है। और एक ढंग यह हो सकता है, उसमें भी आंखें खुली हैं, कि दूसरा व्यक्ति मुझे देख रहा है। मैं एक ऑब्जेक्ट हो गया उसका। अगर मैं इस भावना में आ जाऊं कि दूसरा व्यक्ति मुझे देख रहा है, तो मैं ऐक्टिव नहीं हूं, मैं पैसिव हो गया और इसमें थकान नहीं आएगी। तो इसको हम कहते हैं निष्क्रिय होश। होश तो है, लेकिन ऐक्टिवली इन्वॉल्ड नहीं हैं।

चलिए इसका प्रयोग करते हैं। दो–दो लोग जोड़ी बनाकर बैठिए, आमने–सामने एक दूसरे के। किसी को अपनी जगह से उठना पड़ेगा, अगर जोड़ी नहीं बन रही है तो। दो लोग आमने–सामने बैठिए एक दूसरे की तरफ मुंह करके। अब आप इस भाव में रहिए कि मैं अपने सामने वाले मित्र को देख रहा हूं। मैं देखने वाला हूं, सामने वाला व्यक्ति मेरे लिए दृश्य है, मैं उसका दर्शक हूं। अब आंखें बंद कर लीजिए, रिलैक्स। अब दूसरी बार में पुनः आंखें खोलिए और भीतर यह भाव रखिए कि मैं दृश्य हूं और मेरे सामने वाला मेरा मित्र मुझे देख रहा है। आप बिल्कुल रिलैक्स्ड रहिए, आप कुछ कर नहीं रहे हैं। सामने वाला देख रहा है, वह ऐक्टिव है।

आंखें बंद कर लीजिए। इस भाव को बरकरार रखिए कल्पना में कि मेरा मित्र मुझे देख रहा है। बंद आंखों से आप कल्पना करिए कि सामनेवाले की आंखें खुली हैं, वह आपको देख रहा है। आप कुछ भी नहीं कर रहे। यू जस्ट रिलैक्स, योर फ्रेंड इज वाचिंग यू। होश इसमें भी है, लेकिन यह निष्क्रिय होश है। आप कोई क्रिया नहीं कर रहे।

चलिए, अपनी जगह वापिस लौट आइए। मेरे ख्याल से सबको ख्याल में आ गया? मतलब एक में हम ऐक्टिव हैं और एक में हम पैसिव हैं।

अब ऐक्टिव जो होश है यह पुनः हम दो प्रकार का कह सकते हैं– एकाग्रता और चंचलता। चंचलता हम सब जानते हैं। जब हमारा चित्त यहाँ–वहाँ बार–बार विषय परिवर्तन कर रहा है। कभी यहां, कभी वहां। बंदर की तरह उछल–कूद। वह हुई चंचलता। और एकाग्रता? जहाँ हम एक विषय पर स्थिर हैं। दोनों में हमारा होश बहिर्मुखी है, ऐक्टिव है; लेकिन विषय अगर जल्दी–जल्दी बदल रहे हैं तो उसका नाम हो जाएगा चंचलता और विषय अगर ज्यादा–ज्यादा देर तक स्थिर है, टिका हुआ है, उसका नाम हो जाएगा एकाग्रता।

उदाहरण के लिए दीपक की लौ पर आप त्राटक कर रहे हैं। यह एकाग्रता हो गई, कॉन्संट्रेशन; कई लोग कॉन्संट्रेशन को मेडिटेशन समझते है, यहाँ भूल हो जाती है। मेडिटेशन की बात हम बाद में करेंगे। अभी फिलहाल इतना ही समझ लीजिए कॉन्संट्रेशन एक एक्सट्रोवर्ट कॉन्शसनेस का रूप है। अक्सर हम 'ध्यान' वर्ड का यूज़ करते हैं। हम किसी से कहते हैं ध्यानपूर्वक पढ़ना, ध्यानपूर्वक गाड़ी चलाना। यहाँ 'ध्यान' का मतलब मेडिटेशन नहीं है। यहां ध्यान का मतलब एकाग्रता है।

एक स्टूडेंट है, टीचर जो कह रहे हैं, बिल्कुल अच्छे से उनकी बात सुन रहा है, नोट्स बना रहा है। इसको हम कहेंगे दत्तचित्त होकर, एकाग्र होकर यह पढ़ाई कर रहा है। एक दूसरा स्टूडेंट है। उसने टीचर के एक–दो वाक्य सुने। फिर उसकी नजर बाहर पड़ी कि अरे! आम के पेड़ पर तो बहुत आम लगे हैं। फिर वह भविष्य की कल्पना करने लगा कि अभी छुट्टी के बाद बाहर निकलकर चढूंगा पेड़ पर और आम तोड़कर खाऊंगा। फिर अचानक टीचर के एक–दो वाक्य सुने। इस बीच में आधा मिनट गायब था वह। शिक्षक ने क्या कहा उसको नहीं पता। फिर दो–चार वाक्य सुने। फिर एक कुत्ता भौंका, उसकी

नजर पड़ी कि कुत्ता कहाँ से आ गया स्कूल की बाउंड्री में? वह कुत्ते के बारे में सोचने लगा कि उसके दोस्त के पास भी एक ऐसा ही कुत्ता था। उस कुत्ते ने एक बार इसको काटा था। अब कहां-से-कहाँ बात चली गई। शिक्षक की बात छूट ही गई बीच में, वे क्या पढ़ा रहे हैं। इसको हम कहेंगे चंचलता। यह जो सीखना चाह रहा था, वह सीख नहीं पाएगा अच्छे से, यह कार्यकुशल नहीं हो पाएगा।

अगर एक ड्राइवर एकाग्रचित्त होकर ड्राइविंग कर रहा है, तो अपनी मंजिल तक पहुंचने की संभावना है। अगर चंचलतापूर्वक गाड़ी चला रहा है, तो घर पहुंचने के बजाय अस्पताल या मरघट भी पहुंच सकता है और दूसरों को भी पहुंचा सकता है।

हमारी कार्यकुशलता, वर्क एफिशिएंसी कॉन्संट्रेशन पर निर्भर होती है। जितना कोई व्यक्ति एकाग्र होने की कला जानता है, वह अपने कार्य में उतना ही ज्यादा सफल हो जाता है। चंचलता और एकाग्रता, ये दो बातें हम सब जानते हैं। ये दोनों ऐक्टिव अवेयरनेस यानी बहिर्मुखी होश के प्रकार हुए। ठीक है। इसका अगर और सूक्ष्म विभाजन करना हो, तो हम और भी बांट सकते हैं। एकाग्रता के बाद तल्लीनता। उदाहरण के लिए, वह जो स्टूडेंट क्लास में टीचर का लेक्चर सुन रहा है, वह एकाग्र तो है, जरूरी नहीं कि तल्लीन भी हो, लवलीन हो। उसको पढ़ना है, अच्छे नंबर लाना है, मजबूरी है, इसलिए पढ़ रहा है, सुन रहा है, नोट्स भी बना रहा है। तल्लीनता का मतलब है जहाँ भावनात्मक रूप से किसी चीज में हम लवलीन हो गए।

एक पेंटर पेंटिंग बना रहा है, कि कोई संगीतकार वाद्य यंत्र बजा रहा है, एकांत में बैठा। इससे उसको कुछ मिलना नहीं है, यह कोई उद्देश्य से नहीं कर रहा है। जस्ट एंजॉइंग; मजे के लिए। करने में ही मजा आ रहा है। इसमें उसकी तल्लीनता सधती है, एकाग्रता से और आगे निकल गया वह। तल्लीन हो गया। समय भूल जाता है।

यह भी बहिर्मुखी है। पेंटिंग भी बाहर है, वह स्वर भी बाहर है, कविता लिख रहा है, वह कविता भी बाहर है। लेकिन उसके साथ भाव भी जुड़ा हुआ है। वह एकाग्रतापूर्वक ड्राइविंग करने वाला जरूरी नहीं कि भावनात्मक रूप से वहाँ बोधपूर्ण है। ड्यूटी निभा रहा है। एकाग्रतापूर्वक गाड़ी चलाना चाहिए इसलिए चला रहा है, वरना नौकरी चली जाएगी। उसका लगाव नहीं है, ड्यूटी है। है वह भी बहिर्मुखी होश।

तो आपने सक्रिय होश के तीन रूप जान लिए- एकाग्रता, चंचलता और तल्लीनता। चूंकि समय बहुत कम है, इसलिए हम विस्तार में नहीं जाएंगे। नहीं तो और छोटे-छोटे सब-डिविजन करके समझा सकते हैं।

अब अपनी तरफ लौटें... अंतर्मुखी होश। हम अपने आप को क्या समझते हैं? सबसे पहले तो हमारा शरीर है, शरीर की क्रियाएं हैं, फिर हमारा मन है, मन में चल रहे विचार हैं, फिर हमारा हृदय, भावनाओं का केंद्र, इमोशन्स आते-जाते हैं। जब हम कहते हैं अपने प्रति होश लाना, तो इसकी शुरूआत कहाँ से होगी? शरीर से ही होगी। सबसे

पहले हम अपनी शरीरिक क्रियाओं के प्रति बोधपूर्ण बनें। चल रहे हैं तो होशपूर्वक; चलना बेहोशी में भी हो सकता है, हम कुछ और सोच रहे हैं। जैसे एक मित्र ने कहा न! वर्तमान में होना। अगर हम वास्तव में चलते समय चलने की क्रिया में हैं, तो हम होशपूर्ण हैं। खाना खाते समय खाना, स्वाद ले रहे हैं तो स्वाद, अब यहां–वहां चित्त न भागे। फिर मन में भी हमारे काफी कुछ हो रहा है। विचार हैं, कल्पनाएं हैं, स्मृतियां हैं, चिंतन–मनन है। बाहर घटी घटनाओं के हमारे मन पर परिणाम घटित होते हैं। समझो किसी ने आकर अपमानजनक शब्द कह दिए और मेरे भीतर गुस्सा आ गया। हृदय में एक दुर्भावना आ गई। अगर मैं केवल उस व्यक्ति के प्रति सतर्क हूं जिसने मुझे क्रोध दिलाया, तो मैं बहिर्मुखी हो गया। अगर मुझे यह भी पता है कि मेरे अंदर गुस्सा आ गया है और मैं इस गुस्से को भी ऑब्जर्व कर रहा हूं, तो मैं अंतर्मुखी हुआ।

एक शब्द हम उपयोग करेंगे द्रष्टाभाव। द्रष्टाभाव का अर्थ है अपने मन, हृदय इत्यादि में होने वाली प्रतिक्रियाओं को, रिऐक्शन्स को ऑब्जर्व करना। अक्सर क्या होता है, जब मैं गुस्सा होता हूं दूसरों को पता चल जाता है कि मैं गुस्से में हूं, मुझे भर पता नहीं होता। मुझे अपने प्रति होश नहीं है। अगर यह होश वापिस लौटे, अपने ऊपर आने लगे, तब वस्तुतः मुझे पता चलेगा कि मैं क्या कर रहा हूं, क्यों कर रहा हूं, मेरे भीतर क्या हो रहा है, कैसे विचार आ रहे हैं। उनके प्रति हम सतर्क होना शुरू होंगे। निश्चित रूप से भीतर बहुत कंपन हो रहे हैं। कभी बाहर कोई घटना घटती है, कभी कुछ अनुकूल, कभी कुछ प्रतिकूल। कभी मैं खुश हो जाता हूं, कभी मैं उदास हो जाता हूं। लेकिन मैं अपनी खुशी को, उदासी को ऑब्जर्व ही नहीं करता।

द्रष्टाभाव का अर्थ है, अपने भीतर के इस अंतर्जगत के प्रति होश। अंतर्जगत, इनर वर्ल्ड; एक बाहरी दुनिया है जहाँ लोग हैं, अन्य प्राणी हैं, वस्तुएं हैं, विराट प्रकृति है। उसको हम कह रहे हैं बहिर्लोक, आउटर वर्ल्ड। और एक है हमारा इनर वर्ल्ड। हमारी मानसिक दुनिया। अक्सर हम अपने इनर वर्ल्ड के प्रति बिल्कुल भी सतर्क नहीं होते। अब साधना का प्रारंभ यहाँ से होता है। हम अपनी इनर वर्ल्ड के प्रति, अंतर्जगत के प्रति सावधान होना शुरू होते हैं। मुझे पता तो होना चाहिए, मेरे भीतर क्या हो रहा है? कोई घटना बेहोशी में न घटे। मैं अच्छे से बोधपूर्वक जानूं कि मेरे भीतर ऐसा हुआ। मैं जा रहा हूं सड़क पर और दो हजार रुपये का नोट पड़ा दिखाई दिया, तो सामान्यतः क्या होगा? हम बस नोट उठा लेंगे, जेब में रख लेंगे और चलते बनेंगे। काश मैं यह भी देख पाता कि मेरे भीतर लोभ की तरंग उठी, मेरे भीतर मेरी चेतना कंप गई। दो हजार के नोट का दृश्य बाहर है और भीतर मेरे एक कंपन हुआ, लालच उत्पन्न हुआ, उठा लूं। और शरीर झुका और उसने नोट उठा लिया।

सामान्यतः हम केवल बाहर के दृश्य के प्रति सचेत हैं बस। हम अपने भीतर की घटना को देख ही नहीं पाते कि लालच और लोभ उत्पन्न हुआ। क्रोध उत्पन्न हुआ, कि कामवासना पैदा हो गई, कि ईर्ष्या में जलभुन गए। इनर वर्ल्ड का हमें पता ही नहीं चलता।

साधना की शुरूआत यहाँ से होती है कि अब हम कोई चीज बेहोशी में नहीं होने देंगे। मेरे भीतर जो भी हो रहा है, मैं कम-से-कम उसको जानूं तो सही क्या हो रहा है। इसके लिए हम एक शब्द उपयोग करेंगे द्रष्टा। बाहर है दृश्य और जब हम बाहर देख रहे हैं, तो हम हो जाते हैं दर्शक। दृश्य और दर्शक का संबंध ही हमारा दुनिया से संबंध है।

जैसे टॉकीज में बैठकर हम फिल्म देख रहे हैं, हम दर्शक हैं और वह जो कहानी चल रही है, वह दृश्य है हमारे लिए। ऐसे ही सारी दुनिया हमारे लिए एक दृश्य है, एक रंगमंच, जहाँ नाटक चल रहा है और हम एक दर्शक की भांति अपने आप को महसूस करते हैं। साधना की शुरूआत होती है द्रष्टा बनने से। बाहर के चलचित्र के साथ-साथ भीतर का चलचित्र भी तो देखो, मन में क्या-क्या चल रहा, हृदय में क्या चल रहा है, कैसी तरंगें, कैसे कंपन उठते हैं, कैसे हम डोल जाते हैं, कैसे हम भुलावे में आ जाते हैं। इसके प्रति सतर्क होना शुरू करो। तो यह भी बोध का एक रूप हुआ। होश अब भीतर की तरफ जा रहा है। अपने तन, मन, हृदय के प्रति सजग होना। इसके बाद जब हम भीतर और-और सजग होने लगते हैं, तो हमारी गहराई बढ़ने लगती है।

प्यारे मित्रों, इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है। लेकिन यह केवल एक अवसर है। इसे सजगता से ओत-प्रोत कर लो तो सुअवसर सिद्ध हो जाती है। फिर अहोभाव से भर जाती है, धन्य-धन्य हो जाती है।

आज की चर्चा को यहीं विराम देते हैं। धन्यवाद। जय ओशो।

आत्मज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान

प्यारे मित्रों, आत्मा का, खुद के होने का एहसास अर्थात् स्व–बोध तो सरलता से हो जाता है। वह शरीर के कर्मों की, हृदय की भावनाओं की और मन के विचारों की साक्षी है। फिर परमात्मा का अनुभव कैसे होता है? इसे जानने के पूर्व एक बात यह समझ लीजिए कि हम सब साधक–साधिकाएं भिन्न–भिन्न प्रकार के हैं। किसी के लिए आत्मज्ञान सरल है, किसी के लिए प्रभुज्ञान सरल है। जो अंतर्मुखी किस्म के लोग हैं, उन्हें अपने भीतर समाधि में डूबना, ध्यान में डूबना आसान है। कुछ लोग बहिर्मुखी प्रवृत्ति के हैं और उनके लिए सारे जगत में उस चैतन्यता का एहसास करना सरल है।

जो लोग ध्यान से शुरुआत करते हैं, जैसे आपमें से अधिकतर लोग जो **ओशो फ्रेगरेंस** में आए हैं, वे ध्यान करने ही आए थे। आपमें से अधिकांश लोग अंतर्मुखी प्रवृत्ति के हैं। आपके लिए साक्षीत्व का एहसास सरल होगा। क्योंकि आप पहले ही चुनकर आए हैं। दुनिया में इतने प्रकार की साधनाएं चल रही थीं, आपने खास ध्यान वाली चुनी। इससे पता चलता है कि आपकी प्रवृत्ति क्या है? अधिकांश लोगों के लिए साक्षीत्व में डूबना, आत्मा के रूप में अपने होने का एहसास करना सुगम होगा।

इसकी दूसरी अति है भक्त किस्म के लोग। जो अपने भीतर नहीं डूबते, जो बाहर सारे जगत में चैतन्यता का एहसास कर पाते हैं आसानी से। वे लोग परमात्मवादी होंगे। ध्यान करने वाला आत्मवादी होगा। पहले इस फर्क को समझ लें। यह प्रवृत्ति हमारी जन्मजात है, इसको हम चेंज नहीं कर सकते। अतीत में देखें, भगवान बुद्ध हुए, भगवान महावीर हुए, महर्षि पतंजलि हुए। ये लोग शुद्ध आत्मवादी। यहाँ तक कि इन्होंने परमात्मा को इंकार ही कर दिया। अनीश्वरवाद जिसको कहते हैं। बुद्ध ने तो उस सूची में डाल दिया ईश्वर को कि

इससे संबंधित कोई सवाल पूछना ही मत। व्यर्थ अपना समय खराब मत करो, मेरा भी मत करो। इस संबंध में कुछ भी नहीं कहूंगा। महावीर का वचन है– 'आत्मा ही परमात्मा है।' परमात्मा की फिकर छोड़ो, अपने भीतर डूबो, चैतन्य को साधो।

यह एक प्रकार है, जिनको हम ध्यानी कहते हैं। श्रमण संस्कृति में बुद्ध और महावीर को गिना जाता है। अपने श्रम से हम साधना करेंगे, अपने भीतर डुबकी मारेंगे, साक्षी बनेंगे, आत्मज्ञान हासिल करेंगे। ईश्वर की इसमें कहीं चर्चा ही नहीं आती। उससे कुछ लेना–देना ही नहीं है। दूसरे हैं भक्त किस्म के लोग, जो आत्मा की बात नहीं करते। वे कहते हैं परमात्मा ही सबकुछ है। वे ध्यान में ही नहीं डूबते, वे प्रकृति के प्रेम में, प्रभु के प्रेम में मस्ती मनाते हैं, आनंदित होते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, झूमते हैं। ध्यानस्थ होना, स्वयं में डूबना उन्हें नहीं भाता। वे दूसरी प्रवृत्ति के लोग हैं। चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई इनकी जीवनी देखो। यह सोचना भी कठिन है कि आंखें बंद करके पेड़ के नीचे मीराबाई बैठी हों। यह कल्पना करना भी मुश्किल है!

बुद्ध के बारे में कल्पना करना भी मुश्किल है कि इकतारा हाथ में लेकर बजा रहे हों, गा रहे हों। ये दो अतियां हैं– महावीर और मीरा। निश्चित रूप से जिस मार्ग से गए हैं, अंतिम परिणाम उसी के अनुसार घटेगा। जो ध्यान के मार्ग से गए, उन्हें आत्मा का ज्ञान होगा। इसलिए ध्यानमार्गी ईश्वर की धारणा के विरोधी हो जाएंगे। वे कहेंगे व्यर्थ की बातों में न पड़ो, असली बात स्वयं अपने आप को जानना है। जानने वाले को जानना है।

महर्षि पतंजलि करीब–करीब बुद्ध और महावीर से ही सहमत हैं। योग शास्त्र भी श्रम का मार्ग है। अपनी मेहनत से पाना है। हां, बीच में एक जगह उल्लेख करते हैं वे। पतंजलि योग सूत्र में सिर्फ एक लाइन आती है ईश्वर के बारे में कि ईश्वर के प्रति समर्पण भी एक उपाय है ध्यानस्थ होने का।

याद रखना, असली उद्देश्य क्या है? ध्यानस्थ होना। द्रष्टा में डूबना। ईश्वर समर्पण भी एक उपाय है। वन ऑफ द वेज़। कुछ लोग हैं जो ईश्वर की धारणा में डूबे हैं। चलो उसी का उपयोग कर लें। समर्पित हो जाएं। असली भाव है तथाता में स्थित होकर ध्यान में डूबना। ईश्वर के प्रति अगर हम राजीपन से भर जाएं, हमारा संघर्ष न हो अस्तित्व से, तो हम आसानी से ध्यानस्थ हो पाएंगे।

देखना किस विधि से उन्होंने ईश्वर का भी उपयोग कर लिया ध्यानस्थ होने के लिए। ईश्वर के प्रति समर्पण। यह हमें रिलैक्स कर देगा। उस शांत मनोवृत्ति वाली अवस्था में जागरूक होना अत्यंत सरल है। लक्ष्य उनका क्या है? शांत सजगता में डूबना। 'भी' शब्द जुड़ा है कि 'ईश्वर भी' ईश्वर के प्रति समर्पण भी एक रास्ता है। मतलब अन्य रास्ते जो पूरे योग शास्त्र में समझाए हैं, वे तो असली रास्ते हैं। एक टिप्पणी है छोटी–सी। यह भी एक रास्ता हो सकता है। बड़ी होशियारी से उन्होंने ईश्वर को इंकार कर दिया। एक छोटा मार्ग उन्होंने बताया कि यह भी संभव है, धारणा का भी उपयोग किया जा सकता है। क्योंकि

धारणा, ध्यान, समाधि जब वे समझा रहे हैं वहाँ पर आता है। यह वाली धारणा भी काम की है। अगर तुम ऐसे ही शांत हो सको, ध्यानस्थ हो सको तो बहुत सुंदर। लेकिन अगर तुम्हारे मन में चिंताएं पकड़े रहती हैं, भविष्य की योजनाएं चलती रहती हैं, किसी चीज से संघर्ष चलता रहता है, अगर ईश्वर की धारणा है तुम्हारे मन में उसका उपयोग कर लो। ईश्वर के प्रति समर्पण। हे प्रभु! जो तेरी मर्जी। तुम रिलैक्स हो जाओगे। भविष्य की चिंताएं खो जाएंगी, विचार खो जाएंगे और निर्विचार जागरूकता में आसानी से प्रतिष्ठित हो जाओगे।

अतीत में ये दो प्रकार के मार्ग रहे हैं– बिल्कुल भिन्न–भिन्न। पिछली कुछ सदियों से एक नया प्रयोग किया जा रहा है... और वह है दोनों के समन्वय का। इसकी शुरुआत हम मान सकते हैं करीब सात सौ साल पहले कबीर साहब के साथ। कबीर साहब पर लेबल लगाना मुश्किल है। उनकी सारी शिक्षाओं को आप देखो, तो कहीं–कहीं बुद्ध जैसी बातें उनसे निकलती हैं और कहीं–कहीं भक्त जैसी। एक नया समन्वय। प्रज्ञा की प्रखरता भी उनमें है और भक्त का आह्लाद भी है। शून्य गगन की भी चर्चा करते हैं बुद्ध के समान। 'पीवत राम रस लगी खुमारी' भी कहते हैं।

कबीर के बाद फिर गुरु नानक देव जी। यह दूसरे उदाहरण कहे जा सकते हैं, जो समन्वय हैं। इनको हम न तो एग्जैक्टली भक्त कह सकते हैं और न एग्जैक्टली ध्यानस्थ कह सकते हैं। बीच में हैं या कह लो दोनों चीजें इनमें हमें बराबर से देखने को मिलती हैं। यह एक अद्भुत प्रयोग रहा। ये तीसरे प्रकार के लोग हैं।

दो तो एक्सट्रीम हो गए महावीर जैसे और मीरा जैसे। लेकिन कुछ बीच में और अद्भुत लोग हुए जिनमें दोनों के गुण हमें नजर आते हैं। वे इस तरफ भी जा सकते हैं, उस तरफ भी जा सकते हैं। ये ज्यादा संपूर्ण हुए। बुद्ध कितने भी प्यारे हों, थोड़ा तो अधूरापन लगता है। कुछ तो रूखा–सूखापन है। मरुस्थल का मार्ग है। सुनसान, वीरान। मीरा का सौंदर्य निराला है; फिर भी कुछ अधूरापन है। मस्ती है, शांति की कुछ कमी है। बुद्ध में शांति अपने शिखर पर है, मस्ती की कमी है। क्या ऐसा नहीं हो सकता मध्य का मार्ग? कहीं बीच में जंगल पड़े, उपवन पड़, फिर कुछ सूखा रेगिस्तान भी पड़े। एकांत का भी मजा हो, प्रकृति के साथ उत्सव भी मनाएं। दोनों चीजें हो सकें।

अतीत में हम देखते हैं, पुराने अतीत में, तो दो मार्ग बिल्कुल भिन्न–भिन्न थे। योग का मार्ग, भक्ति का मार्ग। दूसरे शब्दों में कह लो संकल्प का मार्ग, समर्पण का मार्ग। अन्य शब्दावली में कह लो श्रम का मार्ग। अपनी मेहनत करनी होगी, साधना करनी होगी और दूसरा कृपा का मार्ग। प्रभु की कृपा। हमारे कुछ करने का सवाल नहीं। ये दो मार्ग स्पष्ट नजर आते हैं। तीसरा मार्ग जिसका विकास पिछले छह सौ, सात सौ साल में हुआ है जिसे हम देखते हैं सिख गुरु साहिबानों में और अन्य संतों की वाणी जो गुरु ग्रंथ साहब में है, उनकी जीवनी में। उनमें दोनों रूप नजर आते हैं। बात धीरे–धीरे और आगे बढ़ी। योग और भक्ति के समन्वय के साथ–साथ, संसार और अध्यात्म का समन्वय भी दिखाई देने लगा।

गुरु गोविंद सिंह को क्या कहोगे? संत कहोगे कि सैनिक कहोगे? ऐसा कॉम्बिनेशन पहले कभी नहीं हुआ था। साधु सिर्फ साधु थे। सैनिक सिर्फ सैनिक थे। यह आदमी साधु भी है, सैनिक भी है। जरूरत के मुताबिक परिवार के लिए, समाज के लिए, देश के लिए जो कर्तव्य है, वह भी करने को तैयार है। अपने कर्तव्यों से पलायन नहीं किया। यह एक नया ही रूप देखने को मिला। गुरु ग्रंथ साहब में जितने भी संतों की वाणी संकलित की गई है, ये सारे लोग पारिवारिक जिम्मेवारियां छोड़कर भागने वाले नहीं हैं। एक नया दृष्टिकोण उदय हो रहा था धीरे-धीरे। रामकृष्ण परमहंस में भी फिर वहीं देखने को मिलता है। समझो उन्नीसवीं सदी में रामकृष्ण परमहंस जैसे लोग हुए। विवाह भी किया, गृहस्थी भी बसाई, नौकरी भी करते हैं, समाधिस्थ हैं। कहीं छोड़कर कुछ भागे नहीं। सद्गुरु ओशो के आते-आते बीसवीं सदी में यह बात बहुत स्पष्ट रूप से समझ में आ गई- संसार और संन्यास का समन्वय। ज़ोरबा-द-बुद्धा संक्षिप्त फार्मूला हो गया। हमें यह भी जीना है, यह भी जीना है। किसी चीज का त्याग नहीं और बुद्धा में भी फिर बात जुड़ गई। अकेले बुद्ध भी नहीं हैं। उसको हम कह लें महावीर और मीरा का समन्वय। एक नया ही रूप। एकांगी नहीं।

सद्गुरु ओशो कहते हैं मेरे संन्यासी रूपी पंछी के दो पंख हैं- होश और प्रेम। तुम मदमस्त भी होओ और ध्यानस्थ भी होओ। कभी यह, कभी वह। एक तीसरा वर्ग जो मध्य में है, उनके लिए एक नया रास्ता होगा। उनको चुनाव नहीं करना है। मैं कुछ उदाहरण से समझाऊं आपको। कभी-कभी आपको ओशो के प्रवचन में सुनने को मिलेगा। किसी ने पूछा कि मेरा मार्ग कौन-सा है? ओशो ने उसे स्पष्ट रूप से बताया कि तुम्हें ध्यानस्थ होना है। ध्यान तुम्हारा मार्ग है। कभी-कभी किसी को कहा है कि तुम भक्ति में डूबो, समर्पणभाव में जियो, सब स्वीकार लो। किसी के लिए कहा है कि चुनाव मत करो। यह तीसरा। अलग-अलग लोगों के लिए उन्होंने अलग-अलग बातें कहीं।

आज दर्शन डायरी पढ़ेंगे, आप उसमें बड़े भिन्न उत्तर पाएंगे। किसी को कहा है तुम ईश्वर इत्यादि को भूल जाओ। साक्षी साधो बस। किसी के लिए कहा है कि भक्ति में डूबो। परमात्मा की उपस्थिति का मजा लो। प्रकृति का घूंघट उठाओ और परमात्मा को देखो और उत्सव मनाओ। किसी के लिए कहा है कि चुनाव की कोई जरूरत नहीं। सहज रूप से जो हो रहा है होने दो। दोनों ही पंखों का इकट्ठा इस्तेमाल करो। इसका मतलब अलग-अलग प्रकार के लोगों के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग होंगे। उदाहरण के लिए यहाँ **ओशो फ्रेगरेंस** में हमने जो आयोजन किया है, ध्यान समाधि से निर्वाण समाधि तक चौदह प्रोग्राम मुख्य रूप से आत्मस्थ होने के हैं। स्वयं में डुबकी मारो। वहाँ हम परमात्मा को भूल भी सकते हैं। सुमिरन के कार्यक्रम मुख्य रूप से प्रभु में स्थित होने के लिए हैं। चाहे भिन्न-भिन्न नामकरण हम करें- ब्रह्म कहें, गोविंद कहें, अथवा कुछ और। सिर्फ भीतर ही न डूबो... बाहर भी आओ। निश्चित रूप से मैं आपकी कठिनाई समझ सकता हूं। जिनको भीतर रस आने लगा उनका फिर बाहर आने का मन नहीं होता। जरूरत क्या है, क्यों आएं? भीतर बहुत मजे में हैं।

मैं आपको दो उदाहरण देकर समझाऊंगा ओशो के प्रवचन से। ओशो की एक प्रवचनमाला है 'द सर्च', खोज। यह प्रवचनमाला किन्हीं सूत्रों पर या कथाओं पर आधारित नहीं है; बल्कि एक चित्रावली पर आधारित है। झेन पेंटिंग्स हैं। प्रतीक रूप में। एक आदमी है, बैल पर सवार होकर बाजार में से गुजर रहा है। फिर उसका बैल कहीं खो गया। यह पेंटिंग है। एक पेंटिंग में ऐसा दिखाया। दूसरी में बैल खो गया। तीसरी में वह परेशान है, बैल की खोज कर रहा है। खोज करते–करते वह जंगली रास्तों पर पहुंच गया। फिर अगली पेंटिंग में उसको बैल के पद चिन्ह दिखाई दिए। इसका मतलब बैल यहाँ से गुजरा है। फिर उन पद चिह्नों को फॉलो करता है। अगली पेंटिंग में बैल की पूंछ दिखाई देती है। अगली पेंटिंग में वह बैल को पा लेता है। इस प्रकार की नौ पेंटिंग्स लंबे समय से हैं। अंत में वह बैल को पा लेता है और फिर बैल पर सवार हो जाता है। फिर झेन परंपरा में दो सदी पूर्व एक नई पेंटिंग और जोड़ी गई उसमें। दसवीं पेंटिंग। जिसमें वह बैल पर बैठा हुआ दारू की बोतल बगल में लटकाए, बांसुरी बजाता हुआ, फिर बाजार में से गुजर रहा है। वापिस वहीं आ गए जहाँ थे। संसार में।

ओशो ने इस बात को बहुत प्यारे अंदाज में समझाया है। यह पुरानी साधना झेन की, जो कि बुद्ध की शिक्षा पर आधारित है, वह नौ पेंटिंग्स में पूरी हो जाती है। वहाँ बैल अपनी जीवन ऊर्जा का प्रतीक या अपनी चेतना का प्रतीक है, जो भी समझ लो। वहाँ बात खतम हो जाती थी नौ पेंटिंग्स में। लेकिन ओशो कहते हैं दसवीं पेंटिंग ने अद्‌भुत क्रांति की बात की। वह आदमी फिर संसार में आ गया। ओशो कहते हैं यह इस चित्रावली की पूर्णता है। इसीलिए मैंने इस चित्रावली को चुना।

हम सोच भी नहीं सकते थे कि पेंटिंग्स के ऊपर प्रवचनमाला होगी। आप जरूर इसको पढ़ना, तब आपको समझ में आएगा ओशो का दृष्टिकोण और यह भी समझ में आएगा कि यह जो समन्वय है, यह रिसेंटली ही हुआ है। कबीर साहब को हम स्टार्टिंग पॉइंट कह सकते हैं। यह सब रिसेंटली ही हुआ है। पुराने जमाने में हम सोच भी नहीं सकते कि रामकृष्ण परमहंस जैसा व्यक्ति कोई हो सकता था। यह नई घटना है। अध्यात्म भी धीरे–धीरे विकसित हो रहा है। पूर्णता की ओर जा रहा है। ओशो के साथ एक लॉजिकल क्लाइमैक्स आ गया। ओशो ने इस बात को स्पष्ट किया। यह झेन पेंटिंग वाली बात से भी स्पष्ट होता है। 'द सर्च' प्रवचनमाला आप सुनिए अथवा पढ़िए और दूसरी... हिंदी में एक प्रवचनमाला है 'शिव सूत्र'। इसका आखिरी प्रवचन जरूर सुनिए।

ओशो कह रहे हैं एक व्यक्ति है जो अपने घर के बाहर ही बाहर घूमता है, उलझा हुआ है और अपने घर का मार्ग उसे नहीं पता। बहुत दुख में है, परेशानी में है, चिंता में है। क्योंकि कोई रेस्ट की जगह नहीं, अपना घर उसे नहीं पता। कोई दूसरा व्यक्ति है, जिसको अपने घर का पता चल गया, द्वार उसे मिल गया, भीतर आ गया और बड़े विश्राम में है, बड़ी शांति में है। अब जो यह भीतर आ गया है छाया में, अब यह बाहर नहीं जाना चाहता धूप में। इसको

शांति मिल गई भीतर की, अब बाहर के उपद्रव में वह नहीं फंसना चाहता। ओशो कहते हैं दोनों बंधन में हैं। जो बाहर था और भीतर नहीं आ सकता, उसे भीतर जाने की राह नहीं मालूम, द्वार नहीं पता, विधि नहीं मालूम। वह एक प्रकार के बंधन में है। और यह दूसरा व्यक्ति जो भीतर आकर शांति के मोह में पड़ गया, अब यह बाहर जाने को तैयार नहीं। यह भी एक प्रकार के बंधन में है, यह पूर्ण मुक्ति तो नहीं हुई। पूर्ण मुक्त व्यक्ति हम किसको कहेंगे? जो किसी प्रकार के बंधन में नहीं है। न भीतर के, न बाहर के। उसकी मौज है, वह जब चाहे बाहर चला जाए, जब चाहे भीतर आ जाए। उसका घर है और बाहर भी उसका है। इसको हम कहेंगे मुक्त पुरुष। शिवत्व को उपलब्ध।

अंतिम सूत्र 'शिव सूत्र' में वे इस तरफ इशारा करते हैं कि पूर्ण मुक्ति क्या होगी? कहीं बंधो मत। न तुम बाहर से बंधे, न तुम भीतर से बंधे। तब तुम स्वतंत्र कहलाए। वरन भीतर स्थित होना भी एक प्रकार का कारागृह हो गया। इस बात को थोड़ा-सा पकड़ना। ठीक है बहुत शांति है, बहुत प्रसन्नता है अपने भीतर डूबकर। लेकिन अगर उससे हम ग्रस्त हो गए और उससे हम बाहर नहीं जाना चाहते, दूर नहीं जाना चाहते, तो हम एक प्रकार के नए कारागृह में बंद हो गए। मुक्त तो नहीं कहलाए।

भगवान शिव इशारा करते हैं, शायद ऐसी व्याख्या किसी ने नहीं की होगी जैसी ओशो ने की, कि भीतर स्थित हो जाना, बंध जाना भी बंधन है। मुक्त वह है, जो सहजता से जब जैसी मर्जी, सुबह-सुबह कुनकुनी धूप निकली, ठंड के दिन हैं, बाहर बगीचे में आकर बैठ गए। पक्षियों का गीत सुन रहे हैं। धूप तेज हो गई, भीतर कमरे में चले गए। इसमें प्रॉब्लम क्या है? ऐसा व्यक्ति मुक्त है। खूबसूरत चांदनी है, रात में तारे निकले हैं, बाहर आकर गीत गा रहे हैं। कोई बंधन नहीं है। यह व्यक्ति मुक्त है।

यह एक नई धारणा तार्किक रूप से भी ओशो ने सिद्ध की। यद्यपि ओशो के पहले ऐसे लोग हो चुके। आप पूरा इतिहास देखें संतों का। हमें लगता है कि कबीर के साथ-साथ धीरे-धीरे चीजें बदलती चली गईं। लेकिन बहुत साफ-सुथरी नहीं हुई थीं। ओशो ने एकदम साफ-सुथरा कर दिया। ये अतीत में दो मार्ग थे और उनमें से हम चुनते थे। अधिकांश महिलाओं के लिए या स्त्री प्रधान जिनका मन है, स्त्रैण गुणों वाला कोमल हृदय है, उनके लिए भक्ति का मार्ग। जिनमें पुरुष प्रधान गुण हैं, उनके लिए ध्यान का मार्ग। यह स्पष्ट-स्पष्ट विभाजन था। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष, माता-पिता के मिलन से उत्पन्न हुआ है और उसमें दोनों ही गुण मौजूद हैं। यह बात ठीक है कि एक प्रकार के गुण प्रॉमिनेंट है। लेकिन ऐसा नहीं है कि दूसरा गुण मौजूद नहीं है।

तो हम बुद्ध का, या महावीर का, या मीराबाई का, या सहजोबाई का मार्ग... इनमें अगर चुनाव करते हैं, हम अपने भीतर के भी एक हिस्से को ही मौका देते हैं विकसित होने का। हमारे भीतर का दूसरा हिस्सा अविकसित रह जाएगा। चाहे हम कोई-सा भी चुनें। एक टोटैलिटी जिसको कहें, वह तभी आएगी जब हमने अपने व्यक्तित्व के किसी गुण को नहीं

छोड़ा। सभी को हमने पूर्ण खिलावट का मौका दिया। हमारे भीतर कोमल भावनाएं भी हैं। सबके भीतर हैं। चलो मात्रा, परसेंटेज अलग-अलग हो सकती है। किसी के भीतर ज्यादा हैं भावनाएं, भावना प्रधान है, उसमें भक्ति ज्यादा प्रखर होगी। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि चेतना नहीं है। कोई व्यक्ति चेतना प्रधान है, ठीक है, वह सुपर कॅन्शसनेस में मजा ले, ध्यानस्थ हो। लेकिन वहाँ बंध न जाए। यह एक नई बात हुई। ठीक है, परसेंटेज का फर्क हो सकता है। किसी व्यक्ति को घर में रहना ज्यादा अच्छा लगता है, कभी-कभार बाहर का उत्सव मनाता है। और कोई व्यक्ति है जो बाहर प्रकृति के सान्निध्य में ज्यादा उत्सव मनाता है। कभी-कभार भीतर विश्राम करता है। यह मैं मान सकता हूं। लेकिन यह घर भी हमारा है और बाहर का आंगन भी हमारा है। पूरा संसार भी हमारा है।

इसलिए हम एक नया दृष्टिकोण अपनाएं। हम चुनाव नहीं करेंगे। चॉयसलेस अवेयरनेस; सहज रूप से जब जैसा होगा। उदाहरण के लिए वह सुबह का वक्त है, भोर का समय, सारी प्रकृति जाग रही है, हम भी अभी नींद से जागे हैं, फूल खिलने लगे, पंछी गीत गाने लगे, सूरज उग रहा है। यह जागरण की बेला है। कितना सुंदर होगा यदि सुबह हम ध्यानस्थ हों। अपने भीतर डुबकी मारें। घंटा भर, आधा घंटा। फिर धीरे-धीरे बहिर्मुखी हों। अब ज़रा झोरबा (ज़ोरबा) बनें। संसार के उत्तरदायित्व हैं, कामधाम भी करना है। उसमें संलग्न हों, कर्मठ बनें। घर-गृहस्थी देखना है। किसी चीज से कोई विरोध नहीं है। शाम का समय हो गया, चलो आनंदित होते हैं, अपने गुरु का स्मरण करते हैं, श्रद्धाभाव से भरते हैं, आनंद मनाते हैं, उत्सव मनाते हैं, भक्ति का मार्ग अपनाते हैं। हम अपने व्यक्तित्व में मौजूद सभी गुणों का सम्यक् उपयोग कर लें।

मुख्य रूप से दो बातें जो मैं कह रहा हूं योग और भक्ति की, उनके मुख्य बिंदु क्या हैं? चेतना और भावना। चेतना में भी डुबकी मारें, भावना को भी विकसित होने का मौका दें। हमारे भीतर भावना है श्रद्धा की, समर्पण की, तथाता की, मैत्री की, सारे जगत के प्रति प्रेम की, प्रीति की। इनको हम क्यों छोड़ें? हो सकता है किसी में यह कम मात्रा में हों, किसी में ज्यादा मात्रा में हों। हमारे भीतर माता-पिता दोनों के गुण मौजूद हैं। ठीक है, कोई एक बात ज्यादा मात्रा में है; लेकिन दूसरी चीज भी मौजूद है। हो सकता है किसी को भक्ति में ज्यादा रस आएगा। किसी को ध्यानस्थ होने में ज्यादा रस आएगा। अपने-अपने ढंग से चलें। जिसका जैसा रस बनता हो।

तो साक्षी भी और सुमिरन भी। यह बात नई है। आपको कहीं-कहीं विरोधाभासी भी लगती होगी कि ध्यान समाधि से लेकर निर्वाण समाधि तक आप कह रहे थे सब भूल जाओ अपने भीतर डुबकी मारो और अब कह रहे हैं कि बाहर भी बैठो और साक्षी भी बनो और प्रकृति का मजा लो, गीत गाओ। दोनों। फिर भी मैं कह रहा हूं अपने भीतर की प्रकृति को देखना। किसी की प्रवृत्ति मार्ग की वृत्ति होगी, किसी की निवृत्ति मार्ग की वृत्ति होगी। ये पुराने शब्द हैं जो यूज किए गए हैं-निवृत्ति। छोड़ना। यह भी छोड़ दो, वह भी

छोड़ दो। नेति–नेति, सब छोड़ते चलो, अपने भीतर डूब जाओ। इसको निवृत्ति मार्ग कहा जाता है और एक है प्रवृत्ति मार्ग। बाहर। प्रभु के संग एकात्म। जुड़ते जाओ, जुड़ते जाओ। सबके साथ एक हो जाओ।

ओशो के मार्ग को हम क्या कहें? न तो वह निवृत्ति मार्ग है और न प्रवृत्ति मार्ग है। नया शब्द उपयोग कर लें––'संवृत्ति मार्ग'––इसमें बड़ी सम्यकता और संतुलन की दशा झलकती है। ये दोनों वृत्तियां हम में हैं। दोनों को हम अवसर दें। यह अध्यात्म की एक क्रांतिकारी बात है, जो पिछले कुछ सदियों में उत्पन्न हुई है और ओशो के साथ अपनी पूर्णता में प्रगट हुई है। ओशो को आप क्या कहेंगे? भक्त कहेंगे कि ध्यानी कहेंगे। किसी कैटेगरी में फिट नहीं होते। तो हम उनके शिष्यों को व अपने आप को भी पुरानी कोटियों में काउंट न करें। हमारे साथ एक नया व्यक्तित्व जगत में आया है जो संसारी भी है, संन्यासी भी है और संन्यासी में भी संवृत्तिवाला है। न तो निवृत्ति पर जोर है, न प्रवृत्ति पर जोर है। फिर भी मैं कहता हूं कि इसके बाद भी हमारे व्यक्तित्व की कुछ छाप रह जाएगी। हर व्यक्ति थोड़ा–थोड़ा भिन्न है।

अपनी भिन्नता को भी स्वीकार करें। उसके विरोध में भी नहीं जाना है। उदाहरण के लिए मुझे ही साक्षीत्व में ज्यादा रस आता है बजाय सुमिरन के। कल बड़े बाबा कह रहे थे न कि त्रिविर में तीनों भिन्न–भिन्न हैं! जन्म से जो वृत्ति मिली है, उसको हम बदल तो नहीं सकते। लेकिन कम–से–कम हमारा दृष्टिकोण चौड़ा हो जाए, हम दूसरे को भी स्वीकारने को राजी हों। बड़े बाबा ज्यादा सुमिरन में जीते हैं। उनका भक्त हृदय है, कवि हृदय है। मेरा चित्त कविता वाला नहीं है। मेरा गणितीय, तार्किक, बौद्धिक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला चित्त है। अगर मैं काव्य की, गीत की चर्चा भी करता हूं, तो वह भी साइंटिफिक ऐटिट्यूड से ही करूंगा। वह छूट नहीं सकता। बड़े बाबा ध्यान की भी बात करेंगे, तो भक्ति के ऐंगल में उसको मोड़ देंगे। दोनों के व्यक्तित्व बिल्कुल भिन्न–भिन्न हैं। मां का व्यक्तित्व और भिन्न है। ऐसा है, दिस इज द फैक्ट।

आपको भी अपने व्यक्तित्व को स्वीकारना है। समझाने के लिए मैंने आपको समझा दिया कि दो एक्स्ट्रीम के मार्ग है और एक संवृत्ति का मार्ग है। हम संवृत्ति के मार्ग को ज्यादा एंफेसाइज करें। साथ में यह कहते हुए कि जिनका व्यक्तित्व जैसा हो, वे उस राह पर चल जाएं। कोई जरूरी नहीं कि सब लोग इसमें फिट हों और यह फिट करना, न करना, हमारे हाथ में है भी नहीं। इसको कोई बदल नहीं सकता। जो जैसा है, वह है। क्योंकि जन्मों–जन्मों की कहानी पीछे जुड़ी है, सब घटनाओं की वजह से जो अनुभव हुए हैं, उनकी वजह से आज हम वो हैं जैसे हम हैं। अब अतीत को तो नहीं बदला जा सकता। जो हो चुका वह हो चुका। उसके परिणाम हम हैं। तो अपने को भी स्वीकार करें। कोई संघर्ष नहीं। सहज बनें। जो सहजता से घटित होता हो वही खूबसूरत, सुंदर। हां, इतना ख्याल रखते हुए कि इससे भिन्न अगर कोई है, वह भी सही है, गलत नहीं है। कभी–कभी

हम उस रास्ते का भी मजा ले सकते हैं। ठीक है, आपको कार ड्राइविंग का शौक है तो आप मुख्य रूप से कार ड्राइविंग करते हैं। पर कभी–कभी घुड़सवारी का शौक कर सकते हैं। ऐसी क्या बात है? उसका भी मजा ले सकते हैं।

कल मैं एक चुटकुला पढ़ रहा था कि जब गरीब थे, साईकल पर चलते थे फिर बा–मुश्किल अमीर बने। कार खरीदी। अब कारें आ गईं। अब कार में बैठकर जिम जाते हैं और साईकल चलाते हैं। घूम–फिरकर वहीं आ गए। क्या करोगे? कार में चलोगे, तो धीरे–धीरे मोटे होते जाओगे, फिर डॉक्टर कहेगा जिम जाओ, मेहनत करो, वजन घटाओ, फिर साईकल चलाओ। घूम–फिरकर चक्कर वहीं हो गया। चलो सब चीजों का मजा लो।

तो मुख्य रूप से मैं क्या कह रहा हूं? संवृत्ति मार्ग हम ओशो का कह सकते हैं। इसमें यह भी जोड़ते हुए कि अन्य दो मार्ग भी सही हैं। जिसको जो भाए। ओशो कहते हैं एक प्रवचन में महायान और हीनयान को समझाते हुए, महायान, हीनयान भी इसी प्रकार का विभाजन है बुद्ध में, कि मेरा तीसरा ही ढंग है। मेरे पास महायान है, बड़ा जहाज और उस बड़े जहाज में मैंने छोटी–छोटी डोंगियां फिट कर रखी हैं हीनयान। तुम्हें जब शौक हो, अपनी डोंगी चलाओ। थक जाओ पतवार चलाते–चलाते, तो आगे बड़े यान में बैठ जाना, जहाज में। भई डोंगी चलाने का अपना मजा है। अकेले खतरों से खेलने का अपना रस है। इससे क्यों वंचित होओ।

ओशो कहते हैं, मेरा तीसरा ही मार्ग है। महायान, हीनयान अर्थात् वह संकल्प, समर्पण का विभाजन छोड़ दो। दोनों को स्वीकार करता हूं। बड़ा जहाज है। आओ, बैठो। जहाज अपने आप चल रहा है, प्रभुकृपा का मजा लो और तुम्हें शौक चढ़ता है, पतवारें चलाना है, तो ठीक उठाओ पतवारें, छोटी–छोटी डोंगियां मैंने बांध रखी हैं जहाज से। जाओ चलाओ पतवारें। श्रमण मार्ग। दूसरा है ब्राह्मण मार्ग। ये पुराने शब्द हैं श्रमण मार्ग; श्रमण संस्कृति, ब्राह्मण संस्कृति। हिंदू संस्कृति प्रभुकृपा पर आधारित है। जो भगवान की मर्जी। श्रमण संस्कृति अपना खुद उपाय करेगी, मेहनत करेगी, ध्यान में डूबेगी। ओशो कहते हैं, मैं दोनों को स्वीकारता हूं।

प्यारे मित्रों, ओशोधारा में ऐसा ही समझना। दोनों का कॉम्बिनेशन और दोनों विरोधों की भी स्वीकृति है। कोई महावीर जैसा व्यक्ति आ जाए वह भी स्वीकार है। मजा ले। मीराबाई जैसा व्यक्ति हो, वह भी स्वीकार है। कोई विरोध नहीं, चॉएसलेस; और बीच के मार्ग को हम मुख्यतः कहेंगे। क्योंकि अधिकतम लोग इसमें फिट होंगे। यह बात ख्याल रखिएगा। वे जो एक्स्ट्रीम हैं वे थोड़े से हो सकते हैं, विरले, पांच–सात परसेंट, दस परसेंट। हो सकता है दस परसेंट लोग बुद्ध, महावीर जैसे हो सकें। इसलिए देखना हमारे देश में बुद्ध और महावीर का धर्म फैल नहीं सका। ध्यानवादी कोई भी धर्म फैल नहीं सकता। खूब अच्छे से समझ लेना। जिन लोगों ने भी ध्यान पर बहुत ज्यादा जोर दिया उनकी धारा सूख जाएगी।

आपमें से कई मित्र ध्यान केंद्र चलाते होंगे, इस बात को आप भली–भांति जानते

होंगे। आप कितना ही लोगों को आमंत्रित करें ध्यान के लिए, एक बार बीस लोग आए, तो अगले सप्ताह पंद्रह आएंगे, उसके बाद दस आएंगे, फिर छह आएंगे, फिर दो आएंगे। एक दिन आप ही अकेले बचोगे। हीनयान है, छोटी-सी डोंगी है। बहुत कम लोग इसमें रस लेंगे। इसलिए ध्यान का मार्ग कभी भी संपूर्ण जगत को प्रभावित कर ही नहीं सकता। वह एक्स्ट्रीम वाली बात जो पुरानी थी, उसकी कह रहा हूं मैं। कभी प्रभावित नहीं कर सकता। वह जो बड़ा मार्ग है महायान का वह भी पांच-दस परसेंट लोगों को ही प्रभावित कर सकता है। अब भावप्रधान लोग, संवेदनशील लोग दुनिया में उतने नहीं रहे। पहले थे। पहले वह महायान था, अब वह भी नहीं है। वह भी छोटी डोंगी बन गया। बुद्धि के विकास के बाद, विज्ञान के आने के बाद लोग तार्किक हो गए हैं, बौद्धिक हो गए हैं, इंटलेक्चुअल हो गए हैं, इमोशनल नहीं रहे।

पुराने जमाने में थे बहुत इमोशनल लोग। आसानी से वे भक्त हो जाते थे। अब ऐसा संभव नहीं है। शायद भविष्य में और भी कम भक्त बचेंगे। दस परसेंट उसमें, दस परसेंट उसमें; बस इससे ज्यादा नहीं हो सकते। अस्सी परसेंट लोग जो बचे, उनके लिए क्या है फिर? यह जो नई बात उभरकर आई है, इसको हम ओशो मार्ग कह लें। यह सबके लिए लागू हो सकती है, इसमें वे दस-दस परसेंट भी शामिल हो सकते हैं। क्योंकि उनकी बात का विरोध नहीं है। कोई व्यक्ति अपने एकांत में, मौन में डुबकी मारना चाहता है, तो उसका भी विरोध नहीं है। कोई व्यक्ति मस्ती में, मौज में नाचना चाहता है, झूमना चाहता है, उसका भी विरोध नहीं है।

अभी पीछे दो-तीन महीने कितनी तेज ठंड थी और रोज ग्यारह बजे रात तक ऊपर छत पर लोग बैठे हैं ठंड में। चार डिग्री टेंपरेचर में गाना गाने वाले। यह अलग प्रकार का वर्ग है। सब लोग तो ऐसे नहीं हो सकते। ये भिन्न प्रकार के लोग हैं। अन्य लोगों को लगेगा पागल हैं क्या? हम चार-चार रजाई ओढ़े सोए हुए हैं, हीटर जलाकर और तुम ऊपर ठंड में वहाँ कुल्फी जम रही है, वहाँ गाना गा रहे हो और कुछ ढंग का गाना-वाना आता भी नहीं है। अंधेरे में फर्श पर बैठे। किसी का चेहरा तक नहीं दिख रहा कि कौन गाना बिगाड़ रहा है। कैसे पगले हैं। हैं ऐसे लोग तो क्या करोगे? अपना मजा ले रहे हैं। जिनको लगता है कि यह पागलपन है, वह ऐसा न करें। अपने एकांत में, मौन में जीएं। उनको कौन मना कर रहा है? सब प्रकार के लोग हैं। सब लोगों की स्वीकृति होनी चाहिए। हम इस प्रकार, इस दृष्टिकोण से देखेंगे, तो हम कभी भी आतंकवादी नहीं बन सकेंगे।

आतंकवादी कहता है कि मैं जो मानता हूं वही सही है और सबको यही मानना पड़ेगा। नहीं तो तुम्हें जीने का भी हक नहीं है। क्योंकि तुम गलत हो। हम बड़े उदार हृदय के बन गए, हम अपना मजा लेते हैं जिसमें हमको मजा आता है और हम जानते हैं कि दूसरे लोग दूसरे-दूसरे ढंग से मजा ले रहे हैं। उनको उनका मजा लेने देते हैं। बड़ी उदार दृष्टि हो गई। अब कहाँ रात को ग्यारह बजे गाना गा रहे हैं ठंड में बैठे, और कहाँ एक आदमी कह रहा है कि

मैं तो बिल्कुल मौन, एकांत में जीऊंगा। दो एक्स्ट्रीम हैं। एक मौन में, एक मुखर। कह रहे हैं कि दोनों ठीक हैं। गलत कुछ भी नहीं। आज मां राबिया कह रही थीं कि दिल होता है कि पैरों में घुंघरू बांधकर नाचूं। हमने कहा कि तुम तो घुंघरू पहनकर ही चला करो। छम! छम! पता चले कि राबिया आ रही है। ये अलग प्रकार के लोग हैं। बुद्ध कहेंगे पूर्ण मौन। यह छम, छम, छम कोई करेगा, तो वे कहेंगे चुप! भाग यहाँ से।

प्यारे मित्रों, इस बात को समझना और फिर सब भांति के प्रयोग करके देख लेना और जो सहज तुम्हारा होगा, वह अपने आप पकड़ में आ जाएगा। अपने को कुछ सोच–विचारकर चुनाव करने की जरूरत नहीं है। आप खुद ही निरीक्षण करना। जो सहज रूप से आपको रसपूर्ण लग रहा है, वह आपको चुंबक की तरह खींचता है। आपके लिए वही सही है। हमको कोई जोड़–तोड़ नहीं बिठाना है अपने भीतर। जैसा हो रहा है––एकदम ठीक––उसका मजा लो।

प्यारे मित्रों, इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है। इसका पूरा रसपान करो। सरल, सहज, स्व–स्फूर्त बनो।

आज की चर्चा को यहीं विराम देते हैं। धन्यवाद।

जय ओशो।
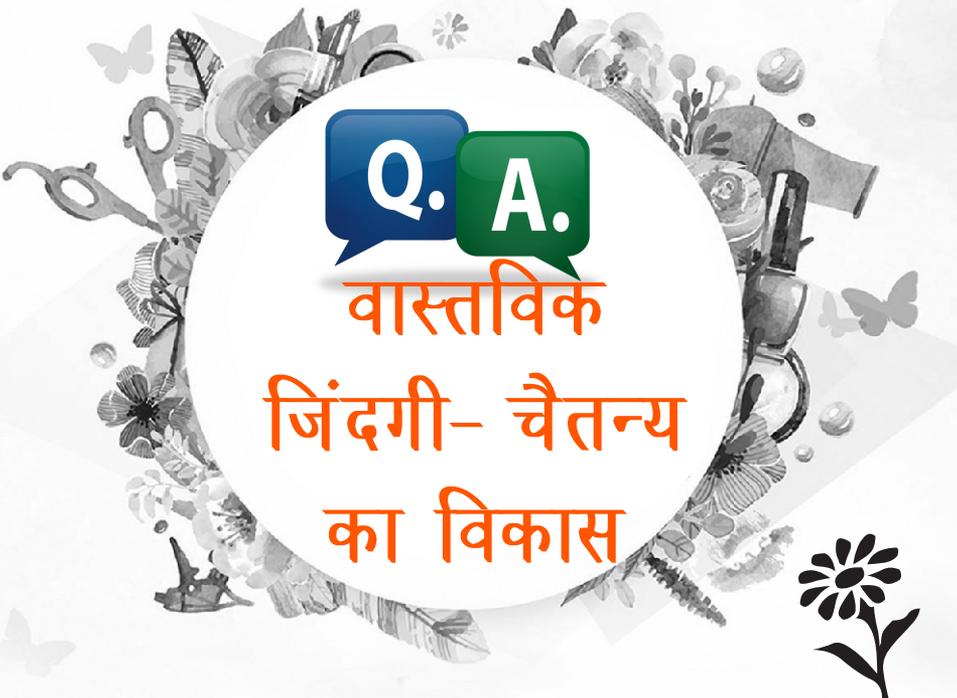
वास्तविक जिंदगी- चैतन्य का विकास

प्रश्न– चैतन्य समाधि में आने पर, साक्षी साधने में ऐसा लग रहा है कि वास्तविक जीवन की यात्रा, धर्म की तीर्थयात्रा अब शुरू हो रही है। क्या यही सच है?

हां। आपकी बात बिल्कुल सच है कि असली यात्रा अब शुरू हो रही है। सच्चे साधक को सदा ही ऐसा लगता है। आप ऐसा नहीं सोचना कि जब आप आनंद समाधि में आएंगे तब ऐसा नहीं लगेगा। तब भी ऐसा ही लगेगा। सत्य यह है कि यात्रा अंतहीन है। हम जहां भी हैं, हमेशा बीच में ही हैं। और उस पॉइंट से हमें शुरू ही करना है। इसको दूसरे अर्थ में लें। परमात्मा अर्थात् सतत विकास की प्रक्रिया, इसमें कोई डेड एन्ड नहीं आता। जहां हम कहें कि यहां चीज खत्म हो गई। अगर खत्म हो गई तो फिर सीमा आ गई, अंत आ गया। फिर तो परमात्मा अनंत ना रहा, इसलिए ऐसा कभी भी नहीं लगेगा कि बात खत्म हो गई। आगे और विकास की ओर संभावना है। भारत में कवियों ने सौन्दर्य की उपमा चौदहवीं के चाँद से दी है। जानबूझ के पूर्णिमा का चाँद नहीं कहा क्योंकि पूर्णिमा के बाद तो फिर ह्रास शुरू हो जाता है। चौदहवीं में अभी और बढ़ने की संभावना है। कला और अध्यात्म का साधक सदा ही चौदहवीं का चाँद है। हमेशा थोड़ा और विकास हो सकता है। जितने जागरूक हम हो गए हैं, इसमें थोड़ी बढ़ोतरी और हो सकती है। जितने प्रेमल हम हो गए हैं, उसके आगे और एक कदम उठ ही सकता है। और ऐसा आगे भी रहेगा। सामान्यतः हम मान के चलते हैं कि कहीं समापन होना चाहिए। लेकिन हमारी ये धारणा गलत है। और गलत होनी भी चाहिए। वरना एक दिन सारी जिन्दगी बिल्कुल निरर्थक हो जाएगी। कुछ भी अज्ञेय नहीं होगा जब कुछ भी अज्ञात नहीं होगा।

आज से डेढ़ सौ पौने दो सौ साल पहले वैज्ञानिक सोचते थे कि वे प्रकृति के सत्य को खोज लेंगे। कितनी बार कितने वैज्ञानिकों ने घोषणा की कि अब जो सिद्धांत खोजा गया है ये बिल्कुल फाइनल है। इससे सारे रहस्य खुल गए। अब और कुछ जानने को बाकी नहीं बचा। ऐसी घोषणाएं कई बार हुई हैं। पिछले सौ सालों में ऐसी घोषणाएं नहीं हुईं; धीरे-धीरे बात समझ में आ गई कि मामला वैसा नहीं है, जैसा हमने सोचा था। रहस्य अभी भी रहस्य है। बस हम इतना ही कह सकते हैं कि यहां-यहां तक हमने कुछ जान लिया है। और अब ना तो यह कह सकते हैं कि हमने जो जाना है वो बिल्कुल सुनिश्चित है। और ना यह कह सकते हैं कि आगे जानने को कुछ शेष नहीं है, या भविष्य में कोई दिन ऐसा आएगा जब हम सब कुछ खोज लेंगे। ऐसा हो ही नहीं सकता। अब तो विज्ञान की भी हिम्मत टूट गई। आध्यात्मिक व्यक्ति तो सदा से ही इस भाव में जी रहा था कि जो भी मैंने जाना वह बहुत ही छोटा अंश है सत्य का। नगण्य, करीब-करीब नहीं के बराबर, बस थोड़ा सा, कामचलाऊ। सत्य हमेशा ही अज्ञेय है, उसका विराट हिस्सा, और यह ठीक भी है, अंश भला पूर्ण को कैसे जान सकता है। और पूर्ण भी विकासमान पूर्ण है। पूर्ण पर बड़ा विवाद चला है भारत में, कि परमात्मा को पूर्ण कहा जाए कि ना कहा जाए, क्योंकि पूर्ण कहने से एक भ्रांति उत्पन्न होती है कि जो हो सकता था वो हो चुका। जब हम कहें कि एक फूल पूरा खिल चुका, पूरा मतलब अब इसके और खिलने की संभावना नहीं बची; अब जो संभावना है वो पतझड़ की ही होगी। तो विकासमान पूर्ण... फिलॉसफ़ी में तो इस पर बहुत डिस्कशन हुए हैं, बड़े विवाद चले हैं कि क्या पूर्ण भी विकासमान है। क्योंकि ये बात आपने आप में कॉन्ट्रडिक्टरी हो गई। अगर और विकास संभव है तो उसको पूर्ण क्यों कह रहे हो फिर तो ये पूरा नहीं कहलाएगा। अभी और बढ़ सकता है। तो फिर पूरा कैसे? ओशो ने भी इस संबंध में प्रकाश डाला है।

वो पूर्ण है और विकासमान पूर्ण है। ऐसा नहीं कि अभी कुछ अधूरा है और कुछ कम है। अभी भी टोटल है। लेकिन यह टोटेलटी, इस में ग्रोथ संभव है। और ग्रोथ संभव है। और ऐसा सदा होगा, ऐसा कोई दिन नहीं आएगा जब हम कहें कि दिस इज़ द एन्ड। फिर तो आदमी के पास स्यूसाइड करने के अलावा कुछ बचेगा नहीं। तो प्रभु की बड़ी कृपा है। पूर्ण से पूर्णतर, पूर्णतर से और पूर्णतर, बस आगे, और आगे, और आगे, और सदा ही अज्ञात छूट जाता है, ये जीवंत पूर्ण है। हमारी मानसिक धारणा इस संबंध में हमेशा मुर्दा की होती है। कोई मर जाता है ना तो कहते हैं कि वो सज्जन पूरे हो गए। अब सही में पूर्ण हुए। अब इसके आगे और कुछ हो ही नहीं सकता। खत्म होना और पूरा होना, कम्प्लीट ऐन्ड फिनिश्ड, हमारी भाषा में एक ही मीनिंग रखते हैं। हम कहते हैं कहानी पूरी हुई, यानी कहानी खत्म हुई। क्या अस्तित्व इस प्रकार का पूर्ण है? नहीं, तो क्या वह अपूर्ण है? नहीं, उसमें दोनों बातें एक साथ हैं। अगर परमात्मा के स्वभाव का ख्याल रखें तो हमें अपनी साधना के संबंध में भी बहुत क्लैरिटी हो जाएगी। हम जहां हैं, जो हैं, निश्चित ही पीछे से विकसित होकर आए हैं। और आगे और-और विकसित होंगे। और एक निष्ठावान साधक को सदा ही ऐसा लगेगा कि अब यात्रा शुरू हुई। मंजिल जैसी चीज अध्यात्म में नहीं होती। और यह सौभाग्य की घटना है। तभी परमात्मा के स्वाभाव के संग ये समानांतर, पैरेलल होती है।

एक साधक ने पूछा है कि समाधि में दो बार ऐसा लगा कि बांयी तरफ तो प्रकाश है। राइट साइड में अंधेरी परछाईं जैसी है। कृपा बताने का कष्ट करे। मेरा वहम है या कुछ और?

जो चीज आए-जाए उसे वहम ही समझना, विशेषकर चैतन्य समाधि के पश्चात दृश्य परिवर्तनशील है। सत्य केवल एक है, दृष्टा जो सतत रहता है। प्रकाश को भी आपने जाना, अंधकार को भी आपने जाना। एक तरफ रोशनी थी एक तरफ अंधकार था, ऐसा दो बार हुआ। यह आपने जाना, निश्चित ही इन दो बार के बीच में भी समय रहा, उसके पहले भी समय था। उसके बाद में भी समय है। इसको जानने वाला सतत मौजूद है, कॉन्टिन्यूइटी में, बीच में कुछ अनुभव आये-गये। दृश्यों की परिभाषा है, सत्य की और स्वप्न की। स्वप्न वह है जो आता-जाता है। बदल जाता है, पहले नहीं था, फिर अचानक हुआ, फिर अचानक गायब हो गया। और सत्य वह है जो लगातार मौजूद है। पहले भी था, अभी भी है, बाद में भी होगा। इस परिभाषा पर केवल चैतन्य ही सत्य की कोटि में आता है। वो जो जानने वाला तत्व है, वो लगातार मौजूद है, यहां तक वह रात सपने को भी जानता है। और स्वप्न रहित निद्रा को भी जानता है। तभी तो हम सुबह उठके कह पाते हैं कि आज बहुत अच्छी नींद आई। ये किसने जाना? कोई एक तत्व है जो गहन निद्रा में भी मौजूद था, वो ही तो रिपोर्ट कर रहा है कि आज बहुत अच्छी नींद आई, ये पता कैसे चलता, नहीं तो और किसी दिन कहते हैं कि आज खूब गहरी नींद नहीं लग पाई। इसका मतलब नींद में भी कन्टीन्यूअस पता चल रहा था कि ठीक लगी है कि ठीक नहीं लगी है। वो पता चलने वाला मौजूद ही है हर हाल में। इसलिए वह शाश्वत ही सत्य है।

आपने पूछा है कि यह वहम है या कुछ और? इसको वहम ही जाने। सभी अनुभवों को, सिर्फ इसी को नहीं, सभी अनुभवों को वहम ही जाने। इसलिए संत कहते हैं कि सपना यह संसार। हमारा शरीर तक स्वप्न बद्ध है। एक दिन यह शरीर नहीं था, जन्म हुआ, फिर एक दिन गायब हो जाएगा। लम्बा सपना, खुली आंखों देखा सपना, किन्तु है तो सपना ही। इस कसौटी पर हमेशा कसते रहें। और तब धीरे धीरे धीरे स्वप्न के प्रति, हम जिसको बहुत महत्वपूर्ण मानते थे, उसमें हमारा रस समाप्त होता है। और वह ऊर्जा स्वयं की ओर उन्मुख होती है। सत्य उन्मुख। अगर हम बाहर की घटनाओं को, शरीर के अनुभवों को या मन के अनुभवों को या हृदय की भावनाओं को सत्य मानते रहे। हम इनको बहुत महत्वपूर्ण गम्भीरता पूर्वक लेते हैं। और तब हम बहिर्मुखी हो जाते हैं। जहां हमने महत्व कर रखा है वहां हमारी ऊर्जा जाएगी। जब किसी से दोस्ती हो, स्मरण रखना आपके आज तक जितने दुश्मन बने हैं, सब पहले कभी दोस्त ही बने थे। आज एक नए व्यक्ति से मित्रता हो रही है। इसको बहुत गम्भीरता से मत लेना और जब शत्रुता हो जाए तो उसको भी बहुत गम्भीरता से मत लेना। अगर महत्व खोयेगा तो दोनों ही चीजों का खो जाएगा। जब किसी से प्रेम हो गया जब भी दीवानगी नहीं आएगी, और जब मोहब्बत शुरू हो गई नफरत खत्म हो गई, तब भी कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि हम पहले ही इस जागरूकता से भरे हुए हैं कि जो चीज शुरू हो रही है, वो समाप्त हो जाएगी। ना फिर इसमें हम किसी का दोष देखेंगे, ना किसी को ब्लेम करेंगे, ये व्यक्ति ठीक नहीं, कि ऐसा, कि वैसा;

हम जानेंगे कि ऐसा चीजों का स्वभाव है। जो फूल खिलता है वो मुरझा भी जाता है। इसमें एक पर्टीकुलर फूल का कोई दोष नहीं है। यह प्रकृति का नियम है। तब हम बिल्कुल अनुत्तेजित रह जाएंगे। तब हम अपने आप में केन्द्रित, डिगेंगे नहीं स्वयं से, ना आकर्षण वाली घटना डिगा पाएगी ना विकर्षण वाली डिगा पाएगी। फिर कोई चीज आकर्षित–विकर्षित नहीं करेगी। ये समझ में आ गया कि चीजों का स्वभाव ऐसा है। जीवन के नियम ऐसे हैं। उस नियमानुसार घटनाएं घट रहीं हैं। हम अपने साक्षी चैतन्य में स्थित रह जाएंगे।

आन्तरिक अनुभवों को भी इसी प्रकार से लें। जब आप नए–नए आए ध्यान समाधि में, तब हमने आन्तरिक अनुभवों को ज्यादा मूल्य दिया ताकि आपकी जो बिल्कुल ही बहिर्मुखी ऊर्जा थी, वह भीतर लौटना शुरू हो। हमने एम्फ़सिस बदली, बाहर के जगत के बजाय अंतस में जो घट रहा है, वह महत्वपूर्ण है। लेकिन यह केवल स्टेपिंग स्टोन था। अब अगली बात आप स्मरण रखें। वह चैतन्य ही महत्वपूर्ण है, जो सब कुछ जानता है, चाहे बाहर के जगत का, चाहे भीतर अंतस लोक का। क्या जाना वह महत्वपूर्ण नहीं है, किसने जाना वह महत्वपूर्ण है। अंतर्यात्रा में यह पद्धति उपयोगी है। किसी व्यक्ति को सीधे–सीधे संसार से साक्षी में स्थिर करना बहुत कठिन है, लेकिन धीरे–धीरे एक–एक कदम पहले बाहर की चीजों को महत्व कम करें। आन्तरिक अनुभवों को महत्वपूर्ण समझें तो प्रतिक्रमण शुरू हुआ। हम भीतर की तरफ मुड़ने लगे। फिर एक दिन आएगा जब भीतर के अनुभवों में आप रच पच गए और तब कहा जाए उस चैतन्य के प्रति जागो, जिसको ये भी अनुभव हो रहे हैं, इन अनुभवों पर भी उतना ध्यान ना दो। ठीक है जो आता है आए, जो जाता हो जाए, उसकी बहुत कीमत मत आंकना।

साधना की प्रक्रिया में छोटे–छोटे स्टेप करके चले तो आसानी से हम अंतर्मुखी हो जाते हैं। इसलिए कई बातें आप को लगेंगी कि पहले हम कुछ और कह रहे थे, बाद के समाधि तलों में हम कुछ और कहने लगे। पहले वैसा जरूरी था। वो उपयोगी था। एकदम से छलांग लग नहीं सकती थी। धीरे–धीरे फुसलाते हुए भीतर की तरफ ले जा रहे हैं। तो फिलहाल आप से यही कहूंगा, भीतर जो भी दिखाई दे, सुनाई दे, अनुभव में आए, उसको ज्यादा मूल्य मत देना। असली मूल्यवान आपका स्वयं का होना है। पहचानने की शक्ति चैतन्य है।

एक मित्र ने पूछा है कि मुझे भगवान श्री ने बहुत–बहुत प्यार दिया। मेरा पूरा परिवार ओशोमय हुआ। आपके पिता जी ने और माँ ने भी मुझे बहुत प्यार दिया है। आज आप और माँ प्रिया अपना प्रेम और ज्ञान बरसा रहे हैं। क्या मैं किसी जन्म में आपके परिवार का अंग था? और अपनी ही किसी अयोग्यता के कारण दूर हुआ और आज इस जन्म में आप ही से पुनः जुड़ पाया। इसमें मेरा प्रश्न नहीं है। प्रभु बस अहोभाव है, प्रणाम है, धन्यवाद है, मुझे न बिसराना।

एक मित्र ने आज दोपहर को सवाल पूछा था उसकी भी चर्चा कर लूं, वह भी कई लोगों के काम की बात होगी। हमारे कर्म करने की स्वतंत्रता और भाग्य इन दोनों में क्या संबंध है?

यह बड़ा पुराना सवाल है। हजारों–हजारों साल से लोग इसमें उधेड़–बुन करते रहे हैं, इन दो चीजों को विपरीत मानकर। भाग्य अर्थात् सब कुछ पहले से तय है, डिसाइडेड है, विधाता ने लिख दिया है अर्थात् हम पूरी तरह परतंत्र है। कहानी जैसी लिखी है कथाकारों ने, फिल्म अभिनेताओं को वैसा ही करना होगा। पहले से कहानी बन चुकी है, लिखी जा चुकी है। एक धारणा ये है भाग्यवाद की। और कर्मवाद की धारणा है कि हम स्वतंत्र हैं। हम अपने जीवन को दिशा देते हैं। हम अपनी मनोस्थिति को, परिस्थिति को बदल सकते हैं। हम कोई मशीन नहीं हैं, प्री प्रोग्राम्ड कंप्यूटर। हमारे भीतर चेतना है और वह चेतना स्वतंत्र है, मुक्त है। चेतना का अर्थ ये होता है जो निर्णय करने को स्वतंत्र हो। ये दो विपरीत विचारधाराएं आपस में टकराती रहीं हैं। और दोनों के पास अपने–अपने प्रमाण हैं, पर्याप्त प्रमाण हैं सिद्ध करने के लिए कि उनकी बात सही है। इसलिए आज तक इनका कोई मिलन नहीं हो पाया। जो भाग्य को मानता है वो हजार प्रमाण जुटा सकता है कि ये देखो भाग्य ही सत्य है। और जो कर्मवाद को मानता है वो भी हजारों ढंग से प्रमाणित कर सकता है। कोई टस से मस नहीं होने वाला अपने–अपने व्यू पॉइंट से।

हजरत अली साहब के पास एक व्यक्ति आया और उसने ठीक यही सवाल पूछा कि क्या मनुष्य स्वतंत्र है अथवा परतंत्र है। अली साहब ने उससे कहा कि आप एक छोटा सा काम करिए फिर मैं आपका उत्तर दूंगा। एक पैर ऊँचा करके खड़े हो जाइये। उस व्यक्ति ने अपना बायां पैर ऊँचा कर लिया। अली साहब ने कहा कि ठीक, इसको ऊँचा रखिए और दूसरा पैर भी ऊँचा कर लीजिए। उसने कहा कि आप मजाक कर रहे हैं, यह भला कैसे संभव है। अली साहब ने कहा, कर लो दूसरा पैर भी नीचा कर लो, बैठो, अब तुम्हें समझाता हूं। जब मैंने तुमसे कहा था कि एक पैर ऊँचा कर लो तुम स्वतंत्र थे, तुम चींाहते तो बायां पैर उठा सकते थे, चाहते तो दायां पैर उठा सकते थे, चाहते तो मेरी बात ना मानते, कोई भी पैर ना उठाते, तुम्हारी स्वतंत्रता थी मेरी बात मानो या ना मानो, इसमें कोई बंधन नहीं था। लेकिन तुमने मेरी बात मानी, फिर तुमने उस बात मानने में भी बायां पैर उठा लिया। ये तुमने स्वतंत्रतापूर्वक उठाया, बिल्कुल अपनी मर्जी से। किन्तु यहीं से बंधन शुरू हो गया। अब अगर तुम चाहो कि दाहिना पैर भी उठा लें तो अब नहीं उठा सकते। अली साहब ने बड़े ही आसान उदाहरण से हजारों साल की पहेली सुलझा दी। उन्होंने कहा कि मनुष्य परतंत्र भी है और स्वतंत्र भी है। जब तक उसने किसी निर्णय को नहीं लिया वह स्वतंत्र है। निर्णय करते ही, कर्म करते ही बंधन की शृंखला शुरू हो जाती है। इसको ठीक–ठीक शब्दों में कहें तो मनुष्य आधा स्वतंत्र है, आधा परतंत्र है। और गौर से टटोलें तो जितनी चैतन्यता की मात्रा बढ़ती जाएगी, उतना स्वतंत्रता का प्रतिशत बढ़ता जाएगा, सौ प्रतिशत कभी नहीं होगा, याद रखना। और जितनी चैतन्यता कम होगी, उतने ही हम जड़वत, यंत्रवत, पशुवत काम करेंगे, नियमों से बंधे हुए।

समझो एक आदमी क्रोध करता आ रहा है पिछले कई सालों से, छोटी सी बात में नाराज हो जाता है, कल संभावना है कि फिर क्रोध करेगा। ऐसा उसका कर्मबंधन बार-बार रिपीट करते-करते, एक सूक्ष्म बंधन उसके ऊपर पड़ गया है। कल छुट-पुट बात पर वो फिर नाराज होगा, जैसा की रोज होता आया है। लेकिन ये कोई हन्ड्रेड परसेंट मजबूरी नहीं है। वह कल जागरूक होने के लिए भी स्वतंत्र है। यह संभव है। इस पुराने क्रोध और इनसे मिले दुखों से वह चौंके, जागे और कल से क्रोध बंद हो जाए। कर्मबंधन है किन्तु मूर्च्छा में है। जितनी मूर्च्छा प्रगाढ़, उतना बंधन ज्यादा। लेकिन मूर्च्छा तोड़ने के लिए हम सब स्वतंत्र भी हैं। ये कोई जरूरी नहीं है कि हम मूर्च्छित ही रह जाएं। जो आदमी सो रहा है और खर्राटे भर रहा है, अगले सेकेण्ड वो उठ के बैठ सकता है। कोई सो रहा है, इसमें ही यह बात छिपी हुई है कि वह जाग भी सकता है।

भाग्य और कर्म दो बातें एक दूसरे के विपरीत नहीं हैं। उसको भी थोड़ा समझें। जिसको हम भाग्य कहते हैं, वह कई लोगों के कई प्रकार के कर्मों का सम्मिलित परिणाम है। दुनिया में हम अकेले ही नहीं हैं, साढ़े छः अरब लोग और भी हैं, वे भी बहुत कुछ कर रहे हैं। वे भी निर्णय करने के लिए स्वतंत्र हैं कि क्या करें, क्या ना करें। आप भी स्वतंत्र हैं। फिर अकेले मनुष्य ही नहीं, जीव-जन्तु हैं, फिर प्रकृति है बड़ी, वह अपने नियमानुसार चल रही है। उसके अपने परिणाम आएंगे। जो कॉज़ ऐण्ड इफेक्ट्स हैं, कॉज़ पहले हो चुके, उनके इफेक्ट्स आएंगे। वो इफेक्ट्स भी फिर नए कॉज़ बन जाएंगे और आने वाले इफेक्ट्स के लिए। समझो आज से चार अरब साल पहले सूरज से टूट के पृथ्वी अलग हुई थीं, खौलता हुआ आग का गोला, अरबों साल में वो जाकर ठण्डी हुई और एक पपड़ी जम गई जमीन पर, हम जिसे भूमि कहते हैं। नीचे अभी भी दस हजार डिग्री का लावा खौल रहा है। अब वो कब कहां से फट जाएगा कहां ज्वालामुखी आ जाएगा, कहां भूकंप आ जाएगा, ये नियमानुसार चीजें हो रही हैं। हमको विस्तार में नहीं पता कब क्या होगा, अंतरिक्ष में हजारों उल्काएं घूम रही हैं। कब कौन पृथ्वी से आकर टकरा जाएगी। हमारे अनुमान के बाहर की है ये बातें। लेकिन ये घटनाएं घटेंगी और इनके परिणाम भी होंगे। लेकिन सिर्फ मेरा कर्म ही सब कुछ निर्धारित नहीं करता, मेरे अतीत के कर्म हैं, वे बीज रूप थे, अब आगे उनकी भी फसल आएगी। मैं अभी कोई कर्म कर रहा हूं, उनके परिणाम आएंगे। अभी मैं बदल भी सकता हूं। कोई जरूरी नहीं कि मैं जिस लकीर पर चल रहा था, सीधा उस लकीर पर चलता जाऊँ। मैं अचानक टर्न भी ले सकता हूं, मैं स्वतंत्र हूं। लेकिन अतीत में जो बीज बो दिए हैं उनके फल आएंगे। और फिर सामूहिक कर्म... इतने मनुष्य और अन्य प्रकार के जीवन, वे सब कर्म में रत हैं और प्रकृति की घटनाएं, अब चार अरब साल पहले सूर्य से अलग हुई थीं पृथ्वी, उसके फल अभी भी आ रहे हैं और आते जाएंगे। आप कहोगे इसमें हमारा कर्म तो कुछ भी नहीं। यही मैं आपको समझाना चाह रहा हूं। मेरा कर्म, मेरे अतीत का कर्म, मेरे संभावित कर्म, सारे मनुष्यों के अतीत के, वर्तमान के, भविष्य के संभावित कर्म, फिर सारे जीवन की घटनाएं, प्रकृति की घटनाएं, कुल मिलाकर पूरे अस्तित्व में जो हुआ, वह सब अपने परिणाम लाएगा। इस मिलेजुले परिणाम का नाम भाग्य है। अगर आप इस दृष्टि से लें तो भाग्य और कर्म दो अलग-अलग बातें नहीं रह गईं। एक मेरा व्यक्तिगत कर्म और ये है

सारे अस्तित्व के जितने भी घटक हैं, जितने भी यूनिट हैं, उन सबके कर्मों का इकट्ठा जो परिणाम है, वह है। तो भाग्य कर्म से अलग नहीं है। इसलिए यह पुरानी समस्या कि भाग्यवाद सही है कि कर्मवाद सही है, बात ही व्यर्थ हो जाती है। ये दो चीजें हैं ही नहीं।

निश्चित ही जो घटनाएं आगे घटने वाली हैं, उसमें एक व्यक्ति की भांति मेरा और आपका एक छोटा सा रोल है। विराट अस्तित्व की घटनाओं को हम परिवर्तित नहीं कर सकते, किन्तु हम अपने कर्मों को दिशा दे सकते हैं, छुट–पुट परिवर्तन हो सकता है, वो हमारे हाथ में है। उतना करने के लिए हम स्वतंत्र हैं। ये जो मैं आप से कह रहा हूं, यह बिल्कुल ही साफ सुथरी बात है। कर्मवाद और भाग्यवाद उन दो शब्दों को अगर हटा के रखें और तथ्यों को सीधा–सीधा देखें, जैसा मैंने आप के सामने रखा। हम यहां ध्यान करने के लिए इकट्ठे हुए हैं, शांत होने के लिए इकट्ठे हुए हैं। हो सकता है कि पड़ोस में कोई आतंकवादी योजना बना रहा हो कि कहीं पर विस्फोट किया जाए। उसको तो कहीं भी विस्फोट करना है, डराना, धमकाना, आतंक फैलाना है। हो सकता है वो यहां विस्फोट कर दे। आप कहोगे हमने तो ऐसा कोई कर्म किया नहीं था। हमारी मृत्यु क्यों हो गई। हम तो ध्यान करने आए थे, परमात्मा को जानने और वहां आतंकवादी ने बम फोड़ दिया। आतंकवादी भी तो अपना कर्म कर रहा है। हम अलग–थलग नहीं हैं। सारा जगत जुड़ा हुआ है। वो आतंकवादी क्यों नाराज हुआ, उसके पीछे घटनाएं घटी है, वो समाज से सरकार से रुष्ट है। उसके साथ ऐसा कुछ हुआ है, वो उसका बदला लेना चाह रहा है। वो घटनाएं घट चुकीं, उनके परिणाम उसके चित्त पर आ चुके हैं। यद्यपि वह भी स्वतंत्र है। सारी दुनिया में बहुत कुछ हो रहा है, हो चुका है। उन सबके परिणाम आने को हैं। आ रहे हैं। निश्चित ही इसमें एक व्यक्ति की भांति हमारा भी एक छोटा सा रोल है। जब आतंकवादी का बम फूटे तब हमारे हाथ में ये तो नहीं है कि हम जिन्दा रहें कि बचें। किन्तु हमारे हाथ में तब भी स्वतंत्रता है। हम शांतिपूर्वक तथाता भाव में मरें अथवा बेचैन और परेशान होते हुए मरें। तब भी स्वतंत्रता हमारी पूरी खो नहीं गई। तब भी हम स्वतंत्र हैं।

ईसा मसीह को सूली दी लोगों ने। लोग बहुत हैं, राज्य बड़ा है। नियम कानून जज वो जो निर्णय लेंगे सो होगा, वो हुआ कि उनको सूली दी जाए। किन्तु वे प्रार्थना भाव में डूबके मरे, इसके लिए तो बिल्कुल स्वतंत्र ही हैं। इसमें भीड़ क्या कर लेगी। इसमें राज्य और सरकार कुछ भी नहीं कर सकते कि तुम क्रोधित होकर मरो। उन्होंने अपनी आखिरी स्वतंत्रता का उपयोग कर लिया। जितनी सुन्दर मृत्यु हो सकती थी, उतनी सुन्दर हो गई। तो हर मनुष्य स्वतंत्र भी है और बंधन में भी है। हाँ जहां तक शरीर की बात है, सुकरात को भी जहर पिलाया, सुकरात को भी मरना पड़ता है। शरीर तो प्रकृति के नियम से चलेगा, लेकिन इस मृत्यु को चेतना किस भांति लेती है, यह सुकरात पर निर्भर है। उसने उसे आनन्दपूर्वक लिया, अहोभावपूर्वक विदाई ली। सचेत जागरूक ऑब्ज़र्व करते हुए, ये उसकी स्वतंत्रता है। जहर के परिणामों को रोकने की स्वतंत्रता नहीं है। मृत्यु के प्रति क्या ऐटिट्यूड रहेगा इसकी स्वतंत्रता है। तो बाहर जगत में जो घटनाएं घट रही हैं, वे बहुत–बहुत लोगों के, प्रकृति के पुराने और अभी हो रहे कर्मों के परिणाम हैं। उसमें हमारा भी छोटा सा रोल है। आप अंदाज लगा लीजिए सिर्फ हम मनुष्यों–मनुष्यों को ही काउन्ट करें, तो साढ़े छः अरब

मनुष्यों में से एक, बस उतना ही हमारा रोल है। ये सिर्फ मनुष्य में काउन्ट किया। जब की घटना तो बहुत बड़ी है। मनुष्य अंतर्जगत भी है। अभी हम घूमने जाएं और एक कुत्ता काट ले, पागल कुत्ता, रेबीज़ की बीमारी हो जाए और उससे मृत्यु हो जाए, कुत्ते ने परिवर्तित कर दिया। अब कुत्ते का शौक है काटना, तो काटेगा, किसी न किसी को काटना ही था। संयोग की बात आप वहां से गुजरे, आप काम तो मॉर्निंग वॉक का कर रहे थे, शुभ कर्म स्वास्थदायी और मारे गए स्वास्थदायी काम करते हुए।

आप अपना कर्म करने के लिए स्वतंत्र हैं। लेकिन जो परिणाम आएंगे, वो बड़े कॉम्प्लेक्स और जटिल हैं। वो कुत्ता भी मॉर्निंग वॉक के लिए निकला था कि आज किसी को काटूं। वो भी तो कर्म कर रहा है। आप अकेले थोड़े ही हैं जगत में। जो परिणाम आएंगे वो सम्मिलित परिणाम होंगे। तो जिसको हम भाग्य कहते हैं, आपको ये शब्द अच्छा लगता है, तो आप इसका उपयोग करें, किन्तु इसका अर्थ हुआ अतीत में हो चुके और वर्तमान में हो रहे समस्त कर्म पूरे अस्तित्व के कर्मों के परिणाम का नाम है भाग्य। तो अब कर्मवाद और भाग्यवाद दो अलग–अलग बातें, ऐसा नहीं दिखेगा आपको। बेहतर हो कर्मवाद शब्द ही उपयोग करें, लेकिन उसमें अहंकार ना आए कि हमारे हाथ में सब कुछ है। सब कुछ तो नहीं है। किसी के भी हाथ में सब कुछ नहीं है। भाग्यवाद का नुकसान ये है कि आदमी आलसी और अकर्मण्य हो जाता है। और कर्मवाद का नुकसान यह है कि वह व्यक्ति अहंकारी हो जाता है। ये दोनों खतरनाक हैं, ना तो आलसी हो जाना और ना अहंकारी हो जाना। तथ्य जैसा है, उसको वैसा ही देखो। किसी वाद में ना बंधों, सीधा–सीधा ऑब्ज़र्व करो, क्लीयर नजर आएगा। आप की जिन्दगी में कई चीज़ें हैं जो आपके करने से हुईं, आपकी स्वतंत्रता से हुईं। आप चाहते तो बदल सकते थे, अब भी बदल सकते हैं। बहुत सी चीज़ें हैं जो आपकी स्वतंत्रता से संबंधित ही नहीं हैं। वो ऑलरेडी प्री डेस्टिंड कही जा सकती हैं। यद्यपि यह शब्द मुझे पसन्द नहीं, मैं कहूंगा सम्मिलित कर्मों के परिणामों कार्यों का फल, सम्मिलित कर्मों का परिणाम, ये ज्यादा अच्छा होगा। बजाय डेस्टिनी वर्ड यूज़ करने के। बहुत चीजें है, आपके जन्म लेने के पहले ही घट चुकी हैं, हो चुकी हैं, उनके फल भोगने होंगे, अच्छे भी, बुरे भी। वैज्ञानिक बहुत कर्म कर गए तीन सौ सालों में। आप पंखे के नीचे बैठे हैं आराम से, महाराजा अकबर के पास भी पंखा नहीं था। अशोका द ग्रेट हो, सिकंदर द ग्रेट हो, उनसे ज्यादा सुख सुविधा में आप रह रहे हैं। रात को इतनी बढ़िया रोशनी सिकंदर द ग्रेट के पास भी नहीं थी। इतने सारे लोग चश्मा लगाए बैठे हैं। बड़े से बड़े राजा हो गए, आंखें हो गईं खराब, सभी की हो जाती हैं तीस पैंतीस साल के बाद, वो भी नहीं देख सकते थे ठीक से कुछ। विज्ञान ने चमत्कार किया, आप ने ना चश्मा खोजा, ना बिजली खोजी, ना आपने पंखा खोजा; आप सीधा आए और बटन दबाया, पंखा चालू कर दिया। कर्म दूसरे ने किए थे, फल आप भोग रहे हो। तो दुष्परिणाम भी भोगने पड़ेंगे।

पेट्रोल, कोयला और डीजल सब खत्म होता जा रहा है। सब धुएं में कन्वर्ट होकर हवा में भरा है। लाखों करोड़ों टन पेट्रोल जल चुका है। जो है वो अगले पचास–साठ साल में जल जाएगा, सब धुआं ही धुआं, अब इसके जो दुष्परिणाम होंगे, भुगतने होंगे। ये आपका कर्म नहीं

है, ना आपने पेट्रोल की खोज की, ना आपने डीजल से चलने वाले इंजन बनाए, लेकिन वो तो आप से पहले लोग बना कर चले गए, आप क्या कर सकते हो? हां, अभी जो आप कर सकते हो, करो। आप के हाथ में कुछ स्वतंत्रता है। सौ परसेंट नहीं है, बहुत थोड़ी सी स्वतंत्रता है। इसमें आप अकर्मण्य भी नहीं होंगे और अहंकारी भी नहीं होंगे। आप अपना कर्म विवेकपूर्वक, जो ठीक लगता है, सो करते चलो। परिणाम की चिन्ता नहीं करो, क्योंकि परिणाम बहुत से फैक्टर्स पर निर्भर है, वो केवल हम पर निर्भर नहीं है। यही बात भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं अर्जुन से कि तू अपना कर्म किये जा फल की चिन्ता ना कर, वो तेरे हाथ में है ही नहीं, वो तो मल्टिपल फैक्टर्स हैं। निश्चित ही उन मल्टिपल फैक्टर्स में से एक फैक्टर तुम्हारा कर्म भी है। तो वो जो फल आएगा उसमें तुम्हारा कन्ट्रीब्यूशन होगा। एक छोटा सा कन्ट्रीब्यूशन उसमें होगा, तो उतना करते चलो। तुम्हारी बुद्धि और विवेक से, तुम्हारे भाव से जो तुम्हें उचित लगता है, उसके लिए तुम स्वतंत्र हो, अपना योगदान देते जाना, इसमें अहंकार मत लाना कि अब मेरी इच्छानुसार चीजें हो ही जाएं, ये कोई जरूरी नहीं है, आप करने के लिए स्वतंत्र हो, परिणाम लाने के लिए स्वतंत्र नहीं हो। परिणाम तो हजारों–हजारों बातों के मिश्रण से आएगा। जब आप इस भांति देखोगे, ना अहंकार को खड़े होने की कोई जगह है और ना ही आलस्य के बचने का कोई स्थान है। यही सम्यक् दृष्टि होगी।

एक मित्र ने पूछा है कि समाधि के भीतर और बाहर अंतर–आकाश और बहिर्आकाश दोनों एक लगते हैं और लगता है कि शरीर तो है ही नहीं, बस आकाश ही आकाश है, यह क्या है?

बहुत सुन्दर हो रहा है। आप पूछते हैं यह क्या है? यही सत्य है। इसमें और–और डूबो। इसके सौंदर्य का रसपान करो। सवाल न उठाओ, समाधि–सुरा पियो।

आज के प्रश्न समाप्त। धन्यवाद।

जय ओशो।

विचार तथा अंतः प्रेरणा

प्यारे मित्रों, इंट्यूशंस और नॉर्मल थिंकिंग में भेद समझना आध्यात्मिक साधना में सहयोगी होगा। सांसारिक जीवन में भी उपयोगी होगा। मन में इतने विचार चलते रहते हैं, उसमें कभी–कभी कुछ बड़ी सूझबूझ की बात इंट्यूटिवली आ जाती है। लेकिन उस भीड़ में यह पता लगाना मुश्किल है कि वह सामान्य भीड़ का हिस्सा है या अलग से कुछ आया है। सभी लोगों को कुछ–न–कुछ इंट्यूटिवली आता है। महिलाओं को विशेषकर पुरुषों से ज्यादा। भीतर से एक इंट्यूशन, अंतःप्रेरणा आती है। लेकिन विचारों की बड़ी भीड़ में पहचानना मुश्किल है कि कौन–सी चीज हमारे अंतःकरण से आई और कौन–सी हमारे सामान्य मन के विचारों की भीड़ है।

हमें थोड़ा ध्यान सीखना होगा ताकि हम थॉटलेस अवेयरनेस में ज्यादा से ज्यादा डूबने लगें। वह विचारों की भीड़ कम हो जाए। वह मन की पट्टी पर जो विचार दौड़ रहे हैं, बड़ा भारी ट्रैफिक, ट्रैफिक क्या, पूरा ट्रैफिक जैम, इसमें कुछ पता ही नहीं चलता कि बाहर से कुछ आया है। पूरा मेला लगा हुआ है। उथल–पुथल मची है। अगर हम थॉटलेस अवेयरनेस की झलकें पाने लगें, थोड़ा उसमें स्थिर होने लगें, तब हम पकड़ पाएंगे कि कोई नई चीज आई अचानक, जो कि हमारे विचारों का हिस्सा नहीं थी। उस बारे में हम नहीं सोच रहे थे। या कभी–कभी ऐसा होता है कि हम उस बारे में सोच रहे थे, किसी समस्या का समाधान ढूंढ़ रहे थे, किंतु हम जिस दिशा में सोच रहे थे, उससे बिल्कुल हटकर कुछ समाधान आ गया। तब कहा जा सकता है कि वह इंट्यूशन से आया है।

यह इंट्यूशन शब्द भी बड़ा अच्छा है। कोई बच्चा किसी शिक्षक से अलग से पढ़ता है, स्कूल के अतिरिक्त। उसको हम कहते हैं ट्यूशन पढ़ रहा है। ट्यूशन का मतलब बाहर से कुछ सिखाया जा रहा, पढ़ाया जा रहा है। इंट्यूशन का मतलब अंतःप्रेरणा। भीतर से कोई चीज आई। हम जो सोचेंगे, विचारेंगे, वे हमेशा बाहर से आई हुई चीजों का होगा। सारे विचार बाहर से सीखी गई बातों के जोड़–तोड़ से निर्मित होते हैं। आप सोच सकते हैं एक उड़ता हुआ घोड़ा। लेकिन यह कोई नई बात नहीं है। आपने उड़ने वाले पंछी देखे हैं और घोड़ा भी देखा है। आपने एक नया संयोगिक जोड़–तोड़ बना लिया। पंछी के पंख आपने घोड़े में लगा दिए और घोड़े को उड़ा दिया। यह कुछ नया नहीं है। यह मन का ही हिस्सा है। पुराने ज्ञान से ही पैदा हुआ है। इंट्यूशन में बिल्कुल नई बात आती है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

आर्केमडीज की कथा आप सबको पता होगी। इंट्यूशन का उससे आपको उदाहरण मिल जाएगा।

सम्राट ने एक सोने का मुकुट बनवाया था। सुनार ने बहुत ही सुंदर मुकुट बनाया। राजा को बहुत पसंद आया, लेकिन एक संदेह उत्पन्न हो गया कि कहीं इसमें कुछ मिलावट तो नहीं कर दी। यह शुद्ध सोना है कि नहीं है। राजा के दरबार में अत्यंत विद्वान समझा जाने वाला व्यक्ति था आर्केमडीज। सम्राट ने आर्केमडीज को यह पहेली दी हल करने के लिए कि इस मुकुट का पता लगाओ कि इसमें कुछ मिलावट तो नहीं है। लेकिन मुकुट को तोड़ना नहीं है। क्योंकि मुकुट इतना सुंदर है कि इसको मैं नष्ट नहीं करना चाहता। बड़ी खूबसूरत डिजाइन बनाई है, ऊपर से फूल–पत्तियां बनाई हैं, बहुत ही खूबसूरत है। तो मुकुट को नष्ट किए बगैर पता लगाओ कि यह शुद्ध सोना है कि नहीं है।

आर्केमडीज ने बहुत सोचा, विचारा, महीनों पर महीने गुजर गए, वह सम्राट बार–बार पूछता कि कुछ सॉल्यूशन निकला? आर्केमडीज कहता कि अभी तक तो नहीं निकला, मैं लगा हूं। उस समय जितनी जानकारी उपलब्ध थीं उस सब के अनुसार चिंतन–मनन चल रहा था। याद रखना! मन के जो विचार हैं, ज्ञात जानकारी पर ही आधारित हो सकते हैं। समथिंग ऑलरेडी नोन, परिचित, जानी–पहचानी सूचनाएं। उन्हीं पर आधारित हो सकते हैं विचार। पर इंट्यूशन का मतलब है कुछ अपरिचित, अज्ञात चीज अचानक आई। आर्केमडीज बेचारा लगा रहा, लगा रहा। सम्राट ने कहा छोड़ो फिर, तोड़कर ही देख लें। आर्केमडीज ने कहा नहीं, बिना तोड़े ही पता लगेगा। कुछ–न–कुछ उपाय निकलेगा। आप थोड़ा धीरज रखिए। बात तो करीब–करीब असंभव लग रही थी। फिर एक दिन ऐसा हुआ कि आर्केमडीज अपने बाथरूम में स्नान के लिए गया था। अब स्नान में तो रिलैक्स हो जाता

है आदमी। किसी समस्या के बारे में नहीं सोच रहा था। बाथ टब पूरा पानी से भरा हुआ था। जब आर्कमडीज बाथ टब में उतरा उसके लेटते ही काफी पानी बाहर गिर गया। निश्चित रूप से यह जो पानी बाहर गिरा, इसका वॉल्यूम आर्कमडीज के शरीर के वॉल्यूम यानी आयतन के बराबर है। बस! सूझ पैदा हो गई कि सोने का आयतन और उसका वजन तौल लिया जाए और मुकुट का वजन और आयतन तौल लिया जाए। अगर वे दोनों बराबर हैं, तो शुद्ध सोने का है वह।

समझो एक किलो का मुकुट है, तो एक किलो शुद्ध सोना पानी में डुबोया जाए। कितना पानी बाहर निकला, वह पता लगाया जाए। फिर मुकुट को डुबोया जाए और कितना पानी बाहर निकला, वह देखें। अगर दोनों में बराबर पानी निकला, तो सिद्ध हो गया कि शुद्ध सोने से बना है मुकुट। अगर अंतर है दोनों में, तो सिद्ध हो गया कि मुकुट शुद्ध सोने का नहीं बना। क्योंकि हर चीज की स्पेसिफिक ग्रेविटी, आपेक्षिक घनत्व अलग–अलग है। एक नई सूझ–बूझ पैदा हुई। एकदम से वह टब से बाहर निकला, भागा सड़क पर चिल्लाते हुए यूरेका! यूरेका! मिल गया! मिल गया! सम्राट के राजदरबार की तरफ भागा। लोगों ने देखा इस आदमी को क्या हुआ? नग्न भाग रहा है। लोगों ने रोका और कहा कि आर्कमडीज क्या हुआ? तुम निर्वस्त्र कहाँ जा रहे हो? तब उसको ख्याल आया कि अरे! कपड़े नहीं पहने। इतनी खुशी में था वह। छह–सात महीने से जिस पहेली को हल करने की कोशिश कर रहा था, हो गई हल। कब हुई? जब वह रिलैक्स्ड था। जब वह पहेली को हल नहीं कर रहा था, तब हल हुई। अचानक एक नई सूझ पैदा हुई। सात किलो लोहे को डुबाएंगे, तो करीब एक लीटर पानी बाहर निकलेगा। सब धातुओं में अलग–अलग होगा। स्पेसिफिक ग्रेविटी अलग है। सोना भारी धातु है। एक लीटर सोने का वजन बीस किलो होता है। एक लीटर चांदी का वजन दस किलो होता है। एक लीटर लोहे का वजन सात किलो होता है। सबका अलग–अलग है, बड़ा भेद है। सोने से तो बहुत डिफ्रेंट हैं सब। कहाँ सोना, स्पेसफिक ग्रेविटी लगभग बीस और कहाँ चांदी, स्पेसिफिक ग्रेविटी केवल दस। अर्थात् दो किलो सोना जितने पानी को बाहर निकालेगा, एक किलो चांदी उतना पानी बाहर निकालेगी। बहुत फर्क हो गया।

यह तो पकड़ में आ जाएगा कि मुकुट किस चीज से बना है। मिश्रित है कि शुद्ध है। गणितीय सिद्धांत तो बाद में निकाला, लेकिन उस एक क्षण में जो सूझ पैदा हुई, मुझे बताने में देर लगी आपको। आर्कमडीज को जो सूझ पैदा हुई, इंट्यूशन आई, वह तो एक सेकेंड में आई, एक सेकेंड में... इसलिए तो खुशी में निर्वस्त्र बाहर भागा! फिर बैठकर हिसाब–किताब लगाया और प्रयोग किए और पता चला कि सब चीजों की स्पेसिफिक ग्रेविटी अलग–अलग

है। एक सेकेंड में एक नई सूझ पैदा हुई। यह सूझ पुराने ज्ञान से बिल्कुल हटकर थी। आर्केमडीज के पहले आपेक्षिक घनत्व के बारे में किसी को नहीं पता था। समथिंग टोटली न्यू––यह इंट्यूशन से आया।

ठीक ऐसे ही आप देखेंगे मैडम क्यूरी ने रेडियम की खोज की। मैडम क्यूरी अकेली महिला हैं जिनको दो बार नोबल पुरस्कार मिला और जिस खोज में नोबल पुरस्कार मिला, रात को सपने में उठकर उन्होंने वह सॉल्यूशन लिखा था। सालों से लगी थीं प्रॉब्लम हल करने में, नहीं हो रहा था। कई–कई प्रयोग किए। रात सपने में उठकर उन्होंने उसका उत्तर लिखा, फिर सो गईं। उनको पता नहीं, जब सुबह नींद खुली तो उन्होंने देखा कि टेबल पर जो कागज रखा है, उसमें आंसर लिखा हुआ है। वे तो हैरान हुईं, यह तो सॉल्यूशन है उनकी समस्या का। पर यह रात को लिख कौन गया? कमरे में और कोई तो है नहीं। फिर लिखावट गौर से देखी, तो लिखावट तो मेरी ही है। हद हो गई। फिर उन्होंने अनुमान लगाया कि शायद मैंने सपने में उठकर लिखा है। याद तो नहीं पड़ रहा, पर लिखावट से सिद्ध होता है कि लिखा तो मैंने ही है। नींद में रिलैक्स्ड हो गई थीं। जैसे आर्केमडीज बाथरूम में नहाते हुए रिलैक्स्ड हो गया था, भूल–भाल गया था समस्या को, तब जाकर उत्तर निकला। ठीक वैसे ही, अन्य वैज्ञानिकों की अगर आप जीवन कथा पढ़ें, तो आप पाएंगे अधिकांश लोगों को चिंतन–मनन करने से उत्तर नहीं मिला। उनके चिंतन–मनन से भूमिका तैयार हुई कि अब वे उत्तर को रिसीव कर सकते हैं। लेकिन उत्तर कहीं से अचानक आया, वे रिसेप्टिव थे। लेकिन जब रिलैक्स्ड थे, तब उत्तर आया। जब स्वयं हल करने में लगे थे, तब टेंशन में थे। उस अवस्था में बहुत विचार चल रहे थे। नॉरमल से भी ज्यादा, विचार ही विचार। बड़ी चिंता में थे, तनाव में थे। उस समय उत्तर नहीं आया। लेकिन उससे एक भूमिका निर्मित हो गई, इसके बाद जब वे रिलैक्स हुए, अचानक कुछ सूझ पैदा हुई जो कि सोच भी नहीं सकते थे कभी, ऐसी कोई बात आ गई!

इसलिए मैंने आपसे कहा है इंट्यूशन और सामान्य विचारों में भेद करना थोड़ा कठिन है। लेकिन ये जो मैंने उदाहरण दिए इससे आप समझ लीजिए। आप अपनी पूरी कोशिश कीजिए, एक समय आएगा जब आप बिल्कुल थक जाएंगे और किसी भिन्न परिस्थिति में आप बिल्कुल रिलैक्स्ड होंगे और तब अचानक आप पाएंगे कुछ हुआ। कुछ आया अदृश्य से। वह इंट्यूशन है। महिलाएं पुरुषों से ज्यादा रिसेप्टिव हो सकती हैं, क्योंकि उनके मन में इतने ज्यादा विचार नहीं चलते। पुरुष ज्यादा बुद्धि केंद्रित हैं, महिलाएं ज्यादा भाव केंद्रित हैं और इसलिए महिलाएं अगर कुछ कहती हैं इंट्यूटिवली, उनकी बात पर गौर करना।

समझो कोई पत्नी कह रही है कि आज आप यात्रा पर जा रहे हो, मत जाओ, कैंसल

कर दो। अब भीतर से कुछ आया है। मत जाना। यद्यपि वह तर्क से सिद्ध नहीं कर सकती, क्यों ऐसा कह रही है, लेकिन उसकी बात में दम है। हो सकता है कोई दुर्घटना होने वाली हो, जिस वाहन से आप जा रहे हैं। वह रोक रही है, तो रुक जाओ। बुद्धि मत लड़ाना, तर्क नहीं करना। आर्ग्युमेंट में तो उसका पति जीत जाएगा, लेकिन इंट्यूशन वजनदार है।

बुद्धि से आप भविष्य का अनुमान नहीं लगा सकते और इंट्यूशन से भविष्य जाना जा सकता है। महिलाएं अक्सर क्या करती हैं? उनको पता है कि पति से तर्क करने में तो वे हार जाएंगी। तो यह कहना व्यर्थ है कि मत जाओ। वे कुछ और करेंगी, पेट में दर्द होने लगा। बिल्कुल इमरजेंसी... लो, डॉक्टर को बुलाओ, इलाज कराओ। कैंसल करना ही पड़ेगा जाना। परोक्ष तरीके से वे मजबूरी की हालत पैदा कर देंगी। जैसे ही आपका समय निकल गया ट्रेन का, पेट दर्द भी अच्छा हो जाएगा थोड़ी देर में। यह रोकने का इनडायरेक्ट उपाय था। मैं मानता हूं कि महिलाओं को इन्ट्यूशन ज्यादा आता है। क्योंकि उनके भीतर विचारों की भीड़ कम है, वे बुद्धि केंद्रित नहीं हैं।

प्यारे मित्रों, इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है। इस अवसर को यूं ही मत गंवा देना। आंतरिक सूझ-बूझ और प्रेरणा से जीना। तब जीवन की प्रसुप्त संभावनाएं अंकुरित होने लगती हैं। वे बीज की भांति हैं। उन्हें मौका मिला तो विराट वृक्ष बन जाएंगी। अन्यथा तीव्र गति से गुजर रहे विचारों की ट्रैफिक में कुचलकर बीज नष्ट भी हो सकते हैं।

आज की चर्चा को यहीं विराम देते हैं। धन्यवाद।

जय ओशो।

चिंताओं से मुक्त जिंदगी कैसे हो?

प्यारे मित्रों, हर समय मन में डर बना रहता है कि कुछ गलत न हो जाए--इस तरह की निगेटिव भावना, कुछ अशुभ होने की आशंका बहुत लोगों के मन को घेरे रहती है, खासकर महिलाओं के चित्त को अधिक; और इससे बड़ा नुकसान होता है। जीवन में जो उत्साह होना चाहिए, वह नष्ट हो जाता है। ऐसी मनःस्थिति में लोग क्या करें? मैं निवेदन करूंगा कि सम्मोहन प्रज्ञा करके सीखें कि कैसे पॉज़िटिव भावना अपने भीतर डाली जाए। फिर कम-से-कम बीस मिनट रोज सोने के पहले अपने घर में प्रयोग करते रहें तीन महीने तक। तब उम्मीद की जा सकती है कि यह निगेटिव भावना समाप्त हो जाएगी।

याद रखिए! जो निगेटिव चीजें हमारे भीतर हैं, डायरेक्टली हम उनसे डील नहीं कर सकते। लेकिन उसके ठीक विपरीत नई पॉज़िटिव भावना का बीजारोपण हम अपने भीतर कर सकते हैं। यह निगेटिव भावना भी धीरे-धीरे इसी प्रकार बैठी है, सुनते-सुनते। चारों तरफ के लोगों ने हमारे भीतर डाल दी है। खासकर जिन बच्चों के पालन-पोषण में, अतिशय प्रेम और लाड़-प्यार बढ़ता जाता है, उनके साथ ऐसा हो जाता है। उन्हें कुछ करने नहीं देते, कहीं कुछ गलत न हो जाए। सड़क पर नहीं जाना, कहीं चोट न लग जाए, बच्चों के साथ नहीं खेलना, कहीं ऐसा न हो जाए, कहीं वैसा न हो जाए। खूब ज्यादा उनको प्रोटेक्ट किया जाता है, रक्षा की जाती है उनकी। पानी में नहीं जाना, डूब जाओगे। यह नहीं करना, ऐसा हो जाएगा, वैसा हो जाएगा। धीरे-धीरे बच्चे के मन में खूब निगेटिव भावना भर जाती है।

माता–पिता ने, परिवार के अन्य लोगों ने तो अच्छे के लिए किया था कि बच्चे को कहीं कोई चोट न लगे, कोई हानि न हो जाए, कोई खतरा न हो जाए। सब प्रकार के खतरों से उसे बचाया। लेकिन सुनते, सुनते, सुनते बच्चे के मन में धारणा बैठ गई कि कुछ गलत होने वाला है, या होगा। फिर यह भावना अतिशय हो जाती है। याद रखना! डर यूं तो सुरक्षात्मक है, किंतु जरूरत से ज्यादा हो जाए तो फिर वह स्वयं ही हानिप्रद हो गया। प्रकृति ने हमको भय दिया है, स्वाभाविक रूप से हमें होना चाहिए, क्योंकि उसी से हमारी सुरक्षा होगी, हम अपने आप को बचा पाएंगे। लेकिन एक सीमा से ज्यादा हो गया, तो फिर वही हानिप्रद हो जाता है।

इसको ऐसा समझना जैसे कोई औषधि है। उसकी एक मात्रा फिक्स्ड है कि आपको पांच सौ मिली ग्राम की एक गोली खानी है, पांच सौ मिली ग्राम तक वह फायदेमंद है। अब आप पांच सौ ग्राम खा लो, तो वही ज़हर हो जाएगी।

ठीक ऐसे ही प्रकृति ने जो हमको भावनाएं दी हैं, एक सीमा तक वे हमारे लिए फायदे की हैं, एक सीमा के बाद वही हमें नुकसान पहुंचाने वाली हो जाती हैं। भय की तरह ही आप क्रोध को समझना। एक सीमा तक लाभकारी है। लेकिन एक सीमा के बाद अगर उसने ओवरपावर कर लिया, वह बिना जरूरत के हो रहा है, तब वही नुकसान पहुंचाने वाला हो गया। डर लगना बिल्कुल स्वाभाविक है, जरूरी है। नहीं तो हम अपने आप को कैसे बचाएंगे। लेकिन अगर यह अतिशय हो गया, बहुत ज्यादा हो गया, तो फिर हमारा जीना ही हराम हो जाएगा। हम उन छोटी–छोटी बातों से डर रहे हैं, जहाँ डरने की जरूरत ही नहीं थी और हमेशा लग रहा है कि कुछ गलत न हो जाए, कुछ गलत न हो जाए। इस डर की वजह से फिर जो हमें करना चाहिए, हमारे योग्य जो कर्म है, हम वह भी नहीं कर पाते।

सावधान! साहस हमारा खतम हो जाएगा अगर भय अतिशय हो गया तो। हमारे जीवन से कर्मठता कम हो जाएगी। भय की वजह से हम कुछ करने से चूक जाएंगे, हिम्मत नहीं होगी, आशा की जगह निराशा हमें घेरे रहेगी। यह तो ठीक नहीं हुआ। खूब अच्छे से समझना। मैं भय के विरोध में नहीं हूं। एक मात्रा तक वह उपयोगी है। जैसे औषधि का मैंने आपको उदाहरण दिया। ठीक ऐसे ही आप अन्य उदाहरण से समझ सकते हैं। आपने सुना होगा एलर्जिक बीमारियां होती हैं, ऑटो इम्यून डिजीज होते हैं। इनमें हाइपर सेंसिटिविटी हो जाती है। हमारे भीतर सेंसिटिविटी हो, इम्यूनिटी हो, यह तो बिल्कुल ठीक है। लेकिन जब वह हाइपर, ज्यादा मात्रा में हो गई, तब नुकसानदायी हो गई। इम्यूनिटी जरूरी है। कोई कीटाणु हमला करता है, बैक्टीरिया, वायरस, तो हमारा शरीर, अगर उसमें इम्यूनिटी है या सेंसिटिविटी है, तो उसको वह पहचान लेगा और उसको नष्ट कर देगा और हमको बीमारी नहीं हो पाती। यहाँ तक तो बिल्कुल ठीक। हाइपर सेंसिटिविटी या ऑटो इम्यूनिटी का मतलब है कि हमारा इम्यून सिस्टम बिना काम के अटैक कर रहा है, हमला कर रहा है। वह पहचान ही नहीं पा रहा है कि यह

बैक्टीरिया वायरस नहीं है; बल्कि हमारे शरीर का ही सेल है। खासकर ज्वाइंट्स के सेल, किडनी के सेल और हृदय के सेल। हमारा इम्यून सिस्टम एक प्रकार से विक्षिप्त हो गया, पागल हो गया और वह अपने ही शरीर के सेल्स को नष्ट करने लगा। इससे हृदय के वाल्व खराब हो जाएंगे, किडनी खराब हो जाएगी, ज्वाइंट्स में दर्द होने लगेगा। जिसको कहते हैं रूमेटाइड आर्थराइटिस, गठिया का रोग। यह इम्यून सिस्टम जो हमें कीटाणुओं से बचाने के लिए बना था, इसके ओवर ऐक्टिव हो जाने से ये बीमारियां पैदा हो रही हैं। वह हमारे ही शरीर के सेल्स को नष्ट करने लगा।

कहते हैं न, रक्षक ही भक्षक हो गए। अक्सर पुलिसवालों के लिए उदाहरण दिया जाता है कि उन्हें रक्षा के लिए तैनात किया गया था कि नियम–कानून का पालन हो और वही कारण बन जाते हैं अपराध करवाने के। इसको ऐसा समझो कि जैसे सेना तैनात की गई है सीमाओं पर कि शत्रुओं से रक्षा करना। और सेना के लोग पागल हो जाएं और वे अपने ही देश के लोगों को मारने लगें, उन पर बंदूकें चलाने लगें। हाइपर ऐक्टिव; वे कह रहे हैं हम तो बंदूक चलाएंगे, कहीं भी चलाएंगे, शत्रु नहीं है तो क्या हुआ? वे पहचानना ही भूल गए कि कौन अपने देश का है, कौन परदेसी है, हर किसी को मारने लगे।

ऐसा हमारे इम्यून सिस्टम के साथ जब हो जाता है, उसको बोलते हैं ऑटो इम्यून डिजीज; एलर्जी की बीमारियां। अपने ही शरीर से एलर्जी हो गई। खासकर गठिया, जिससे बहुत लोग परेशान होते हैं, हृदय के वाल्व का खराब होना, किडनी की बीमारियां इस प्रकार से होती हैं। अब इस उदाहरण से आप समझना कि भय अथवा क्रोध अथवा अन्य निगेटिव भावनाएं एक सीमा तक बहुत उपयोगी है, सेना की भांति। लेकिन अगर वे हाइपर ऐक्टिव हो गए, उन्होंने ओवरपावर कर लिया, जरूरत से ज्यादा, जहाँ आवश्यकता नहीं थी, वहाँ भी बिना काम के वे सक्रिय हैं, तब वे नुकसानदायी हो गए।

तो भय उपयोगी है। माता–पिता बच्चे को डराएंगे यह भी स्वाभाविक है, यह होगा ही होगा, इससे हम बच नहीं सकते। बच्चे को क्रोध आना चाहिए, यह भी ठीक है। लेकिन एक सीमा तक ठीक है। अब कैसे इसको दूर करें। आप ऑटो सजेशन की कला सीखकर, सेल्फ हिप्नोसिस की कला सीखकर इससे छुटकारा पा सकते हैं और एक नई पॉज़िटिव भावना अपने भीतर डाल सकते हैं। यह संभव है।

प्यारे मित्रों, इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है––यह केवल एक अवसर है––लोहे को सोने में, नरक को स्वर्ग में, कांटों को फूलों में परिवर्तित करने का मौका है। अगर ठीक से उपयोग किया तो जिंदगी में चमत्कार हो सकेगा। सब अंधेरा मिट जाएगा, जीवन रोशन हो सकेगा।

आज की चर्चा को यहीं विराम देते हैं। धन्यवाद। जय ओशो।

जिंदगी में जागने के तीन उपाय

प्यारे मित्रों, कुछ विशेष उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु हम जन्म लेते हैं, फिर जिंदगी की आपाधापी में उलझकर उस उद्देश्य को हम भूल जाते हैं। उस लक्ष्य के प्रति हमें कौन जगायेगा? कैसे हमें स्मरण दिलायेगा? इस महत्वपूर्ण विषय को ठीक से समझें। तीन बातें हैं, जो हमें अपने उद्देश्य के प्रति सचेत कर सकती हैं। सबसे पहला तो जीवन, जीवन में घट रही घटनाएं। ज़रा गौर से देखोगे, तो तुम्हें दिखाई देने लगेगा कि क्या है निरर्थक, व्यर्थ। और समझ में आने लगेगा कि सार्थक क्या है? अपना उद्देश्य याद आने लगेगा।

दूसरी चीज है मृत्यु। अगर जीवन से तुम न जाग सको, न सीख सको तो मृत्यु से सीखो। ढाई लाख आदमी रोज पृथ्वी से विदा हो जाते हैं। कल तक वे भी हमारी तरह चल–फिर रहे थे, बातें कर रहे थे। आज नहीं हैं। एक दिन हम भी यहाँ नहीं होंगे।

जिस व्यक्ति को मृत्यु का स्मरण आने लगा उसका जीवन रूपांतरित होने लगता है। फिर वह उसी ढंग से नहीं जी सकता जैसे पहले जी रहा था। तुम जो कर रहे हो, तुम जिसे महत्वपूर्ण समझ रहे हो, ज़रा मृत्यु की कसौटी पर कसकर देखना, ज़रा ख्याल करना कि मैं मर जाऊंगा, इस चीज का कितना महत्व है। कोई आदमी धन कमाने के पीछे दीवाना है। ठीक है धन उपयोगी है एक सीमा तक, अवश्य कमाना। लेकिन यह जो पागलपन सवार हो गया है कि कमाते ही जाना है, ज़रा मृत्यु की कसौटी पर कसकर देखना, क्या इसका कोई उपयोग है? एक दिन मैं मर जाऊंगा। क्या फर्क पड़ता है कि मैं मध्यम वर्ग का था, संपन्न था, या अति संपन्न था, या दुनिया के अमीरों में से एक था। कोई फर्क पड़ता है क्या?

आपने सुनी होगी कहानी। विश्व विजेता सिकंदर भारत से जब लौट रहा था, तब

बीमार पड़ गया। उसने अपने डॉक्टरों से कहा कि मुझे बचाओ। डॉक्टरों ने कहा कि माफ करिए इस बीमारी का कोई इलाज नहीं है। सिकंदर ने कहा हद हो गई, किसी भी तरह मुझे वापिस यूनान पहुंचना है। कम–से–कम मैं अपनी मां को जाकर बता तो दूं कि तुम्हारे बेटे ने पूरे विश्व को जीत लिया। उस समय जितना विश्व पता था, उसको पूरे को जीत लिया। चिकित्सकों ने कहा कि क्षमा कीजिए हमारे बस के बाहर है यह। अब आप एक–दो दिन के मेहमान हैं बस। सिकंदर ने कहा मैं अपना चौथाई राज्य तुम्हें दे दूंगा। डॉक्टरों ने नजरें झुका लीं। सिकंदर ने कहा आधा राज्य। आधी दुनिया। डॉक्टरों ने कहा माफ कीजिए यह कोई सौदेबाजी का सवाल नहीं है। इस बीमारी का इलाज ही नहीं है।

सोचो सिकंदर को कैसा लगा होगा? इस दुनिया को जीतने के लिए उसने कितने लोगों का खून बहाया। एक छोटी–सी बीमारी से भी छुटकारा नहीं हो सकता। उसने कहा पूरा राज्य ले लो, मगर किसी तरह मुझे बचाओ। दूसरे दिन सिकंदर मर गया। सोचो कितना फ्रस्ट्रेशन और विषाद में मरा होगा कि हद हो गई! पूरी दुनिया दे रहा हूं मैं। उसके पहले तक तो किसी ने दुनिया जीती न थी। वह पहला ही व्यक्ति था, न उसके बाद में कोई वैसा विश्व विजेता बन सका। मरने के जस्ट पहले उसने कहा कि मेरे हाथ अर्थी के बाहर लटके रहने देना; ताकि लोग देख लें कि विश्व विजेता सिकंदर भी खाली हाथ जा रहा है। यहाँ से हम धूल का एक कण भी नहीं ले जा सकते। तो मृत्यु की कसौटी पर कसकर देखना।

पहला तत्व मैंने आपसे कहा जीवन। जीवन का निरीक्षण करो और तुम जाग जाओगे और असली उद्देश्य याद आ जाएगा। दूसरा तत्व कहा मृत्यु। मृत्यु की कसौटी पर कसो कि हम जो कर रहे हैं, यह कितना महत्वपूर्ण है या सार्थक है। और तुम जागोगे, चेतोगे। तीसरा तत्व है सद्गुरु। हो सकता है न जीवन तुम्हें जगा सके, न मृत्यु तुम्हें जगा सके। क्योंकि जीवन और मृत्यु हमारे जैसी भाषा नहीं बोलते। कोई कम्यूनिकेशन नहीं होता। तुम्हें ही बड़े गौर से समझना होगा विवेकपूर्वक। इसलिए मुश्किल है। अब तीसरा तत्व सद्गुरु। वह एक मनुष्य है, हमारे जैसी भाषा बोलता है, उससे समझ लो।

तीन तत्व हैं जगाने वाले, उद्देश्य की याद दिलाने वाले। आपने पूछा है कि आत्मलोक में जो प्रॉमिस करके आए हैं, जन्म लेने के बाद हम उसी उद्देश्य को भूल गए। कौन याद दिलाएगा? जो बहुत प्रज्ञावान लोग हैं, वे जीवन से ही जाग जाते हैं। जो उनसे कम प्रज्ञावान हैं, वे मृत्यु के स्मरण से जाग जाते हैं।

कथा है चीन के संत लाओत्सू की। एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। पतझड़ का मौसम था। एक पीला पत्ता ऊपर से गिरा लहराता हुआ सीधे जमीन पर, धूल में बैठ गया। बस इतनी–सी घटना और लाओत्सू परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए। एक पीले पत्ते ने जगा दिया। ऐसे ही एक दिन हम सूख जाएंगे, समाप्त हो जाएंगे, मिट्टी में मिल जाएंगे; जैसे पत्ता धूल–धूसरित हो गया। हम जो भी कर रहे हैं, पा रहे हैं, उस सबका क्या मूल्य है? हमारे

जैसे खरबों–खरबों लोग हो चुके। उन्होंने क्या–क्या नहीं किया होगा, क्या–क्या नहीं सपने संजोए होंगे। क्या उस सबका कोई अर्थ हुआ? अगर हिसाब लगाएं कि जब से मनुष्य जाति है, तब से आज तक कितने मनुष्य हो चुके, तो पूरी पृथ्वी पर जितनी जगह में हम बैठे हैं, उतनी जगह में कम–से–कम दस मनुष्यों की लाशें गड़ी हैं। ग्यारहवें हम कब हो जाएंगे कोई नहीं जानता। हम लोग तो साधारण जन हैं, बड़े–बड़े हिटलर और सिकंदर जब मिट्टी में मिल जाते हैं और उनके किए धरे का कोई निशान नहीं रह जाता... मेरी और आपकी क्या बिसात है? तब हम अचानक जागेंगे, चौंकेंगे। सार्थकता का ख्याल आना शुरू होगा कि फिर सार्थक क्या है? उस दिशा में खोजबीन शुरू हो जाएगी।

तीसरा तत्व मैंने कहा सद्‌गुरु। अगर मृत्यु भी न जगा सके, तो फिर कोई गुरु ही जगा सकता है। लेकिन वह जगा तभी पाएगा, जब तुम्हारे भीतर शिष्यत्व की भावना आ गई हो। गुरु स्वयं अपने आप में अक्षम है। लेकिन अगर तुम सीखने को तैयार हो तो ठीक है। शिष्य का मतलब, जो सीखने को तैयार है। शिष्य से ही 'सिख' शब्द बना है। जो सीखने को तैयार है। क्योंकि सद्‌गुरु हमारी मानवीय भाषा बोल रहा है, उसकी बात हम समझ सकते हैं। जो सद्‌गुरु से भी न सीख सके, अर्थात् जिसके भीतर शिष्यत्व की भावना न जागे, फिर उसके लिए कोई उपाय नहीं है।

बस तीन ही उपाय हैं। सर्वाधिक विवेकपूर्ण के लिए जीवन, उससे कम विवेकपूर्ण के लिए मृत्यु और उससे भी कम विवेकपूर्ण के लिए सद्‌गुरु। चौथा कोई उपाय नहीं है।

प्यारे मित्रों, इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है। अब तो जागो। यहाँ मृत्यु भी व्यर्थ नहीं है, उसका भी सदुपयोग कर लो। और सत्संग खोजो, शायद वहाँ बात बन जाये!

आज की चर्चा को यहीं विराम देते हैं। धन्यवाद।

जय ओशो।

आनंदपूर्ण कर्म की कला

प्यारे मित्रों, कर्म के प्रति अकर्ता भाव साधने से जीवन के समस्त क्रिया-कलाप रसपूर्ण और आनंदमग्न हो जाते हैं। सामान्यतः कर्म के प्रति हमारी बड़ी गंभीरता है, सीरियसनेस। उसके साथ हमारा अहंकार, ईगो, प्रेस्टीज इशु एसोसिएटेड है, जुड़ा हुआ है। 'मैं भाव' जुड़ा है। मैं आपसे बोल रहा हूं, यह अहंकारपूर्ण हो सकता है, इज्जत का सवाल। क्या रेस्पॉन्स होगा, कि आप तालियां बजाएंगे या हूटिंग करेंगे। बड़ा गंभीर मामला हो गया। मैं कोई काम कर रहा हूं, धन कमा रहा हूं, नौकरी कर रहा हूं, व्यापार कर रहा हूं अथवा पढ़ाई-लिखाई... सफल होऊंगा कि असफल हो जाऊंगा, हारूंगा कि जीतूंगा; उसके साथ अहंकार जुड़ गया। अपमान और सम्मान जुड़ गया। असफलता का भय जुड़ गया। कर्म के मामले में हम बहुत गंभीर हो गए।

कल किसी मित्र ने पूछा कि कैसे अकर्ताभाव साधें? सीधा-सीधा तो संभव नहीं होगा। पहले इस बात को समझ लेना। अहंकार यानी कर्ताभाव। अहंकार के दो रूप हैं- एक स्थूल रूप, एक सूक्ष्म रूप। एक ग्रॉस, एक सटल; स्थूल रूप है कर्ताभाव और सूक्ष्म रूप है ज्ञाताभाव। मैं करने वाला हूं और मैं जानता हूं, आई नो; ये दो अहंकार के रूप हैं। एक अहंकार ऊपर-ऊपर से सबको दिखाई देता है- मैंने यह किया, मैंने वह किया, मैंने यह सफलता हासिल की है, मैं इस पथ पर पहुंच गया- यह अहंकार का बाहरी रूप। और दूसरा, मैं यह जानता हूं, मैं वह जानता हूं, मेरा ज्ञान इतना है- यह उसका सूक्ष्म रूप है भीतर-भीतर। अहंकार के मुख्य दो रूप हैं। एक तन से संबंधित, एक मन से संबंधित। कुछ लोगों को अपनी

बुद्धि का घमंड है, किसी को अपनी कर्मठता का घमंड है। ये इसके दो मुख्य रूप हैं।

इसलिए सीधा–सीधा हम कर्ताभाव को कैसे दूर कर सकते हैं कर्म के साथ। सीधा–सीधा नहीं कर पाएंगे। वह तो आपस में जुड़ ही गया है। सच पूछो तो हम कर्म कर ही इसलिए रहे हैं; क्योंकि इससे हमारा कर्ताभाव, अहंकार पुष्ट होता है। हमारी कामनापूर्ति होती है, इज्जत मिलती है; इसलिए हम कर्म कर रहे हैं। उनका बड़ा डीप एसोसिएशन है। जो हम कर रहे हैं अगर उसके लिए हमें इज्जत न मिले, सम्मान न मिले, हमारे बहुत से कर्म तो तुरंत ही बंद हो जाएंगे। वह अहंकार की खातिर ही हम कर रहे हैं।

कुछ दिनों पूर्व किसी ने मुझसे पूछा था कि पुराने जमाने में लोग बड़ा त्याग करते थे, तपस्या करते थे... समाज को छोड़ देते थे, परिवार को छोड़ देते थे, अब ऐसे त्यागवादी लोग नहीं होते, क्या कारण है? क्या लोगों की धर्म में रुचि समाप्त हो गई? मैंने उनसे कहा कि नहीं, इसका धर्म–अधर्म से कोई लेना–देना नहीं है। पुराने जमाने में त्यागी को सम्मान मिलता था, तपस्वी को सम्मान मिलता था, उस सम्मान की खातिर लोग त्याग–तपस्या करते थे। घर–परिवार छोड़ देते थे, सुख–सुविधा छोड़ देते थे, जंगलों में, पर्वतों में, कंदराओं में जाकर रहते थे। इज्जत थी, बहुत इज्जत थी संन्यासी की। आज के युग में फैशन बदल गया। फैशन बदलने में देर लगती है क्या? अब कोई आकर आपसे कहे कि मैं बड़ा तपस्वी हूं, जब सुबह–सुबह ठंड पड़ रही थी, मैं बिना जैकेट पहने खड़ा रहा, फिर दोपहर को जब तेज गर्मी हो गई तब मैं धूप में खड़ा रहा। आप उसकी इज्जत करोगे कि कहोगे चलो किसी साइकैट्रिस्ट को दिखाते हैं। तुम्हारा दिमाग खराब है! अरे जब ठंड लग रही थी तो जैकेट पहनना था और गर्मी लग रही थी तो ए.सी. या पंखे के नीचे जाना था। क्यों धूप में खड़े रहे, तुम्हारा दिमाग खराब है क्या?

अब हमारे मन में उसके लिए कोई सम्मान नहीं है, हम कहेंगे यह तो मेंटली सिक है। कोई इसको मानसिक बीमारी हो गई है। पुराने जमाने में बड़ी इज्जत थी। पता चलता था कि फलाने आदमी ने पंद्रह दिन से उपवास किया हुआ है, खाना नहीं खाया। लोग उसकी पूजा करने लगते थे। अब हम ऐसा नहीं करेंगे। हम कहेंगे इसको अस्पताल ले जाकर ग्लूकोज ड्रिप लगवाओ। हमारे सम्मान के तरीके बदल गए। आज धन का सम्मान है। जो व्यक्ति जितना धनी होगा, उसका उतना आदर है। इसलिए सब लोग धन कमाना चाहते हैं। उसके लिए जो भी कर्म करना पड़ेगा, वे करेंगे। क्योंकि इससे उनके अहंकार की पुष्टि होगी। याद रखना त्याग भी एक कर्म था। उसकी इज्जत थी। इसलिए लोग त्याग करते थे। आज धनवान होना इज्जत का कारण है। ऊंचे पद पर पहुंचना इज्जत है। ऊंची शिक्षा प्राप्त करना इज्जत की वजह है।

अब देखो लोग कितनी मेहनत करते हैं। ग्रेजुएशन, पोस्ट ग्रेजुएशन, डॉक्टरेट करते–करते पच्चीस–तीस साल मेहनत करते हैं। तब जाकर एक छोटी–सी डिग्री मिलती है। उतनी मेहनत करने के लिए तैयार हैं लोग; क्योंकि इससे सम्मान मिलेगा। पुराने जमाने में लोग जो कर रहे थे, वह भी आदर के लिए था और आज हम जो कर रहे हैं, यह भी आदर

के लिए है। इसका धर्म–अधर्म से कोई लेना–देना नहीं है। फैशन–फैशन की बात है।

हमारे सारे कर्म, यहाँ तक कि कर्मों का त्याग भी, हमारे अहंकार की खातिर है। और कर्ताभाव से बहुत गहराई से जुड़े हैं। हम वह कर्म करेंगे ही नहीं अगर उससे हमारे कर्ताभाव की, अहं की पुष्टि न हो। आज से मान लो बीस साल बाद फैशन बदल जाए, धनवान लोगों को बुरी नजर से देखा जाने लगे कि ये तो एक्सप्लॉएटर हैं, समाज का शोषण करते हैं, अपराधी हैं, जेल में बंद करो, कम्यूनिजम की विचारधारा आ जाए, सबकी दृष्टि बदल जाए। धनवान आदमी को हम ऐसे देखेंगे, यह जा रहा है एक्सप्लॉएटर, खून चूसने वाला। इसने समाज का शोषण किया है। और जो धन कमाए उसको भी गिल्ट फीलिंग होने लगे। बजाय ईगो फुलफिलमेंट के गिल्ट फीलिंग होने लगे कि जैसे वह अपराधी है, वह नजरें झुका कर चले। किसी को पता न चल जाए कि उसके पास इतना धन है। फैशन बदलने में देर नहीं लगती। हो सकता है दस–बीस साल में ऐसा फैशन आ जाए। तब लोग वैसा कर्म करने लगेंगे जिसमें इज्जत हो।

मुझे अपने बचपन की याद है, उस जमाने में अगर कोई बच्चे खेलते, कूदते, गीत गाते, संगीत बजाते थे, तो उनको बहुत डांट पड़ती थी। बर्बाद कर दोगे, कुल की इज्जत मिटा दोगे। यह नाचने, गाने वाले हमारे खानदान में कभी पैदा नहीं हुए, बंद करो! क्या खेल–खेल करते रहते हो। खतम हो गया बचपन, खेल खतम करो। उस समय कोई इज्जत नहीं थी। धीरे–धीरे विविध कलाओं की इज्जत होने लगी। आज खिलाड़ी की इज्जत है, आज अभिनेता की इज्जत है, संगीतकार की इज्जत है। अभी देखा तीन मित्र बजा रहे थे, आपके सामने संगीत प्रस्तुत किया, गीत गाया। आप सब लोगों ने कितनी खुशी से तालियाँ बजाईं।

हरि प्रसाद चौरसिया बचपन में जब बांसुरी बजाते थे, उनके पिता जी पहलवान थे; उस जमाने में पहलवानों की बड़ी इज्जत थी, कुश्ती लड़ने वालों की। मैंने वे दिन देखे हैं जब पहलवान हुआ करते थे। हर मोहल्ले में कोई होता था एक बड़ा पहलवान। दंड बैठक लगाता रहता था, तेल मालिश करता रहता था। यह उसका काम था। उसके दो–चार शागिर्द और वह उनको कुश्ती लड़ना सिखाता रहता, बड़ी इज्जत थी। आए दिन दंगल होते थे। अब कभी सुनने में भी नहीं आता। कहाँ गए वे पहलवान और वे दंगल। हरि प्रसाद चौरसिया की खूब पिटाई करते थे पिता जी। जैसे उन्हें पता चला बांसुरी बजाई, खूब पिटाई। उस समय बांसुरी बजाना बहुत ही बेइज्जती का काम था। और पहलवान का बेटा! तू क्यों बांसुरी बजाता है! बेचारे ने चोरी–छुपे सीखा है। घर में बांसुरी रख ही नहीं सकते थे। पिता जी तुरंत तोड़कर फेंक देंगे। जमाना बदल गया। आज हम जानते हैं बांसुरी वादन एक बहुत खूबसूरत कला है। इज्जत बदल गई। अब आप अपने घर में बच्चों को प्रोत्साहित करते हैं कि म्यूजिक सीखो। आज से पचास साल पहले डांट पड़ती थी अगर कोई म्यूजिक सीखता था तो। चोरी–छुपे करना पड़ता था।

बड़ी पुरानी बात है। एक बार बिहार में ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। उनकी उम्र पंद्रह, बीस साल थी। उन्होंने देखा दो बुजुर्ग सज्जन आपस में मिले। उनकी बातचीत से लगा कि दोनों बहुत सालों बाद एक दूसरे से मिले थे। ट्रेन में अनायास ही मुलाकात हो गई। उनकी बातचीत चल रही है, ये बैठे सुन रहे हैं। एक पूछ रहे हैं... और तुम्हारी पत्नी कैसी है, माता–पिता कैसे हैं और बच्चे क्या–क्या कर रहे हैं? अब तो बड़े हो गए होंगे, बहुत समय से नहीं देखा। फिर दूसरे सज्जन बता रहे हैं– एक जो है वह स्टेशन मास्टर हो गया है, बहुत अच्छी उसने पढ़ाई–लिखाई की, बड़ी सरकारी नौकरी मिल गई। दूसरा है वह व्यापारी है, फलाना–फलाना उसका बिजनेस है, अच्छा चल रहा है, खाता–पीता है, शादी हो गई, बच्चे हो गए। तीसरे की अभी पढ़ाई पूरी नहीं हुई है। अभी पढ़ रहा है, लगा हुआ है। वे सज्जन पूछ रहे हैं, बड़े बेटे का आपने जिक्र नहीं किया? तो वह उसकी बात को टाले जा रहे थे, उसकी चर्चा नहीं कर रहे थे। उसने फिर पूछा आपने तीन का तो बता दिया, बड़े वाले का क्या हुआ? तब उन्होंने कहा कि अरे आप क्या बार–बार पूछते हैं, बड़ी शर्म आती है बताने में। वह बंबई चला गया। आप तो जानते ही हैं कि वह पहले से ही नौटंकीबाज था। उसने बड़ी बदनामी की मेरी। वहाँ जाकर पता नहीं वह क्या करता है? फिल्म–विल्म में काम[illegible] गया। भई, यह कोई फिल्म अभिनेता के पिता जी हैं। इनको इंट्रेस्ट हुआ कि किसके? इन्होंने पूछा कि आपके बड़े बेटे का क्या नाम है? उन्होंने नजर झुका ली, बोले क्या बताएं? विश्वजीत उसका नाम है, उस जमाने का सुपरहिट कलाकार। नंबर वन हीरो में उसकी गिनती होती थी। और पिता जी आंख नीची करके कह रहे हैं, नाम बताने में उनको शर्म आ रही है कि लड़का नौटंकी करता था। जमाना बदल गया। याद रखना! जिस चीज की इज्जत है, उसी तरफ लोग दौड़ेंगे। संन्यासी की इज्जत थी, संन्यास की तरफ दौड़ते थे। त्याग की इज्जत थी, त्याग करते थे। पूजा–पाठ की इज्जत थी, तो पूजा–पाठ करते थे। आज पूजा–पाठ करने वाले को देखकर हँसेंगे, कैसा मूढ़ है? पता नहीं किस आदिवासी समाज से आया है? अभी मजाक उड़ा रहे थे कि अब तो देवी–देवता भी मेड इन चाइना आने लगे। गणेश जी की आंखें पहले ही छोटी–छोटी थीं, अब चाइनीज मूर्ति आती है उसमें और छोटी आंखें हो गईं। फैशन बदल गया। अब तो जो कुछ भी होगा मेड इन चाइना ही होगा। भगवान भी वहाँ से आने लगे। गॉड मेड इन चाइना। फैशन–फैशन का सवाल है।

हमारे सारे कर्म हमारे अहंकार से, अर्थात् कर्ताभाव से जुड़े हुए हैं। इस बात को खूब अच्छे से समझ लीजिए। अब मैं दूसरा पॉइंट लेता हूं। इसे डिसअसोसिएट करना मुश्किल है। इस बात को भी समझ लीजिए। फिर आप समझ पाएंगे कैसे? हम कहाँ से शुरू करें अकर्ताभाव। हम उन फंक्शंस को देखें जो ऑटोनॉमिक फंकशन कहलाते हैं, जो अपने आप हो रहे हैं। हमारे शरीर से ही शुरू करें। अपने चारों तरफ प्रकृति में देखें।

हमारे बिना किए क्या-क्या हो रहा है? सूरज को आप उगाते हैं, मैं उगाता हूं? नहीं उगाते। चांद-तारों को कौन चमकाता है? है कोई यहां? कोई नहीं। चलो अच्छा हुआ। किसान एक बीज बो देता है, उसमें से एक अंकुर निकल आता है, पौधा लग जाता है, उसमें फूल और फल आ जाते हैं। प्रकृति कर रही है। हम कुछ नहीं कर रहे हैं। हमने तो बस बीज बोया था। बाकी प्रकृति के नियम के अनुसार फसल आ गई। इसलिए जो प्रकृति के पास रहते हैं, उनको अहंकार नहीं होता। उनको भली-भांति पता है कि यह विराट अस्तित्व चल रहा है हमारे बिना किए। जब हम इस दुनिया में नहीं थे, तब भी पेड़ उगते थे, हम नहीं हो जाएंगे, दुनिया में फिर भी पेड़ उगते रहेंगे। हमारे करने से नहीं हो रहा। यह धरती घूम रही है सूरज के चारों तरफ, मौसम बदलते हैं, अभी नया साल आ गया। अपने करने से कुछ आया क्या? हमने घुमाया था पृथ्वी को, धक्का मारा था कहीं? नहीं, हमको तो पता भी नहीं है कि पृथ्वी घूम रही है। हमारे करने से नहीं हो रहा।

उन जगहों को गौर से देखें, जहाँ हमारे करने से कुछ नहीं हो रहा है और हम पाएंगे कि विराट घटनाएं वास्तव में हमारे बिना किए हो रही हैं। अपने चारों तरफ नजर दौड़ाएं। फिर ज़रा अपने शरीर पर आएं। मैंने हाथ ऊपर उठाया। मैं कहूंगा यह तो मैंने उठाया। मेरे बिना उठाए कैसे उठता? मैं दुकान चलाता हूं तब दुकान चलती है, अपने आप थोड़े ही चलती है। पढ़ाई करते हैं स्कूल में, तब जाकर पास होते हैं, अपने आप थोड़े ही हो जाते हैं। यहाँ हमारा अहंकार जुड़ा हुआ है। जिस व्यक्ति को लकवा की बीमारी हो गई, पैरलाइज्ड हो गया, उससे कहो कि वही हाथ चलाओ, जो चलाते थे पहले। तब पता चलेगा कौन था चलाने वाला? हमारी श्वास चल रही है, हम कहते हैं मैं श्वास लेता हूं। मैं चाहूं तो श्वासें रोककर कुंभक लगा लूं। कितनी देर? थोड़ी देर में पता चलेगा हमारे वश के बाहर है, सांस चलती है, अपने आप ही चलती है। थोड़ी-सी फ्रीडम है, पंद्रह बीस सैकंड रोक लो। खून हम बहाते हैं शरीर में? ब्लड सर्कुलेशन हो रहा है। तीन सौ साल पहले तो पता भी नहीं था कि खून बहता है। कौन बहाता था? तीन सौ साल पहले पता चला कि हार्ट जो है पंप कर रहा है कंटीन्यूअस। जन्म से पहले यह शुरू हो गया था और मृत्यु के आखिरी क्षण तक बेचारा पंप करता रहेगा। 75 टाइम्स पर मिनट। एक सेकेंड का भी कभी गैप नहीं पड़ता। लगातार ब्लड फ्लो हो रहा है। पहले ऐसा मानते थे कि जैसे चमड़े का एक बैग है, ऐसा एक बैग है शरीर, उसमें खून भरा हुआ है। जैसे किसी बर्तन में पानी भरा है और हम उसमें पिन चुभा दें, तो पानी बाहर बहने लगेगा। ऐसे ही कहीं स्किन में चुभाओ पिन, खून निकलने लगता है। भरा हुआ है भीतर। लाखों साल से यह धारणा थी। अभी तीन सौ साल पहले पता चला साइंटिस्ट्स को कि वह तो लगातार सर्कुलेशन में है। एक सेकेंड को भी नहीं रुकता। रुकेगा तो फिर रुक ही जाएगा। एक सेकेंड को भी नहीं रुकता।

हम बहाते हैं? हमको तो मालूम भी नहीं था। खाना हम पचाते हैं? हम कुछ भी खाएं, हमारी बॉडी उसको ग्लूकोज में कन्वर्ट कर लेती है। आपको आती है कोई कला? चाहे चावल

खाओ, चाहे दाल खाओ, चाहे सब्जी खाओ, चाहे आइसक्रीम खाओ, चाहे रोटी खाओ, कुछ भी खाओ, जो खाना है खाओ। इटैलियन डिश, चाइनीज डिश, नेपाली डिश, पंजाबी डिश, हर चीज को ग्लूकोज में कन्वर्ट कर लेता है। उसमें से खून बना लेता है, हड्डी बना लेता है, ब्रेन बना लेता है, लिवर बना लेता है, ब्लड बना लेता है। कोई वैज्ञानिक बना सकता है क्या चावल का ब्लड? यह काम हम कर रहे हैं क्या? अगर हम हृदय धड़का रहे होते, तो रात को सपना देखते, सपना देखने में लीन हो जाते?

कल ही एक सज्जन ने पत्र लिखा है कि सांसारिक कर्म करता हूं, तो साधना नहीं हो पाती। जब साधना करने के लिए शिविर में आता हूं, तो सांसारिक जिम्मेवारियों की याद सताती है। दोनों चीजें एक साथ कैसे सधें?

समझो यह सज्जन रात को सोए और एक सुंदर स्त्री दिखाई दी। देखते ही रह गए और हार्टबीट बंद हो गई। ये दो–दो काम एक साथ कैसे करेंगे? खूब अच्छे से गौर करना। हमारे इस शरीर में जो–जो महत्वपूर्ण हो रहा है, वह सब अस्तित्व की तरफ से हो रहा है। पुरानी भाषा उपयोग करनी हो, कह लो परमात्मा की कृपा। आधुनिक भाषा यूज करनी हो, तो कह लो कि प्रकृति के नियम से हो रहा है। जो तुम्हारी मर्जी। एक बात पक्की है कि यह हमारे करने से नहीं हो रहा है। न हम सांस ले रहे हैं, न हम हृदय धड़का रहे हैं, न हम खाना पचा रहे हैं। बड़ी–बड़ी बातें तो छोड़ो, हम सो भी नहीं सकते। आप किसी दिन ट्राई करके देखना कि आज मैं बड़ी टेक्नीक से सोऊंगा। नींद ही नहीं आएगी। प्रकृति आपको सुला देती है। आप सोचते हो कि 'आप' जागते हो सुबह? कि प्रकृति आपको जगा देती है। जो–जो महत्वपूर्ण चीजें हैं, वे सब प्रकृति की तरफ से आयोजित हैं। कभी–कभी छोटे बच्चे जिद्द करते हैं कि मैं कार ड्राइव करूंगा। डैडी मैं कार चलाऊंगा। डैडी ने कहा ठीक है। उसको खुश करने के लिए अपनी गोद में बिठा लिया और उसको स्टियरिंग पकड़ा दी और बच्चा बड़ा खुश कि आज मैं कार ड्राइव कर रहा हूं। सारा कंट्रोल उसके पापा के हाथ में है। बच्चे के पैर तो अभी ब्रेक तक पहुंचते भी नहीं, न ऐक्सिलरेटर तक पहुंचते, न कहीं। वह तो स्टियरिंग पर हाथ रखे है, बीच–बीच में कहीं हॉर्न बजा देता है, कुछ कर देता है। बड़ा खुश है। कर्ताभाव आ गया। अहंकार। मैं कार चला रहा हूं।

ऐसे ही परमात्मा ने भी हमारे साथ मजाक किया है। कुछ चीजें पकड़ा दीं, चलो तुम भी चलाओ। गौर से देखना! जो–जो इंपॉर्टेंट कंट्रोल थे, वह पूरा स्विचबोर्ड उसने अपने पास रख लिया है। वह रिमोट कंट्रोल उसके हाथ में है। हमें पकड़ा दिया है स्टियरिंग। घुमाओ, हॉर्न बजाओ। काठमांडू में तो हॉर्न भी नहीं बजा सकते। बच्चों का वह मजा भी खतम हो गया।

ज़रा गौर से देखना, जो–जो महत्वपूर्ण है, सब प्रभु की कृपा से हो रहा है। हम उसके करने वाले नहीं हैं। इन ऑटोनॉमिक फंक्शन्स, वैज्ञानिक शब्दावली में इसको हम कहेंगे ऑटोनॉमिक फंक्शन्स; स्वचालित क्रियाएं, इसमें कर्ताभाव हम जोड़ ही नहीं सकते। इनका ज़रा गौर करो। तब तुम्हारा हृदय अहोभाव से भरेगा, धन्यवाद भाव से भरेगा।

आज हम सुन पा रहे हैं, बोल पा रहे हैं, हँस पा रहे हैं, हमारा दिमाग कार्य कर रहा है, यह भी प्रभुकृपा है। जिस दिन यह दिमाग कार्य नहीं करेगा, तो नहीं करेगा।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन और उसका पियक्कड़ दोस्त दोनों बूढ़े हो गए। एक दिन बगीचे में बैठे–बैठे गपशप कर रहे थे। कहने लगे भई बुढ़ापा आ गया। अब बुढ़ापे में दो बीमारियां तो पक्का होती हैं। या तो पार्किंसन्स डिजीज जिसमें हाथ–पैर कंपने लगते हैं और दूसरा है अल्जाइमर्स डिजीज जिसमें याददाश्त खतम हो जाती है। तो खुदा–न–खास्ता अपने को यह बीमारी हो गई, तो कुछ–न–कुछ तो होगा। तो हम पहले ही परवरदिगार से, खुदा से कुछ प्रार्थना कर लें कि भई यह वाली बीमारी दे दो। कुछ चॉएस तो रहे अपनी। कुछ–न–कुछ तो देगा। तो दोनों ने बड़ा विचार किया कि कौन–सी बीमारी मांगी जाए, दोनों में से एक। फाइनली उन्होंने डिसाइड किया कि पार्किंसन्स डिजीज अच्छा है। अरे, हाथ कंपेगा तो यही न कि गिलास छलक जाएगा, आधी दारू गिर जाएगी, आधी तो पिएंगे। अल्जाइमर्स की बीमारी हो गई, जिसमें स्मृति खतम हो जाती है, तो यही भूल जाएंगे कि बोतल कहाँ रखी है!

याद रखना! हमारा ब्रेन भी प्रभु कृपा से है ऐसा। इसमें हमने कुछ नहीं किया है। कई लोग कहते हैं मैंने पढ़ाई–लिखाई की, मैं नौकरी करता हूं, मैं बुद्धिमान हूं, तब जाकर व्यापार कर पाता हूं। आप गलत कह रहे हो। प्रकृति ने आपको ऐसी इंटेलिजेंस दी है, इसलिए आप ऐसा कर पा रहे हो। एक भैंस को ऐसी बुद्धि नहीं दी कि वह एम.ए. करे। बेचारी नहीं करती, इसमें उसका कोई दोष तो नहीं है। नहीं तो गधे को अगर देते बुद्धि, वह भी पी.एच.डी. हो जाता। याद रखना न गधे का कोई दोष है, न पीएच.डी. में कोई खूबी है। गधा गधा है, पी. एच.डी. पीएच.डी. है। वह ऐसा होने के लिए मजबूर है, यह ऐसा होने के लिए मजबूर है। परमात्मा ने सबके भरण–पोषण का इंतजाम किया है। पेड़–पौधों को जड़ें दे दीं, उनको एक ही जगह खड़े–खड़े सबकुछ मिल जाएगा जमीन से। जानवरों को पैर दे दिए, चलो–फिरो और अपने भोजन की तलाश करो। पक्षियों को पर दे दिए, उड़ो अब हवा में और अपनी आजीविका, अपने भोजन–पानी का इंतजाम करो। मनुष्य को बुद्धि दे दी। हमको जड़ें नहीं दीं, हमको पंख नहीं दिए, हमें कुछ और दिया है। बुद्धि दी है और कहा कि तुम अपनी बुद्धिमानी से अपनी आजीविका का इंतजाम करो। इसमें हमारी क्या खूबी? यह हमको मिला हुआ है। दिस इज ए ब्यूटीफुल गिफ्ट फ्रॉम द नेचर; तो जैसे पक्षी पंख का उपयोग कर रहे हैं, वृक्ष जड़ों का उपयोग कर रहे हैं, हम अपनी बुद्धि का उपयोग कर रहे हैं।

अगर हम बुद्धि से अपनी दुकान चलाते हैं, व्यापार करते हैं, बुद्धि से अपनी नौकरी करते हैं, इसमें हमारी क्या खूबी? कोई मेंटली रिटार्डेड पैदा हुआ, किसी बच्चे को सेरीब्रल पाल्सी हो गई, अब उसके अंदर नहीं है बुद्धि, वह क्या कर सकता है? नहीं है तो नहीं है। प्रकृति की कुछ भूलचूक हो गई। अगर उसका कोई दोष नहीं है, तो फिर हमारे बुद्धिमान होने में हमारा कौन–सा क्रेडिट है। हमको धन्यवाद भाव से भरना चाहिए कि हमको ऐसा मिला है।

न किसी का क्रेडिट है, न किसी पर ब्लेम है। न कोई श्रेय, न कोई दोष। प्रकृति ऐसा कर रही है, एक नियम के अनुसार चीजें हो रही हैं। इस तरह से अहंकारभाव खतम हो जाएगा और वह जो सीरियसनेस थी, वह भी खतम हो जाएगी। क्योंकि अहंकार यह मानता था कि मैं दूसरे से बेहतर हूं। अब यह बात ही खतम हो गई कि कौन बेहतर है, कौन नहीं। आप ऐसे हैं, मैं ऐसा हूं, वह तीसरा व्यक्ति वैसा है, चौथा वैसा है, कोई सुंदर है, कोई कुरूप है, कोई कर्मठ है, कोई बुद्धिमान है, कोई बुद्धू है।....सब भिन्न-भिन्न हैं। एवरी वन इज यूनिक। तब मैं जो कर सकता हूं, मुझसे जो हो रहा है, वह भी प्रकृति का खेल है और दूसरा जो कर रहा है, वह भी उसकी प्रकृति का खेल है। अच्छे-बुरे की बात ही खतम हो गई। कोई इंफिरियर, कोई सुपिरियर नहीं है। इस प्रकार हमारे कर्म में अकर्ताभाव आएगा।

शुरुआत करना वहाँ से, जिनका तुम्हारे कर्म से कोई लेना-देना नहीं है। जैसे मैंने कहा ब्लड सर्कुलेशन, कि ब्रीदिंग प्रॉसेस, कि डाइजेस्टिव सिस्टम, कि सोना-जागना, कि हार्ट बीटिंग; तब तुम्हें समझ में आएगा कि हमारा उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना, समझना, बुद्धिमत्ता के काम करना यह भी हो रहा है। इट इज हैपेनिंग। आइ एम नॉट द डूअर; मेरे द्वारा हो रहा है। मैं करने वाला नहीं हूं। तब तुम उन चीजों में अकर्ताभाव अप्लाई कर सकोगे। तब तुम अपने व्यापार में, परिवार में, नौकरी में भी नॉन सीरियस हो सकोगे। मेरे द्वारा ऐसा हो रहा है। यह प्रकृति का खेल है। प्रभु की कृपा है, तुम्हें जो नाम देना हो दे दो। एक बात पक्की है, कर्ताभाव गायब हो जाएगा। कर्म होगा लीलाभाव से, आनंदभाव से। पूरी बात ही बदल जाएगी। वह जो सीरियसनेस है, वह खतम हो जाएगी। जब स्थूल कर्मों के साथ ऐसा हो जाए, तब इसको अप्लाई करना भीतर वह जो ज्ञान का अहंकार है, उस पर भी। मैं यह जानता हूं, मैं वह जानता हूं। प्रकृति ने ऐसा बनाया है हमारे ब्रेन को, इसलिए हम ऐसा कर पाए। अन्य जानवर हैं, पशु-पक्षी हैं, उनके साथ ऐसा नहीं है। वे ऐसा नहीं कर सकते। क्या उनका कोई दोष है? अगर उनका दोष नहीं है, तो फिर हमारी भी खूबी नहीं है। बस हम डिफरेंट हैं, वे हमसे डिफरेंट हैं। न कोई अच्छा है, न कोई बुरा है।

आने वाले दस-बीस साल में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस इतनी तेजी से डेवलप हो रही है कि छोटी-छोटी कंप्यूटर चिप्स आने लगेंगी, कहीं खोपड़ी में फिट कर ली जाएगी ऊपर से। वह जो ज्ञान का अहंकार है, वह एकदम खतम हो जाएगा। आपको इंजीनियर बनना है? कोई जरूरत नहीं कि पच्चीस-तीस साल यूनिवर्सिटी में बर्बाद करो। कौन-सा इंजीनियर बनना है। उसकी छोटी-सी चिप मिल जाएगी। फिट करवाई, आपको सारा ज्ञान आ गया। जैसे कंप्यूटर में लगाते हैं, वैसा हमारा मस्तिष्क हार्ड-डिस्क है। इसमें जो सॉफ्टवेयर डलवाना हो डाल लीजिए। डॉक्टर बनना है, कौन-सा? ऐलोपैथिक, होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक, तीनों का कॉम्बिनेशन; चलो तीनों का सॉफ्टवेयर डालो। आखिर ब्रेन में जो मेमोरी है, वह कंप्यूटर की मेमोरी से डिफ्रेंट थोड़े ही है? हमारी खोपड़ी बायो कंप्यूटर है, प्रकृति ने बनाई है। इसी की नकल पर तो वह आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस बन रही है। बच्चे

जल्दी ही पढ़ाई–लिखाई से मुक्त हो जाएंगे।

कल ही किसी महिला ने पूछा था कि बच्चों की पढ़ाई–लिखाई के संग क्या करूं? वे तो मोबाइल से लगे रहते हैं, टी.वी. से चिपके रहते हैं। मैंने कहा कि तुम ज्यादा चिंता न करो। जल्दी ही स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी सब बंद होने वाले हैं। आउट ऑफ डेट हो गए। बढ़िया रोबोट्स आ जाएंगे। हम अपने बच्चों को क्यों परेशान करें? तुम्हें जो काम लेना है, उनसे ले लो। अमेरिका में ऐडवोकेट का तो बना लिया है रोबोट; वकील का रोबोट। आपको जो सलाह लेनी है, आप अपनी समस्या बताइए और वह फट से उसका आंसर बता देगा। कानून के हिसाब से। और अभी जल्दी ही... मैं समझता हूं तीन–चार साल भी नहीं लगेंगे, एकदम फेमस हो जाएगा यह। रोबोट ऐडवोकेट; वह सामान्य ऐडवोकेट से ज्यादा सस्ता है। और आदमी से कभी भूल–चूक हो सकती है, मशीन से कोई भूल–चूक नहीं हो सकती। इतना बड़ा संविधान है, बेचारा वकील कितना याद रखेगा? इस रोबोट को तो सबकुछ पता है। ही इज एक्सपर्ट ऑफ एवरिथिंग; वकील अलग–अलग हैं– इंकम टैक्स के वे हैं, ये फलाना लॉ जानते हैं, ये क्रिमिनल लॉयर हैं, वे सिविल लॉयर हैं। यह जो रोबोट वकील है, इसमें सबकुछ इकट्ठा है। एकदम सटीक सलाह दे रहा वह। जल्दी ही रोबोट डॉक्टर बन जाएंगे।

अभी खूब अच्छे सॉफ्टवेयर तो आने लगे हैं होमियोपैथी के। आपमें से कुछ लोगों ने देखा होगा। आप अपने कंप्यूटर में लोड कर लीजिए। आपको क्या तकलीफ है, वे सिंप्टम्स आप लिखिए, उसमें प्रश्न आ जाएंगे दो–तीन, उनके जवाब में यस–नो, यस–नो, यस–नो डालना होता है। उसके बाद में कुछ इन्वेस्टिगेशन के लिए बोलेगा कि जांच करवा लीजिए ब्लड टेस्ट, यूरिन टेस्ट, उसकी रिपोर्ट लाकर डाल दीजिए, आपको दवाई आ जाएगी लिखी हुई। आखिर एक डॉक्टर भी तो यही कर रहा है न! उसके ब्रेन में सब फीड है डेटा। हम उसको जाकर बताते हैं कि यह तकलीफ है, उसके ब्रेन में भी तो वही प्रोसेसिंग चलती है। क्या इन्वेस्टिगेट कराना है, वह कराता है। रिपोर्ट से वह डायग्नोसिस कर लेता है और ट्रीटमेंट दे देता है। यह काम तो रोबोट कर सकता है। मोर एफिशिएंटली दैन एनी ह्यूमन बीइंग; बच्चों को ज्यादा मत सताओ पढ़ाई के लिए। उनकी पढ़ाई काम नहीं आएगी, मैं आपको बताता हूं। क्योंकि रोबोट के समान मेमोरी उनकी नहीं हो सकती और अगर जरूरत पड़ी, तो आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस मनुष्य में ट्रांसप्लांट की जा सकती है। बहुत माइनर सर्जरी के द्वारा कान के पास छोटी–सी 'चिप' भीतर मस्तिष्क में डाल देंगे। सारे काम होने लगेंगे। तब हमारा ज्ञानी होने का अहंकार बड़ी आसानी से छूट जाएगा कि मैं यह जानता हूं, वह जानता हूं। अरे वाह! अभी जब फ्यूज उड़ा देंगे, तब सब गायब हो जाएगा!

अभी भी वैसा होता है। आपने सुना होगा किसी का ऐक्सीडेंट हो गया, सिर में चोट लग गई और सारी स्मृति गायब हो गई। अब उनको ये याद नहीं कहाँ के रहने वाले हैं, क्या नाम है, कौन–सी जाति, कौन–सा धर्म? सब भूल–भाल गए। घर कहाँ है, ऐड्रेस कहाँ है

भूल गए। अपना नाम भी याद नहीं। क्या हुआ? वही हुआ न, कंप्यूटर के उस हिस्से में चोट लग गई जहाँ मेमोरी सेल्स हैं। सब भूल गए। क्या पढ़ाई–लिखाई की थी? कौन सा प्रोफेशन था कुछ याद नहीं। सब ब्लैंक हो गए। कंप्यूटर हैंग हो गया। अभी हमें बड़ा मुश्किल लगता है ज्ञान से अहंकार को कैसे हटाएं? कर्ताभाव से हटाना, कर्मों से तो आसान लगता है। जैसे ही आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का सदुपयोग शुरू हो जाएगा, आदमी की बुद्धिमानी किसी काम की नहीं रह जाएगी। बहुत आउट ऑफ डेट हो जाएगी। उससे बहुत ज्यादा एफिशिएंट रोबोट्स आ जाएंगे और दस–बीस साल में होने ही वाला है यह। तब हमारा वह अहंकार भी गायब हो जाएगा।

कह रहे हैं मुझे चारों वेद आते हैं, चतुर्वेदी हूं मैं। रोबोट को तो कुरान भी आती है, बाइबिल भी आती है, गुरु ग्रंथ साहब भी आता है। सबकुछ आता है। चारों वेद तो बहुत पीछे हो गए। जो पूछो वह फट से बता देगा। वह जो अहंकार है कि मैं श्लोक नंबर बता सकता हूं, यह गीता का श्लोक सत्रहवें अध्याय का अठारहवां श्लोक है। अब इस पर घमंड नहीं करेगा। लोग हँसेंगे तुम बेवकूफ हो, क्यों रटा तुमने? कितना समय बर्बाद किया इसमें? अरे वे गीता के चिप लगवा लेते न, पेनड्राइव।

प्यारे मित्रों, इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है। ब्रेन रूपी यह बायोकंप्यूटर प्रकृति ने हमको दिया है। हां, यह भी कंप्यूटर ही है, उससे ज्यादा भिन्न नहीं है। इसमें भी अहंकार भाव को हटा लो और तब इस तन–मन का खूब सदुपयोग तुम्हारे द्वारा होता रहेगा, अकर्ता भाव से, आनंद भाव से, लीला भाव से।

आज की चर्चा को यहीं विराम देते हैं। धन्यवाद।

जय ओशो।

जिंदगी में स्थायी तृप्ति कैसे?

प्यारे मित्रों, प्रायः जिस तरह का जीवन इस जगत में अधिकतर लोग जी रहे हैं, उस जीवनशैली में स्थायी तृप्ति का एहसास नहीं होता। थोड़ी देर के लिए अच्छा लगता है, खुशी लगती है, सैटिस्फैक्शन लगता है, उसके बाद फिर लगता है समथिंग इज मिसिंग, कुछ कमी है। इस बात को ज़रा गहराई से समझना। हमारा जो सुख और दुख, तृप्ति और अतृप्ति का एहसास है, वह आपस में संयुक्त है, कंबाइंड; वह इकट्ठा ही हो सकता है। ये दो चीजें अलग-अलग नहीं हो सकतीं। उदाहरण के लिए अगर मुझे जोर की भूख लगेगी, जितनी जोर की भूख लगेगी, खाने से तृप्ति का उतना ही ज्यादा एहसास होगा। अगर भूख नहीं लगी और जबरदस्ती कोई खिला रहा है, तो कोई तृप्ति नहीं होगी। शायद नॉज़िया या वॉमिटिंग होने लगे। मुसीबत खड़ी हो जाए।

पानी की कीमत उतनी ही होगी, पानी से उतनी ही तृप्ति मिलेगी, जितनी प्यास थी। अगर प्यास नहीं थी, तो पानी से हमको कोई सैटिस्फैक्शन नहीं मिलेगा। इसका मतलब सैटिस्फैक्शन के लिए उसकी भूमिका स्वरूप हमको अनसैटिस्फाइड होना जरूरी है। इट इज कंपल्सरी; अन्यथा कोई सैटिस्फैक्शन नहीं होगा।

इस उदाहरण से आप समझना हमारी जिंदगी के सारे सुख-दुख इसी प्रकार आपस में जुड़े हुए हैं। एक आदमी गरीब घर में पैदा हुआ। उसने गरीबी की चुभन भोगी, बड़े कष्ट भोगे, फिर वह बड़ा हुआ, उसने बड़ी मेहनत की और धन कमाया, उसको तृप्ति का एहसास होता है। क्यों? पहले उसने गरीबी भोगी है। अब वह अमीरी का मजा ले पा रहा है।

तीन व्यक्तियों का उदाहरण ले लो। तीनों व्यक्ति समान सोशल, एकोनॉमिकल स्टेटस

के हैं। समझो तीनों के पास एक–एक करोड़ रुपए हैं, रहने का मकान एक–सा है, कार एक–सी है, घर–परिवार एक–सा है, खाना–पीना, उठना–बैठना, कपड़े सब एक–से हैं उनके। ठीक है? लिविंग स्टैंडर्ड एक है तीनों का। इन तीनों की हिस्ट्री अलग–अलग है।

एक बहुत गरीब घर में पैदा हुआ था, बड़े गांव में, बा–मुश्किल पढ़ाई–लिखाई करके वह काठमांडू आया। यहाँ पर बिजनेस एस्टैबलिश किया और अब वह करोड़पति हो गया और बहुत मजा ले रहा है। ही इज डीपली सैटिस्फाइड; कभी कल्पना भी नहीं की थी उसने, कि इतना धन वह कभी कमा पाएगा, कि बड़े शहर में एक बड़ा मकान ले पाएगा।

दूसरा व्यक्ति नंबर टू; उसका सोशल, एकोनॉमिक स्टेटस वैसा ही है जैसे उसके माता–पिता का, उसके पूर्वजों का, जैसा उसके ग्रैंड पेरेंट्स का था। जो उसने बचपन से देखा है वही स्टैंडर्ड मेंटेंड है। न कुछ कमी हुई है, न कुछ बढ़ोत्तरी हुई। यह व्यक्ति उदास–उदास रहता है। इसके जीवन में कोई खुशी नहीं, एक प्रकार की उदासी, निराशा है, कुछ मजा नहीं आता, बोर हो गया है। बचपन से लेकर पचास साल उम्र हो गई... नो चेंज।

तीसरा व्यक्ति है वह भी करोड़पति है आज। लेकिन वह कैसे करोड़पति बना, उसकी मैं आपको कहानी सुनाता हूं। एक गांव में दो लड़कियां थीं, सहेलियाँ। उन दोनों की शादी हुई। उसमें से एक बहुत फिजूलखर्च थी और एक बचत करने वाली थी। एक साल बाद दोनों फिर मायके आईं, उनकी फिर मुलाकात हुई। तो एक लड़की ने अपनी सहेली से पूछा कि तुम तो बहुत फिजूलखर्च हो, तुम्हारा पति तो बहुत परेशान हो गया होगा, तुम्हें शॉपिंग कराते–कराते। उसने कहा नहीं, मेरा पति तो... । मैंने उसको एक साल में करोड़पति बना दिया। वह लड़की बहुत हैरान हुई कि ये किसी को करोड़पति बनाएगी! उसने कहा कैसे बना दिया? तब उसने बताया कि पहले वह अरबपति था। एक साल में करोड़पति बना दिया। अगले साल में लखपति बना दूंगी। उसके बाद वह सिर्फ पति बचेगा और तब मैं उसको तलाक दे दूंगी और पति भी नहीं बचेगा!

तीसरा जो करोड़पति है वह इसी प्रकार का है। डिप्रेशन का शिकार है, स्यूसाइड करने की सोच रहा है। उसकी पत्नी भी छोड़कर चली गई, बच्चों को भी ले गई।

अब ये तीन लोग हैं, एक ही स्तर पर हैं; लेकिन इनकी मनोदशा बिल्कुल अलग–अलग है। एक बहुत खुश, एक उदास है और तीसरा स्यूसाइड करने जा रहा है। वह समाज में मुंह दिखाने लायक नहीं रह गया। वह जिस मकान में रह रहा है, ऐसे मकान में तो उसके नौकर–चाकर रहते थे। वह जैसी कार में चलता है, उसके ऑफिस के क्लर्कों के पास थी ऐसी कार। उसको बाहर निकलते हुए भी शर्म आती है कि लोग क्या कहेंगे?

इन तीनों के जीवन का सुख–दुख का अनुभव जो है, क्या वह वर्तमान के स्टेटस से है या इनके पिछले अनुभवों से संबंधित है? जो पहले डाऊनफाल में था, वह अब अपहिल जा रहा है। जो ज्यों का त्यों है, वह उदासी में है। जो व्यक्ति पहले खुश रह चुका है, अब वह डिप्रेशन में गया। जो लहर नीचे गिरी थी, वह ऊपर चढ़ी। जो ऊपर चढ़ गई थी, वह नीचे

गिरी, और तीसरी फ्लैट। न ऊपर न नीचे। हमारे जीवन में जो भी अनुभव होते हैं सुख–दुख के, वे इसी प्रकार के हैं। अगर भूख लगी थी, तो भोजन से तृप्ति मिलेगी। जिस आदमी को चार–पांच बार अमेरिकन स्टाइल का भोजन मिल रहा है, वह तो बेचारा जानता ही नहीं कि वॉट इज सैटिस्फैक्शन? इससे पहले कि भूख लगे, वह पहले ही खा लेता है।

अगर आपको दो–तीन दिन सोने न दिया जाए और फिर आपको सोने का समय मिले तब आपको पता चलेगा कि नींद की क्या कीमत होती है। हाऊ वंडरफुल इट इज; अभी रोज सोने को मिल जाता है, तो कुछ पता ही नहीं आपको क्या होता है सोना। फिर वो सोना गोल्ड वाला सोना हो जाएगा। अभी लोहे वाला भी नहीं है। हमारे सारे सुख–दुख के अनुभव ऐसे हैं आपस में जुड़े हुए। फिर इन तीन व्यक्तियों के भविष्य की सोचें। यह तो हुआ इनका पास्ट; अब हम दूसरे तीन व्यक्तियों की सोचें जो समान सोशल, एकोनॉमिकल स्टेटस में रहने वाले हैं। पहला व्यक्ति है। उसके मन में बड़ी ऊंची कल्पना है। वह तो अम्बानी बनना चाहता है। अब छोटा–मोटा अमीर नहीं कि ये नेपाल का और भारत का; विश्व के अमीरों में फर्स्ट आना चाहिए। उससे कम में बात नहीं बनेगी। यह आदमी बड़े तनाव में जीता है, बहुत परेशान रहता है, बहुत दुखी है, क्योंकि सिर्फ एक करोड़ उसके पास है और उसको बनना है मल्टी बिलियनेयर; नंबर वन इन द वर्ल्ड; उसका सपना बहुत बड़ा है। दूसरा व्यक्ति है। जो वर्तमान में जैसा है ऐसा ही रहा है। इसी में सोचता है कि बहुत है। संतुष्ट प्रवृत्ति का। इसकी कोई ऐंबीशन नहीं है, कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। यह खुश रहता है। धन्यवाद भाव से भरा है कि हे प्रभु तेरी कृपा। इतना मिला है, क्या यह कम है? तीसरा व्यक्ति है जो न धन्यवाद भाव में है, न ऐंबीशन्स में है। बीच में कहीं है। थोड़े टेंशन में रहता है, थोड़ा परेशान रहता है। अम्बानी बनने के लिए पगला भी नहीं रहा। उतना पागल भी नहीं हो गया और खुश भी नहीं है, प्रसन्न भी नहीं है, आनंदित भी नहीं है, मध्य में है।

पहले जो मैंने तीन बातें कहीं थीं, वे अतीत से संबंधित थीं। फ्रॉम द पास्ट एक्सपीरिएंस उनके वर्तमान का सुख–दुख तय हो रहा था। अब जो कह रहा हूँ, वे भविष्य की कल्पना से संबंधित हैं। इनके मन की कल्पना क्या है, उसपर डिपेंड करेगा कि वे सुखी होंगे या दुखी होंगे? हम पाएंगे हमारे सारे सुख–दुख सापेक्ष हैं, रिलेटिव और एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। इनको हम अलग कर ही नहीं सकते। इस बात की समझ फिर हमें एक नई दिशा में ले जाती है। आप जो पूछ रहे हैं कि स्थायी रूप से तृप्ति कैसे हो? नहीं, स्थायी तो नहीं हो सकती। वह तो बार–बार प्यास लगेगी और बार–बार पानी पिएंगे। यह तो टेम्पररी ही होगा। कुछ घंटे बाद फिर प्यास लगेगी। कुंवारे लोगों को देखें, वे सोचते हैं कि शादी हो जाएगी, तो जैसे स्वर्ग मिल जाएगा। आज एयरपोर्ट पर एक लड़की से मुलाकात हुई। निराकार जी ने बताया कि मेरी बहन की बेटी है यह। तीन महीने पहले इसकी शादी हुई है। बोलती है बहुत टेंशन में आ गई मैं तो। आशीर्वाद दीजिए। मैंने कहा, अभी कुछ नहीं, एक

साल और रुको और टेंशन बढ़ेगा। अभी तो छोटी–सी झलक मिली है। जस्ट ए ग्लिंप्स; शादी के पहले इससे पूछते, तो इसके मन में भगवान जाने क्या–क्या सपने चल रहे होंगे। कैसा सुख मिलेगा? अब उस कल्पना की तुलना में इसको दुख मिल रहा है। इसने पहले कौन–से सपने संजोए थे भगवान जाने। अब उसके कॉन्ट्रास्ट में तकलीफ मिलेगी। सब चीजें आपस में जुड़ी हुई हैं, इनको अलग हम नहीं कर सकते। कुंवारे आदमी की शादी हो गई, तो बड़ी तृप्ति का एहसास होगा। शुरुआत में उसको लगता है, बड़ी तृप्ति हो गई। लेकिन वह लंबे विरह के बाद मिलन हुआ था। बहुत प्यास के बाद एक घूंट पानी मिला था। अब याद रखना दुबारा जब वही–वही घूंट पानी का पीओगे, फिर कोई तृप्ति नहीं होगी। फिर पत्नी जब मायके चली जाएगी झगड़ा करके एक महीने के लिए, और फिर लौट के आएगी, फिर तृप्ति मिलेगी। कंटीन्यूटी में तृप्ति नहीं हो सकती। उसके लिए बीच में बिछोह जरूरी है।

अगर विरह नहीं होगा, तो मिलन का सुख भी नहीं होगा। उसके लिए तड़फ जरूरी है। और फिर भी जो सैटिस्फैक्शन मिलेगा, वह टेम्परेरी ही हो सकता है, इससे ज्यादा वह नहीं हो सकता। या तो फिर लंबा विरह हो। फिर टेम्परेरी सैटिस्फैक्शन मिलेगा। जीवन के सारे अनुभवों में आप इसको देखेंगे कि दोनों चीजें आपस में जुड़ी हुई हैं। वह प्यास और पानी की तृप्ति वाली बात सब चीज पर लागू होती है। जो व्यक्ति हमेशा स्वस्थ है, कोई बड़ी बीमारी नहीं हुई, उस बेचारे को पता ही नहीं कि स्वास्थ्य का सुख क्या होता है? यह तो वे लोग जानते हैं जिनके ऊपर बड़ी बीमारी आई और फिर जब उससे रिकवर हुए और अस्पताल से डिस्चार्ज हुए, तब वे बड़े खुश घर लौटे कि जान बची और लाखों पाये। बीमारी के बाद स्वास्थ्य का एहसास है। अगर कंटीन्युअस स्वास्थ्य बना हुआ है, तो हम भूल ही जाएंगे। मैंने साठ साल तक माइग्रेन का सिर दर्द भोगा है। अब एक साल से नहीं है। मैं जानता हूं कि सिर दर्द का न होना क्या होता है। जिसको आज तक सिर दर्द ही नहीं हुआ, वह क्या समझे कि मैं कौन–सा मजा ले रहा हूं। मैंने पहले कष्ट भोगा है। हर दूसरे–तीसरे दिन माइग्रेन।

स्वास्थ्य का सुख बीमारी के दुख से जुड़ा हुआ है। अगर हम एक चीज को खत्म कर देंगे तो दूसरा भी नहीं रहेगा। हम क्या सोचते हैं कि अगर हम एक को खत्म कर दें, तो दूसरा ही दूसरा बचेगा। ऐसा नहीं है। दूसरा भी खत्म हो जाएगा। बचेगा ही नहीं, कुछ नहीं बचेगा। इस बात को समझकर एक तीसरे तत्व का उदय होता है। हम इस खेल को, लहर के ऊपर–नीचे उठने–गिरने को, हम दूर साक्षीभाव से देखने लगते हैं। हम एक तमाशबीन बन जाते हैं, द्रष्टा और साक्षी हो जाते हैं। हम जानते हैं दर्द आएगा रिलीफ मिलेगी।

सद्‌गुरु ओशो के प्रवचन में एक बहुत जोरदार किस्सा आता है मुल्ला नसरुद्दीन का। बाजार में वह जा रहा था। बड़ी मुश्किल से चल रहा था। किसी ने पूछा आपको कोई तकलीफ है, पैर में दर्द वगैरह है? बोला नहीं। फिर कोई मिला उसने पूछा आपको कमर दर्द है, आप झुके–झुके से चल रहे हैं? उसने कहा नहीं, कोई प्रॉब्लम नहीं। कमर ठीक है मेरी। जो मिले वही पूछे कि आपको क्या प्रॉब्लम है, कैसे चल रहे हैं? आपकी चाल ठीक नहीं है।

नसरुद्दीन ने कहा सब लोग मुझे पूछ–पूछ कर तंग कर रहे हैं, सुन लो! बता देता हूं। सबको उसने रोका। रुको! अब कोई नहीं पूछना। अब मैं इसी स्थिति में रोज रहूंगा, ऐसे ही दिखाई दूंगा, ऐसे ही चलूंगा। कारण उसने बताया कि मेरे पैर में जो जूता है, वह एक नम्बर छोटा है, बहुत टाइट है और उसमें नीचे दो कांटे गड़े हैं। एक इस पैर में, एक उस पैर में। भीतर से वह कांटा चुभता रहता है और जूता बहुत टाइट है। ऊपर से मैंने बहुत कसके बांधा हुआ है। सुबह से मैं ऐसे ही पहन लेता हूं जूते।

लोगों ने पूछा यह कौन–सी सनक सवार हुई? नसरुद्दीन ने कहा मैं तुम्हें बताता हूं कि सीक्रेट क्या है? दिन भर बाजार से काम–धाम करके घर वापिस लौटता हूं, शाम को थका–मांदा। जब जूता खोलता हूं, तो ऐसी रिलीफ मिलती है कि बस तुम क्या जानो!

हम जिसको कह रहे हैं तृप्ति का एहसास, सुख का अनुभव; वह सब रिलीफ से ज्यादा नहीं है। नॉट मोर दैन रिलीफ। रिलीफ तो टेम्परेरी होगी। छींक आने के पहले कैसा लगता है? इरिटेशन इन द नोज; अब आने वाली है, अब आने वाली है। आपने रुमाल भी निकाल लिया, बड़ा टेंशन हो गया और फिर आ गई। अब रिलीफ मिला। अगर उसके पहले पूरा टेंशन न हो, इरिटेशन न हो, तो रिलीफ भी नहीं मिलेगी। टेंशन जितना ज्यादा होगा, उतना ज्यादा आपको रिलीफ मिलेगा। यह रिलीफ तो टेम्परेरी हो गया। अब आप कहो कि स्थायी रिलीफ क्यों नहीं मिलता। छींक आने से स्थायी रिलीफ कैसे मिलेगा!

इस बात को खूब अच्छे से समझ लेना। संसार के सारे सुख–दुख आपस में जुड़े हुए हैं। अब तीसरी बात स्थायी क्या हो सकती है? सुख तो स्थायी नहीं हो सकता, दुख भी स्थायी नहीं हो सकता। स्थायी क्या हो सकता है? वह जो दोनों को जानने वाला साक्षी तत्व है, हमारी कॉन्शसनेस, वह हो सकती है। वह सदा है। उसने दुख को भी जाना, उसने सुख को भी जाना, उसने स्वास्थ्य को भी जाना, उसने बीमारी को भी जाना, उसने अपमान को जाना, सम्मान को जाना, सबकुछ जाना। वह जो जानने वाली कॉन्शसनेस है, वह एकमात्र स्थायी तत्व है।

प्यारे मित्रों, इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है। अगर आप चाहते हैं, स्थायी तृप्ति मिले, सदाबहार आनंद उपलब्ध हो, तो अपनी विटनेसिंग कॉन्शसनेस में डूबो, ध्यान उसका उपाय है। फिर कभी पतझड़ नहीं होता।

आज की चर्चा को यहीं विराम देते हैं। धन्यवाद।

जय ओशो।

ध्यान की ऊंचाइयों में जिंदगी

प्यारे मित्रों, अजपा जाप और श्वास की अन्य साधना पद्धतियों में कुछ अंतर हैं। भेद ज़रा सूक्ष्म और बारीक हैं, गौर से समझना। सामान्यतः जो जाप की प्रक्रियाएं चल रही हैं, उनमें किसी मंत्र को, किसी विशिष्ट शब्द को या वाक्य को उच्चारित किया जाता है। एक, कंठ से उच्चारण करते हैं– सबसे स्थूल जाप। उससे सूक्ष्म है मानसिक जाप। उससे और सूक्ष्म भावनात्मक जाप। कोई कल्पना, भावना अवचेतन हृदय में बसा लेते हैं।

ये तीन प्रकार के जाप प्रचलित हैं और दूसरी तरफ श्वास की पद्धतियां हैं। अनापानसती, विपस्सना और श्वास के विभिन्न रूप, प्राणायाम के भिन्न–भिन्न प्रकार। जिनमें होश की साधना पर जोर है, केवल श्वास का ख्याल रखना है, साक्षीभाव साधना है।

ये दो–तीन प्रकार की पद्धतियां प्रचलित रही हैं। विशेषकर ध्यानमार्गियों की, योग साधने वालों की, प्राणायाम पद्धतियां और भक्ति साधना करने वालों की, मंत्र और जप की, नाम स्मरण की पद्धतियां। दोनों में खतरा है। साक्षीभाव में संभावना है कि वह रूखा–सूखा होश हो जाए। उसमें कोई लगाव, प्रेम, लगन वाली बात ही न हो। अक्सर ऐसा हुआ है और तब वह श्वास की पद्धति बहुत उबाऊ हो जाती है और व्यक्ति उसको लंबे समय तक नहीं कर पाता और छोड़ देता है। हमारे देश में जगह–जगह विपस्सना ध्यान शिविर चलते हैं। जो व्यक्ति एक बार हो आया दस दिन के उस शिविर में, वह दोबारा कान पकड़ लेगा, कभी न जाएगा। इतनी ऊब पैदा हो जाएगी। दिन भर में आठ–दस घंटे रोज बिना हिले–डुले श्वास देखना। होश साधने का प्रयास तो कर रहे हैं, किंतु संभावना है कि यह होश की साधना बहुत उबाऊ, बोरियत वाली हो जाएगी। क्योंकि इसमें कोई लगाव नहीं है, कोई प्रेम नहीं है।

दूसरी तरफ नाम सुमिरन करने वाले लोगों को देखिए। उनके भीतर भाव तो है, किंतु

होश की कमी रह जाती है। कर रहे हैं, शुरुआत की थी भाव से, बड़ी लगन से की थी; किंतु होश की साधना उनको किसी ने बताई नहीं। नाम जपे जा रहे हैं, जपे जा रहे हैं। धीरे–धीरे वह यांत्रिक होता चला जाता है, मेकैनिकल। तब उसमें जो भावना जुड़ी थी, धीरे–धीरे वह भी समाप्त हो जाती है। मशीन की तरह हो जाता है। मन रिपीट किए जा रहा है, किए जा रहा है। कुछ लोग स्थूल उपायों का प्रयोग करते जा रहे हैं। माला फेर रहे हैं, माला के गुरिए के साथ एक मंत्र कुछ उन्होंने पकड़ लिया। उस मंत्र को रिपीट किए जा रहे हैं। किसी ने श्वास का सहारा ले लिया। किसी ने कुछ मन–ही–मन बिना किसी सहारे के एक शब्द का उच्चारण बार–बार, बार–बार। फिर वह शब्द उच्चारण उनके सामान्य जीवन के क्रियाकलापों में बाधा पैदा करने वाला महसूस होने लगता है। क्योंकि मन की आदत है सिंगल ट्रैक में काम करने की। आप ड्राइविंग कर रहे हैं और मन–ही–मन मंत्रोच्चार हो रहा है, तो खतरा है दुर्घटना होने का।

ये दो काम एक साथ मुश्किल बात है। इसके लिए बड़ी ट्रेनिंग चाहिए। डबल ट्रैक माइंड हो सकता है, लेकिन खूब लंबे, सालों–साल के अभ्यास के बाद। बैंक में जो लोग काम कर रहे हैं, आपने देखा होगा, वे नोट की गड्डी गिनते जा रहे हैं और आपसे बात भी करते जा रहे हैं। उनकी गिनती में गलती नहीं होती। क्योंकि वे कई वर्षों से वह कार्य कर रहे हैं। उनके माइंड ने दो ट्रैक बना लिए। एक गिनती करने वाला फंक्शन अलग है, वह मन का एक हिस्सा कर रहा है और मन के दूसरे हिस्से से वे अन्य कार्य भी कर सकते हैं, किसी से बातचीत कर सकते हैं फोन पर, जवाब भी दे सकते हैं। वह गिनती चल ही रही है, उसमें कोई डिस्कंटिन्यूटी नहीं होगी, कोई भूल–चूक नहीं होगी। जो लोग कुशल ड्राइवर हो गए हैं, फिर वे गीत गाते हुए, गीत सुनते हुए, मोबाइल पर बात करते हुए, अब तो छोटे–छोटे टी.वी. भी आने लगे हैं; टी.वी. भी देखते जा रहे हैं। लेकिन वे बहुत कुशल लोग हैं। डबल ट्रैक हो गया उनके माइंड का। सामने ट्रैफिक का भी ध्यान रख पा रहे हैं। लेकिन फिर भी खतरा मौजूद है। हम यह नहीं कह सकते कि खतरा नहीं है। क्योंकि ये दो चीजें आपस में कॉन्फ्लिक्टिंग हैं। पूरी एकाग्रता एक चीज पर हो सकती है। दो में विभाजित मन खंड–खंड हो गया। पूरी कुशलता इसमें हो नहीं सकती। कहीं–न–कहीं कुछ चूक हो जाने का खतरा है।

तो वे लोग जो नाम स्मरण करते हैं, वे अपने जीवन का एक छोटा–सा हिस्सा, आधा घंटा कि एक घंटा कि दो घंटा, जो उन्होंने तय कर लिया है, वे इतनी देर बैठकर नाम जप रहे हैं। फिर बाकी के समय छोड़ देंगे। क्योंकि अन्य चीजों में वह व्यवधान डालेगा। दूसरे काम–धाम वे कर न पाएंगे या कामों में गड़बड़ी हो जाएगी। कुशलता खतम हो जाएगी। क्या इन दोनों मार्गों के बीच में कुछ मध्यमार्ग निकल सकता है? ध्यानमार्गियों का रूखा–सूखा द्रष्टाभाव और इन भक्तों का शुरुआत में तो भाव से शुरू हुआ लेकिन अंततः कुछ दिनों के बाद यांत्रिक हो गया, नाम स्मरण। उसी को संतों ने 'अजपा जाप' कहा है। जहाँ अब किसी

शब्द की जगह नहीं होगी, कोई मंत्र नहीं होगा और श्वास चूंकि चल ही रही है, अलग से हमें कोई एफर्ट, प्रयास नहीं करना है। वह शरीर की एक फिजियोलॉजिकल प्रोसेस है, स्वचालित ऑटोमैटिक फंक्शन। वह चल ही रहा है। उसके साथ हम होश को और प्रेमभाव को जोड़ दें तो योग और भक्ति का मिलन हो जाए और इस ढंग से कि वह हमारे जीवन के दैनिक क्रियाकलापों में बाधा न बने। इसीलिए अजपा। हमें जपना नहीं है। क्योंकि जपेंगे तो फिर मुश्किल खड़ी हो जाएगी। फिर तो संसार, घर परिवार, दुकान छोड़कर जंगल में जाकर बैठकर करो। फिर तो यहाँ बीच बाजार में न हो सकेगा। अजपा। कोई शब्द नहीं, कोई रेपिटिशन नहीं, इसलिए यांत्रिकता पैदा नहीं हो सकती। होश सधा रहेगा और सांस से चूंकि जोड़ दिया है, जो कि लगातार चल ही रही है, इसलिए सदा हम वर्तमान में लौट–लौट आएंगे। अगर भूल–चूक भी हुई, बेहोशी भी आई, तो थोड़ी देर के लिए होगी। पुनः श्वास का जैसे ही ख्याल आएगा, वापिस हम वर्तमान के क्षण में आ जाएंगे।

कुछ चीजें हैं जो हमें तुरंत वर्तमान में ले आती हैं, अतीत–भविष्य से मुक्त कर देती हैं, विचारों की शृंखला को तोड़ देती हैं। उनमें से एक है– श्वास। बहुत कारगर उपाय है। हम पिछली सांसों की तो याद नहीं कर सकते और न ही हम भविष्य में जो सांसें लेंगे, उनका कोई हिसाब–किताब कर सकते। सांस तो अभी मौजूद है तुरंत। केवल उसी को देख सकते हैं।

ठीक इसी प्रकार ओंकार की ध्वनि सदा वर्तमान में है। न तो उसका कोई अतीत है, न उसका कोई भविष्य। इसलिए दो चीजें बहुत ही उपयोग की हैं, हमें तुरंत वर्तमान में लाने के लिए– श्वास और ओंकार श्रवण। चाहे श्वास देखने लगें, चाहे ओंकार श्रवण करने लगें, या दोनों का कॉम्बिनेशन हो जाए, तब तो कहना ही क्या? इनमें एक चीज स्थूल है श्वास। ओंकार श्रवण सूक्ष्म है और वह सदा संभव भी नहीं है। घर में, परिवार में, बाजार में, दुकान में अन्य शोरगुल होंगे, आवाजें होंगी। ओंकार तो सदा नहीं सुनाई दे सकेगा। इसलिए श्वास का ही उपयोग कर लें। इसको तो हम सदा ही साध सकते हैं। शुरुआत में थोड़ा प्रयास करना होगा, जल्दी ही हम पाएंगे हम एफर्टलेस एफर्ट में पहुंच गए। प्रयत्न रहित प्रयत्न। अपने आप सधने लगी बात... परंतु भावना न छूटे इसका ख्याल रहे। सारे अस्तित्व के प्रति जो प्रेम, मैत्रीभाव है, उसको जोड़ लें। श्वास के संग जोड़ लें। अगर शब्द होता, तो यांत्रिक बन जाता। तो शब्द न बनाएं, भाव को रखें और सांस के साथ उसको एसोसिएट कर लें। तब हम पाएंगे कि वह सद्भावना जो कभी–कभार झलक के रूप में आती थीं, अब ज्यादा–ज्यादा देर तक स्थिर रहने लगी। अन्यथा होता क्या है? भावनाओं के झोंकों की तरह कुछ क्षण को ठहरती है वह, और फिर विदा हो जाती है। जैसे एक खिड़की से हवा का झोंका आया और थोड़ी देर में निकल गया। हमारे हाथ में कुछ नहीं रह जाता। सद्भावनाएं भी वैसे ही आती हैं, दुर्भावनाएं भी वैसे ही आती हैं। यदि हम सद्भावनाओं के संग होश जोड़ दें, जो कि श्वास के द्वारा आसानी से हो जाएगा, हमारे दैनिक क्रियाकलापों में बाधा भी नहीं पड़ेगी, सांस तो चल ही रही थीं सब काम करते हुए। ज़रा–सा ख्याल। ज़रा–सा, बहुत

ज्यादा नहीं। ज़रा–सा ख्याल और उसके संग सद्‌भावना का जोड़।

किसी भी सद्‌भावना से आप शुरू कर लें। चलो मैत्रीभाव। आप अपने किसी प्यारे मित्र का स्मरण करें। उसकी उपस्थिति में आपको कैसा महसूस होता है। उसकी याद के साथ सांस को जोड़ लें। वैसे कभी–कभार उसका स्मरण आता था और अच्छा महसूस होता था। क्षणिक रूप से। लेकिन जब आपने सांस के साथ जोड़ लिया, तब आपने पाया कि वह स्मरण टिकाऊ हो गया, स्थिर हो गया। जब तक आपको ख्याल रहेगा, आपको ऐसा ही लगेगा मानो उसकी उपस्थिति, उसकी मौजूदगी है। किसी से आपका बहुत लगाव है, अत्यंत प्रिय व्यक्ति। उसकी मौजूदगी में कैसा महसूस करते हैं। धीरे–धीरे वह व्यक्ति तो गौण हो जाएगा, उसका रूप, उसका आकार। लेकिन वह जो फीलिंग है अच्छे लगने की, वह आपके संग रहेगी। अब वह हवा के झोंके की तरह नहीं है। अब वह सांस के जैसी स्थायी हो गई। एक मजे की बात है, जो भी दुर्भावनाएं हैं, वे केवल मूर्च्छित अवस्था में हमें घेरती हैं। जो सद्‌भावनाएं हैं, वे हमारे होशपूर्ण चैतन्य की स्थिति में भी हमारे संग होती हैं।

आप क्रोध को स्थायी नहीं कर सकते होशपूर्वक। जैसे ही आप सजग होते हैं, क्रोध की जड़ें उखड़ने लगती हैं। होश बढ़ने लगता है, क्रोध और कम, और कम होने लगता है। होश अपनी पूरी प्रगाढ़ता पर पहुंचता है, क्रोध पूरी तरह समाप्त हो जाता है। दुर्भावनाएं केवल मूर्च्छित अवस्था में हम पर आच्छादित हो जाती हैं। इसलिए श्वास के होश के संग जब हम किसी सद्‌भावना को एसोसिएट करेंगे, चाहे मित्र का स्मरण, प्रेमी–प्रेमिका का स्मरण, सद्‌गुरु का स्मरण, श्रद्धाभाव, किसी इष्ट, पूज्य देवता का स्मरण, निराकार प्रभु का स्मरण, चाहे इस जीवन मात्र का, चाहे बिना किसी व्यक्ति विशेष के, अहोभाव समस्त अस्तित्व के प्रति, कोई भी सदभावना आप चुन लें। कोई फर्क नहीं पड़ता। कहीं से भी चुन लें। जो सरल लगे। आप पाएंगे उन सबका परिणाम एक ही है। चाहे आप अपने मित्र को याद करें, चाहे प्रेमी–प्रेमिका का स्मरण करें, चाहे सद्‌गुरु का श्रद्धाभाव से स्मरण करें, या संपूर्ण अस्तित्व के प्रति भक्तिभाव। जो कुछ आपको आसानी से हो जाता हो, आप वही कर लें। आप पाएंगे, परिणाम एक ही आया। सांस के साथ उसको जोड़ लें।

वह झोंके की तरह थोड़ी देर के लिए बात बनती थी, आप पाएंगे अब वह बनने लगी, बनी हुई रहने लगी, ज्यादा–ज्यादा देर तक। इस छोटी–सी तरकीब से आप पाएंगे, एक अजपा जाप चल रहा है। न कोई नाम है उसमें अंततः, न कोई शब्द है, न कोई मंत्र है। श्वास है और एक बहुत प्यारी फीलिंग। एक अद्‌भुत उपस्थिति का एहसास। जिसमें हम पूरी तरह होश में हैं। आत्मस्मरण भी है। अपने आप को भूल नहीं गए हैं, खो नहीं गए हैं हम। नाम सुमिरन अकेला करने वाले, मंत्र जाप करने वालों की संभावना है कि वे बिल्कुल आत्म–विस्मरण में चले जाएं। इसमें यह खतरा मौजूद नहीं है। श्वास हमें स्व–केंद्रित करती रहेगी और वह जो प्रेम का भाव है, वह हमें अहं के घेरे से बाहर करता रहेगा। अकेला ध्यान साधो, तो अहंकार के गर्त में गिरने का खतरा है। मैं ध्यानी हूं, मैं योगी हूं, मैं प्राणायाम करता हूं। 'मैं भाव' प्रगाढ़ हो जाता है। अकेली

भक्ति साधो, अहंकार का खतरा तो नहीं है; लेकिन स्वयं के प्रति बेहोश हो जाने का खतरा है। हम जिसका स्मरण कर रहे हैं, उसकी तो याद है और स्वयं को भूल गए। एक प्रकार का नशा ही हो गया वह। एक प्रकार की मादकता ही हो गई। दोनों के बीच में खूब अच्छा मध्य मार्ग है 'अजपा जाप।' आप चाहें तो स्टार्टिंग में किसी शब्द का इस्तेमाल कर सकते हैं। जल्दी ही फिर उसे छोड़ दीजिए। जाप से शुरू करिए, सांस के साथ जोड़ दीजिए और कुछ ही देर में जल्दी से उसे छोड़ दीजिए। फिर फीलिंग पर आ जाइए और वह फीलिंग खूब घनी होती चली जाएगी। और चूंकि सांस के साथ जुड़ गई, इसलिए इसको पकड़ना बहुत आसान रहेगा। माना कि फिर चूक जाएंगे, छूट जाएगी। जैसे ही श्वास का ख्याल आया फिर हमारे भीतर अवचेतन में चीजों का एसोसिएशन हो जाता है, चीजें आपस में जुड़ जाती हैं।

मनोवैज्ञानिक इसको कहते हैं 'द लॉ ऑफ एसोसिएशन', 'साहचर्य का नियम।' एक नियम है कॉज एंड इफेक्ट का; कार्य–कारण का सिद्धांत। वह एक अलग चीज है। वह विज्ञान का हिस्सा है। आप सौ डिग्री पर पानी गरम करेंगे, इतने–इतने दबाव पर, तो पानी भाप बनेगा। अगर हमने कारण मौजूद कर दिया, तो उसका कार्य, उसका परिणाम आएगा। सुनिश्चित है, हंड्रेड परसेंट पक्का। ऐसा–ऐसा करने से वैसा–वैसा होता है। इसको कहते हैं कार्य–कारण का सिद्धांत। यह पदार्थ जगत पर लागू होता है। एक दूसरा सिद्धांत है साहचर्य का। लॉ ऑफ एसोसिएशन। यह मन से संबंधित है, सूक्ष्म है। यह स्थूल पदार्थ वाली बात नहीं है। यह कार्य–कारण जैसा नहीं है कि बिल्कुल सुनिश्चित हंड्रेड परसेंट होगा ही होगा। लेकिन अगर हमने ठीक व्यवस्था कर दी, तो हो जाएगा। काफी संभावना है कि हो जाए। दो चीजों को हम संग–साथ, संग साथ बिठाएँ बारंबार–बारंबार। धीरे–धीरे जोड़ बैठ जाता है। फिर एक का ख्याल आने से दूसरे का ख्याल अपने आप आ जाता है। समझो आपको रात को सोने की आदत है, रात ग्यारह बजे सोते हैं। आपका बिस्तर, आपका खास तकिया, उसकी खास ऊंचाई, कितना कठोर या मुलायम है, आपकी वर्षों–वर्षों की आदत हो गई उस पर सोने की, कितना मोटा कंबल आप ओढ़ते हैं, उसका टेक्सचर। एक खास एसोसिएशन है कि आपने लाइट बंद की, कपड़े चेंज किए, बिस्तर पर गए, सिर रखा तकिए पर और नींद आ गई। चूंकि एसोसिएशन लंबा है, इस परिस्थिति को निर्मित करने से नींद आने की संभावना बन जाती है।

यह फर्क याद रखना। यह कॉज एंड इफेक्ट नहीं है। यह कोई पक्का नहीं है कि ऐसा हो ही जाएगा हर बार। लेकिन काफी संभावना है ऐसा हो जाने की। यदि इसमें से एक चीज गड़बड़ कर दो, बिस्तर चेंज कर दो, उसकी हार्डनेस अलग हो, तकिए की ऊंचाई बदल दो या आप लाइट बुझाकर सोने के आदी थे, आज तेज लाइट जला दी, तो मुश्किल हो जाएगी। नींद नहीं आएगी। एसोसिएशन हो गया है नींद का एक खास चीज से। आप मान लीजिए रोज डेढ़ बजे खाना खाते हैं। एक एसोसिएशन हो गया है। डेढ़ बजते–बजते आपके भीतर खाना पचाने वाले जूस का सिक्रिशन होने लगता है, पेट में एसिड बनने लगता है, भूख लग

आती है। शरीर, मन पूरा तैयार हो गया है भोजन के लिए। किसी दिन आपको पता न हो, एक घंटे पहले ही घड़ी मैनिपुलेट कर दी जाए, साढ़े बारह बजे डेढ़ बज जाए उसमें, उस दिन आपको साढ़े बारह बजे ही भूख लग आएगी। आप सुबह से देख रहे हो उसी घड़ी को जो एक घंटे आगे खिसका दी गई है, आपको नहीं पता, जैसे ही उसमें डेढ़ बजेंगे, आपका शरीर तैयार हो जाएगा भूख के लिए। एसोसिएशन हो गया डेढ़ बजे और भूख का। क्योंकि लंबे समय से ऐसा चल रहा है। हां, यदि आप रोज–रोज बदलते रहते हैं, तो फिर एसोसिएशन नहीं बनता। अगर आप कभी लंच कर लेते हैं, कभी छोड़ देते हैं, तो फिर एसोसिएशन नहीं बनेगा। रिपीट करने से एसोसिएशन बन जाता है। तो क्यों न हम इस एसोसिएशन का उपयोग करें। वह हमारे मन के नियम का हिस्सा है।

समझो ध्यान करने का समय आपने सुबह का चुना हुआ है, एक खास समय। आप छह बजे ध्यान करते हैं, उसके पहले स्नान करते हैं, गेरुवे रंग के कपड़े धारण करते हैं, ओशो की माला पहनते हैं, कोई खास खुशबू लगाते हैं, एक खास कमरा है, वहाँ ओशो की तस्वीर है। एक विशेष म्यूजिक आप लगाते हैं वह आपने लगाया, अगरबत्ती जलाई। जो भी आपने क्रियाकांड बना रखे हैं, जैसे ही आपने वे पूरे किए आपका तन, मन, चेतन सब ध्यान के लिए तैयार हो गया। क्योंकि बार–बार, बार–बार, बार–बार... वे सब चीजें आपस में जुड़ गई हैं। वह कपड़ों का रंग, उस कमरे में पहुंचना, वहाँ की सुगंध। जब आप स्नान कर रहे थे तभी ध्यान की तैयारी शुरू हो चुकी थी। इस एसोसिएशन का बड़ा लाभ है। जब नींद में एसोसिएशन काम करता है, तो जागरण में हम क्यों न उसका उपयोग करें? हमारा मन तो नियम से चलता है, उसके नियम को समझ लो। अगर आप रोज–रोज चेंज करेंगे, किसी दिन कभी ध्यान किया, किसी दिन नहीं किया, किसी दिन छोड़ दिया, फिर दूसरे दिन शाम को किया, तीसरे दिन दोपहर को किया, फिर एक दिन छोड़ दिया। आपने कोई एसोसिएशन निर्मित नहीं किया और इसलिए फिर कभी भी गहराई नहीं पकड़ पाएंगे। क्योंकि मन को समझ नहीं आ रहा कि आप कर क्या रहे हैं? वह भौंचक्का देखता ही रहता है कि हो क्या रहा है? एक सिस्टम से अगर आप चलेंगे, तो लॉ ऑफ एसोसिएशन काम करेगा और तब आप उसका पूरा बेनिफिट उठा पाएंगे।

इसी प्रकार क्यों न हम सद्भावनाओं को, साक्षीभाव को, मैत्रीभाव को, भक्तिभाव को, श्रद्धा को, सांस से जोड़ दें। कितना आसान! कुछ दिन तो हमारे प्रयास से होगा, हम करेंगे तो होगा। लेकिन धीरे–धीरे एसोसिएशन बैठ जाएगा और फिर बस सांस का ख्याल आते ही हम उसी फीलिंग में पहुंच जाएंगे, जो ध्यान की, भक्तिभाव की फीलिंग में हम जीना चाहते हैं। इस प्रकार यह अजपा जाप की कीमिया, योग और भक्ति दोनों का मिलन समझ लो।

प्यारे मित्रों, इतनी प्यारी जिंदगी हमें मिली है। जिसने ध्यान साध लिया उसने जिंदगी का सदुपयोग कर लिया। जो ध्यान से चूक गया वह दुरुपयोग कर बैठा। डूबो अजपा में, और सांस–सांस को सुनहरा बना लो, दिव्य सुवास से सुगंधित कर लो।

आज की चर्चा को यहीं विराम देते हैं। धन्यवाद। जय ओशो।